को अंग्रेजी के ... से

॥श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुर्विजयतेतराम्॥

॥ सुख चरित्र ॥

(रचयिता)

मुनिवर्य श्रीमान् वीर पुत्र

आनंदसागरजी महाराज साहब.

SUKH CHARITRA.

BY

MUNIVARYA SHREEMAN VEER PUTRA

ANANDSAGARJEE MAHARAJ

(प्रसिद्ध कर्त्ता)

कोठारी पूनमचन्द आनंदमल्ल.

बीकानेर—राजपूताना

वीर सम्वत २४४३] वि सं १९७४ [सन् १९१७

प्रथम संस्करण १००० } सर्व हक स्वाधीन { न्योछावर तत्वग्रहण

अहमदावादके

कालुपुर टंकशाळमें—धी युनियन प्रीन्टिंग प्रेस कंपनी लीमीटेडमें

मोतीलाल सांकळदासने छापा

॥ ॐ ॥

॥ श्री जिनेश्वरभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ प्रस्तावना ॥

क्या कोइ ऐसा पुरुष है कि जो अपने धुरंधर आचार्यादि महान् पुरुषोंके चरित्र सुनना न चाहे ? उन्होंने किस २ समयमें क्या २ महत्वके कार्य किये कि जिससे जन समुदाय एक अलौकिक हालतमें आ गया ? उत्तरमें कहना होगा कि अज्ञान प्रेमियोंको छोड़ प्रत्येक मनुष्य इस बातको जानने व सुनने की इच्छा करेगा।

इस जैन शासनमें परम परमात्मा चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीके पश्चात् अनेकानेक महान् विद्वान् उद्यमशील परोपकार परायणादि विशिष्ट गुण विभूषित ऐसे २ आचार्य होगये है कि जिनका चरित्र पढकर या सुनकर हरेक भव्य जिज्ञासु अपने आचरणको सुधार जैन शासनको उन्नत दशामें लानेके लिये प्रयत्नशील हो सकता है

आधुनिक समयमें भी पाश्चात्य विद्वानोंको पुरातन चरित्र (ANCIENT HISTORIES) पढने व लिखनेका अत्यन्त शोख है इतना ही नहीं वरनवे अपना सर्व समय ग्रंथ व लेखादिके खोजमें व्यतीत कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं. तात्पर्य की महान् पुरुषोंका चरित्र ,मनुष्यको निर्मल बुद्धिधारक बना देता है

यद्यपि जैन वर्गमें सेकडों आचार्य प्रखर बुद्धिको धारण करनेवाले हो गये तदपि आसन्नोपकारियोंके चरित्र हमें जियादे लाभप्रद हो सकते हैं

बस इस ही बातको विचार कर इस ग्रंथमें एक महान विद्वान तपस्वी, यशस्वी, परोपकार परायणका चरित्र लिखनेका प्रयत्न किया गया है जैनके महान् उद्यमशील आचार्योंमें आप भी एक अद्वितीय मुनिराज हो गये हैं

आपका पवित्र नाम "सुखसागरजी महाराज" आप असाधारण विद्वान् महा महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महा० पञ्चम पट्टपर हुवे हैं आपकी विद्यमानी वीर सं २३४५ विक्रम स १८ वीर सं २४१२ विक्रम संवत १९४२ तक रही

सच्चा चरित्र वही है कि जो जीवनीके साथका सार्थक सिद्धान्तिक रहस्यसे भरा हुवा हो तात्पर्यकी इस चरित्रके अंदर ग्रंथकर्ता महानुभावने अपनी विशाल बुद्धिसे योग्य २ स्थानो पर प्रसंगानुक्रमसे ही रहस्यकी बातें उल्लेख कर जन समुदाय पर महदुपकार किया है

इस ग्रंथके निर्माता पूज्यपाद गणाधीश्वर शान्त मूर्ति महाराज **श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज**के स्वय वैरागी, बाल ब्रह्मचारी, बुद्धि विचक्षण, सुविनीत शिष्य **श्रीमान् वीरपुत्र आनंद सागरजी महाराज**ने अपने अमूल्य समयको सार्थक कर गुरु भक्तिवश व परोपकारार्थ इस ग्रंथकी रचना कर अपनी निर्मल बुद्धिका परिचय दिया है.

आपने इसमें हमारे चरित्र नायकके अनुपम चरित्रको वर्णन करते हुवे प्रथम ग्रहस्थाश्रमके विषयको खुलासा तौर पर उध्दृत किया है

आपने इसमें मुख्य २ चौवीस विषयोंको बड़े ही योग्यता साथ दर्शाये है खासकर ज्ञान, दर्शन और चारित्रका आपने हेतु युक्ति कर नये ढगपर इस प्रकार उल्लेख किया है कि प्रत्येक साधारण बुद्धिवाला भी उसके गूढ रहस्यको सहज ही समज सके

आगे चल कर आपने दान, शील, तप और भावनाको इस प्रकार खुलासा बताये है कि लोगोंमें जो आजकल इन चारों विषयों पर वादानुवाद चलते है वे तो मानो पलायन ही कर गये

ऐसे अलौकिक ग्रंथको देख हमारी इच्छा हुई कि यदि यह ग्रंथ छपकर प्रकाशित हो जाय तो जैन व जैनेतर सर्वको बड़ा उपयोगी हो.

हमने हमारे अभिप्राय उक्त ग्रंथ रचयिता मुनिराजके सन्मुख निवेदन किये आपने महत् कृपाकर हमको यथेछ करनेकी आज्ञा बक्षीस की

हमारे लघु भ्राता आणादमल्लके स्वर्गीय पुत्र "दीपचन्द" के परभव जाते समय ज्ञानादि वृद्धिके लिये कितनाक द्रव्य सस्थापन कर रक्खा है इस अवस्यामें हमने यह कार्य उत्तम समझ उसहीके तर्फसे यह ग्रंथ छपवाकर विना मूल्य वितीर्ण किया है.

इस ग्रथके अंतमें हमारे चरित्र नायकके गुण गर्भित अष्टक और कितनीक गहूलियें भी रक्खी गई है

अन्तमें हम ग्रथकर्त्ता महानुभावको कोटिशः धन्यवाद देकर पाठक वर्गोंसे सविनय निवेदन करते हैं कि इस ग्रथको पढकर उसका अनुकरण करनेका महान् लाभ उठावें

यद्यपि इसके प्रूफादि शोधनेका कार्य ध्यान पूर्वक किया गया है तदपि यदि दृष्टि दोषसे वा छापेवालेकी असावधानतासे कोई त्रुटि रह गई हो तो सज्जन जन सुधारकर पढनेकी कृपा करें

॥ शुभ भूयात् ॥

आपके कृपाकांक्षी
पूनमचन्द्र आनंदमल्ल कोठारी.
बीकानेर—राजपूताना





॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ विषयाऽनुक्रमणिका ॥

॥ शुजम् ॥

V. A. S.



॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ समर्पण पत्रिका ॥

शान्त, दान्त, महन्त, दुर्जय त्यागी, सकल गुणरागी, अशरण शरण, तरण, तारण, कृपावन्त, दयावन्त, गुणवन्त, धर्म धुरंधर, धर्मावतार, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वज्ञादि समस्त गुण वरिष्ट जैन गगन मार्त्तण्ड विशाल ज्ञानी गणाऽधीश्वर चिरकाल स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमज्जैनाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्रीमान सुखसागरजी महाराज साहब की भव्य निर्मल सेवामें

हे पूज्येश्वर ! आपने घोर तपस्यादि अनेक सदाचारों द्वारा दुर्निवार कर्म बंधनोंको शिथिल कर दिये, इतनाही नहीं किन्तु अनेक प्रकृतियोंको प्रध्वंस कर निर्मूल कर दी

हे अविरत विहारिन् ! आपने अपने दिव्य ज्ञानकी प्रौढ शक्ति द्वारा जैनधर्मका विशाल प्रभाव चारों ओर विस्तीर्ण किया अर्थात् दमकती हुई दिव्य ज्ञान कान्तिसे भूमण्डलको प्रकाशित कर दिया

हे करुणारस भण्डार ! आप श्रीने अपने पवित्र हृदयसे उमड़ते हुवे वचनामृतों द्वारा अनेक देह धारियोंका अनुपम उपकार कर उनके जीवनको सार्थक किये

हे स्वामिन् ! हम सकल समाज आपके नित्य स्मरणीय परमोपकारको जीवन पर्यन्त स्मृति पथमें तनिक भी वियोगावस्था प्रतिपन्न नहीं कर सकते.

हे भगवान्! गुरुदेव! जिन जिनके पुण्योपदेशसे मेरे आत्मामें प्रकाश हुआ है उन आपके करकमलोंमें यह छोटासा ग्रन्थ "सुख संचित्र" सादर समर्पण कर सविनय प्रार्थना करता हूं कि मेरे शुद्ध जीवनकी कामना कीजिये.

॥ शिवं भवतु ॥

त्वदीय चरणोपासकः—
आनंदसागर.
मु० बीकानेर—राजपूताना

(ग्रंथरचयिता)

विभाते स्मरणीय पूज्यपाद मुनिवर्य श्रीवीर-पुत्र श्रीमान् आनंदसागरजी महाराज।



जन्म वीरात् २४१२]   [दीक्षा वीरात् २४३७

चित्रशाला प्रेस, पूना ।

(ग्रंथरचयिता के गुरुवर्य ।)

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य श्री श्री श्री १००८ श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब ।



जन्म वीरात् २३९९] [दीक्षा वीरात् २४२२

चित्रशाला प्रेस पूना ।

॥ ॐ ॥

॥ श्रीवीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमद् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

॥ सुखचारित्र ॥

(मङ्गलाचरणम्)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिता. सिद्धाश्चसिद्धि स्थिता ।
आचार्या जिनशासनो न्नतिकराः पूज्याउपाध्यायका. ॥
श्रीसिद्धान्त सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैतेपरमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तुवो मङ्गलम् ॥ १ ॥

भावार्थः—प्रथमही प्रथम अखिल दूषणत्यागी, सकल गुण गणालकृत, परमोपकारीश्री अर्हन्त भगवानकों नमस्कारता हू (कथम्भूता अर्हन्तः) कैसे हैं वे अर्हन्त प्रभु (इन्द्रमहिताः) इंद्रवर्गसे पूजित है

तत्पश्चात् निरंजन, निराकार, अक्षय, अविनाशी, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायकसमकितादि गुणोंको धारण करनेवाले सिद्ध परमात्माकों नमस्कार करता हूँ (कथंभूताः सिद्ध देवा) कैसे है वे सिद्ध प्रभु (सिद्धिस्थिताः) सिद्ध स्थानके अन्दर स्थित हैं

तत्पश्चात् परमपूज्य धीरवीर, गम्भीर, धर्म्मधुरंधर, धर्म्मावतार, श्रीमदाचार्य महाराजकों नमस्कार करता हू (कथम्भूताः आचार्य्याः) कैसे है वे आचार्य महाराज (जिनशासनोन्नतिकराः) जिनशासनके उन्नति करनेवाले है

तत्पश्चात् ज्ञानदाता, परमोपकारी उपाध्याय महाराजकों नमस्कार करता

हूं (कथम्भूताः उपाध्यायकाः) कैसे है वे उपाध्याय महाराज (श्रीसिद्धान्त सुपाठकाः) ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्गादि सिद्धान्तोंको पढानेमें परि पूर्ण निपुण है

तत्पश्चात् परमपवित्र, शान्त मुद्राधारी, निर्मल चारित्रधारी, दिव्य ज्ञा गुणोपेत श्रीमन्मुनि महाराजाओंको नमस्कार करता हूं (कथम्भूता मुनिवराः कैसे है वे पवित्र मुनिमहाराज (रत्नत्रयाराधकाः) ज्ञान, दर्शन और चारि तीन रत्नोंकी आराधना करनेवाले है

यह अनन्त गुण गणालंकृत पञ्चपरमेष्ठि प्रतिदिन मङ्गलकारी होवें यह प्रार्थना है

अब मैं अपने परमोपकारी, शान्त, दान्त, महन्त, धीरवीर, गम्भीर, तेज स्वी, यशस्वी, त्यागी, वैरागी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार, विशालज्ञानी, निर्मल दर्शनधारी, मोक्षाभिलाषी, उत्कृष्टसंयमधारी, बहुत्यागी, सुत्यागी, अबाल ब्रह्मचारी, अतुलप्रतापी, शशिसमान सौम्य, सायरसम गंभीर, पृथ्विसम सहनशील, भारण्डवत् अप्रमत्त, सकल गुणरागी, अज्ञानतिमिरभाष्कर, कृपावतार, दयासागर, आत्मध्यानी, योगीश्वर, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वज्ञायनेक गुणगुणालंकृत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्यश्री श्री श्री १००८ श्री श्री खरतरगच्छ गगनाम्बरमणि श्रीमज्जैनाचार्य गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहबका " संक्षिप्त जीवनचरित्र " लिख दिखनेका प्रयत्न करता हूं

सज्जनो! यद्यपि मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है, कि उन महान् पुरुषका सच्चरित्र वर्णन कर सकुं तदपि उनहीके महा प्रभावकी अतुल कृपाका अवल म्बनकर अपने विषय (Subject)—में प्रवृत्त होताहूं

॥ गृहस्थाश्रमका विवेचन ॥

अतीव मनोहर मरु स्थल देशमें बीकानेरके निकट सरसा नामक एक ग्राम हैं, वहांपर खीची नामक क्षत्रीय वंशसे उत्पन्न हुवे भगाली गोत्रको धारण करनेंवाले जैन वृहत् ओस वंशके अन्दर सुशोभित जैन धर्मानुरागी. मनसु

खलालजी नामक श्रावक निवास करते थे, उनके पतिव्रतको धारण करनेवाली जेतीबाई नामकी भार्या थी इनके चतुर्बुद्धिको धारण करनेवाला सुखलाल नामक एक सुपुत्र था, ये लोग न्याय द्रव्योपार्जन करके अपनी आजीवका करते थे तथा धर्मकी आराधनाभी उत्तम प्रकारसें करते थे इस प्रकार सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करते थे

इस सुपुत्रका जन्म वीर सवत् (२३४५) विक्रम संवत् १८७६ में हुवा द्वितीया के शशि समान दिनप्रदिन चढती कलाको प्राप्त होने लगा इस प्रकार सुखपूर्वक बाल्यावस्था व्यतीत की, इसही अवस्थामें आपके मातपिता परलोक प्रस्थान कर गए कितनेक समयके पश्चात् अपनी भगिनीके कथनसें जयपुर नामक शहरमें प्राप्त हुवे, वहापर गोलेछा माणिक्यचंदजी, लक्ष्मीचंदजीकी सहायतासें मुल्कराँक वस्तुओं (क्रियाणे) (Spices) का व्यापार करते थे

कितनेक काल पर्यंत तो इस प्रकार न्यायसे द्रव्योपार्जन किया तत्पश्चात् उपरोक्त सहायक श्रेष्ठीके यहापर मुनीमपदको धारण किया और शान्ततापूर्वक अपना निर्वाह करते रहे, अपने स्वामीका कार्य सचे दिलसें नेकनामिपूर्वक करते थे इस प्रकार अति तृष्णा (Greed) शाकिनीसे पृथक् होकर सतोपपूर्वक कालको निर्गमन करते रहे

आप अखण्ड शियलव्रत (Chastity) को धारण करते हुवे तपश्चर्या (Devotion) के अंदर निपुण थे तथा व्रत, प्रत्याख्यानादि योग्यतापूर्वक उत्तम प्रकारसें करते तथा प्रतिक्रमण, सामायिक और जिनेश्वरकी पूजनादि करनेमें पूर्णत रुचिवन्द थे पञ्चप्रतिक्रमण और कितनेक प्रस्तावोंसे परिचित एव देव, गुरु और धर्मकी सेवामें श्रद्धायुक्त तल्लीन थे

अनुचित भोगोपभोगको परित्याग कर योग्य पदार्थोंको सेवन करते थे पिताजीके अत्यन्त आग्रह होनेपर भी बेडि (Fetters) रूपस्त्रीको अङ्गिकार नही की, आप समझते थे कि कीचके अदर प्रवेश हो जानेके पश्चात् धर्मकी निर्मल आराधना नही कर सकेंगे इस दुषमकालके अदर स्त्रीजातिपर विश्वास करना गोयाघोका खाना है, देखिये नीतिकारने कहा हः—

(श्लोक)

नदीनांचनखीनांच । शृङ्गिणाम्शस्त्रपाणानाम् ॥
विश्वासोनैव कर्तव्यः स्त्रीपुराज कुलेषुच ॥ १ ॥

भावार्थः—निम्न लिखितका विश्वास नहीं करना चाहिये —नदियोंका कारण कि किसी समय डुबाकर रसातलमें पहूंचा देगी

नखधारी व शृंगधारी जानवरोंका:—कारणकि अवसरको पाकर शरीरकों छेदन कर देंगे

हस्तगत शस्त्रधारियोंका:—कारणकि क्रोध वश होने पर मस्तकादि छेदन कर देंगे

स्त्रियोंका:—कारणकि उपमकालकी स्त्रियोंका चरित्र विचित्र हैं; देखिये कहा हैः—

(पद)

स्त्रीचरित्र जाने नहीं कोय ॥
पति मारकर सति होय ॥ १ ॥

राजाओंका:—कारणकि कहा है कि दुराचार राजाओंके कान होते हैं मगर शान (Senso) नहीं होती

आपकों उपरोक्त नीतिवाक्यसें भली व प्रकार विदित हो गया होगाकि स्त्री संसर्गसें किस प्रकार हानि होती है

बुध्दिवान्पुरुष अपने आभ्यन्तर विचारोंकों स्त्रीके सन्मुख प्रगट नही करते कारणकि स्त्रीजातिका हृदय गम्भीर नही होताः देखिये मै प्रसक्त दृष्टान्त लिख बताता हुँ—

स्त्री अपने पडोसी (गृह निकटवर्ति) के सन्मुख यह जाहिर करती है

कि आज अमुक भोजन बनाया था, अमुक शाक कीथी, अमुक ब्राह्मण आया था, अमुक वस्तु लाई गई है, अमुक वस्तु भेजी है, अमुक प्रकारका कलह हुवा, अमुक आनन्द प्राप्त हुवा इत्यादि अनेकशः वार्तालाप करती है

सज्जनो! खानपानकी भी बात जब हृदयमें नहीं ठहर सकती तो दीर्घ विचारका ठहरना कैसें संभव हो सकता है किसी व्यक्तिपर विचार करनेकि आवश्यकता नही है बल्कि स्त्रीके जाति स्वभावमेंही अनेकशः दूषण मौजूद है; उनमेंसें कितनेक यहांपर प्रस्तुत करता हूं:—

(श्लोक)

अनृतंसाहसंमाया । मूर्खत्वमति लोभता ॥
अशौचत्वं निर्दयत्वं । स्त्रीणादोषाः स्वभावजाः ॥१॥

अर्थः—झूठ बोलना, साहसिकपन करना, कपट क्रियाको सेवन करना, जड मति होना, अति लोभ दशाको धारन करना, दुर्गंछनीय दशामें रहना, निर्दय हृदय होना इत्यादि स्त्रीजातिमें स्वभाविक दोष होते हैं

पाठकवरों! जब स्वभावहीके अन्दर इतने दुर्गुण रहे हुवे है तो बाहरी दूषणोंकी गिनती कैसे हो सकती हैं; अर्थात् उक्त स्त्रियें अगण्य दूषणोंसे दूषित है ऐसे दीर्घ विचारका अवलम्बन करके नेमीरूप स्त्रीको अङ्गीकार नहीं किया गरजकी संसारमें रक्त न होते हुवे परम वैराग्य दशामें रमण करते थे

॥ वैराग्यकी सुदृढ़ता ॥

ऐसे सुअवसरमें परमपूज्य श्रीमान् राजसागरजी महाराज और ऋद्धिसागरजी महाराजने अपनें चरण रेणुकासें उस जयपुर नगरको पवित्र किया, अर्थात् आप महानुभावोंका शुभाग मन हुवा

श्रावक श्राविकाओंके अत्याग्रहसें चातुर्मासकी विनति स्वीकार कर वहीं पर सुखपूर्वक निवास करते रहें, आप महानुभाव भव्यात्माओंपर अतिही उपकार किया करते थे, धर्मदेशनाके अंदर प्रायः वैराग्य रसको विशेष रूपसें

प्रदर्शित करने थे आपके अमृतमय देशनाके पान करनेमें स्वयं वैरागी सुखलालके भाव दृढीभूत हुवे

एक दिन सुखलालने आकर श्रीमान् राजसागरजी महासागरको दोनो करजोड़ सविनय प्रार्थना कीः—

हे गुरुवर्य्य! मैं मरु स्थल देशमे सरसा नामक ग्राममें रहता हूँ मेरे पिताके अत्यत आग्रह होनेपर भी सर्पणीरुप स्त्रीजालको अङ्गीकार नही की और अपनी बहीनके आग्रहसें यहांपर आया हू

हे स्वामिन्? मै बचपनसेंही वैराग्य दशामें निमग्न हूं, इसही लिये अधिक काल तपश्चर्यामें व्यतीत किया और सासारिक जंजालसे पृथक रहा

हे नाथ! यहापर आनेसें मुझे ऐसा अपूर्व लाभ हुवा है कि जिसका मै वर्णन करनेको असमर्थ हूं; किन्तु इतनी तो अवश्यही प्रार्थना करूंगा कि जैसे लोहेको पारस लगजानेसें सुवर्ण हो जाता है वैसें ही आप भी अपनी उदार बृत्तिद्वारा मुझ अधमको पावन करो

धन्य हे! ऐसे धर्मात्मा पुरुषोंकोकि जो सत्सङ्गतीकी वाञ्छा करते है सत्य है! सत् सङ्गतीका उत्तमही फल हुवा करता है कहा हैः—

(श्लोक)

काचः काञ्चन संसर्गा। द्धत्ते मारकती द्युतिं ॥
तथा सत् सन्निधानेन। मूर्खोयाति प्रवीणताम् ॥ १ ॥

अर्थः—सुवर्णके संसर्गमें काच मरकतमणि (Emerald) के प्रभाको धारण करता हे; तैसेही सत्सङ्गतिसें मूर्ख प्राणी प्रवीणताको प्राप्त हो जाता है

पुनः—वह गुरु महाराजको प्रार्थना करता है कि हे प्रभो? मुझे इस असार ससारसें बहुतही ग्लानी आती है वास्ते अनुग्रहपूर्वक दीक्षा (Jncantation) प्रदान कर चरणशरण कीजियेगा

हे महानुभाव? आप खुदही जानते है कि "श्रेयासि बहु विघ्नानि" इसलिये कृपाकर शीघ्रही संयमरूपी नौकामें स्थान दीजियेगा

गृहस्थाश्रमसे भयभीत जानकर तथा वैराग्य (Asceticism) वचनोंको श्रवण कर करुणालय मुनि महाराज श्रीराजसागरजीने फरमाया "एवमस्तु"

प्रथमही प्रथम तो यह खयाल हुवा कि चातुर्मासमें दीक्षा देना शास्त्रोंमे मना फरमाया है और यह वैरागी अतिही आतुरता करता है अब क्या करना चाहिये? विचारज्ञानसें शीघ्रही यह विज्ञात हुवा कि जैन सिद्धान्तोका एकान्त पक्ष नही है किन्तु सामान्य और विशेष दोनोंही नियम हुवा करते है, शास्त्रकारोंका यह भी हुकुम है कि किसी प्राणिको यदि उग्र वैराग्य प्राप्त हो गया हो और संसारसें भयभीत होकर चरणशरण आया हो आदि विशेष कारणोंसे चातुर्मासमें भी दीक्षा हो सकती है

ऐसे शुभअवसरमे उस सुखलाल नामक श्रावकके विद्यमान सबन्धियोंसें आज्ञा लेकर दीक्षाका कार्य उपरोक्त श्रेष्ठिवर्य्यमाणिक्यचन्दजी, लक्ष्मीचन्दजी गोलेछा (राठौड़)की तर्फसे प्रारम्भ हुवा

॥ दीक्षाकी धामधूम ॥

शुभ मुहूर्त्तके अन्दर कुछ माङ्गलिककी विधिकों करते हुवे नियमानुसार दीक्षाका कार्य प्रारम्भ किया

यह वैरागी बनमा प्रातःकालमें अपने नित्यनियमोंसे निवृत्त होकर अपने शारीरिक व्यथाको अलग कर स्नान मज्जन करनेके पश्चात् प्रभुभक्तिमे लयलीन हो जाता था; तत्पश्चात् नाना प्रकारकी मनोहर पोषाक पहनकर अनेक आभूषणोंसें अलङ्कृत होता हुवा परोपकारी गुरुवर्यके दर्शनार्थ जाता था, तत्पश्चात् अपने सज्जनोंसें मिलाप करता हुवा आर्य लोगोंकी इच्छा परिपूर्ण करनेके निमित्त बनोला (भोजनार्थ)के वास्ते प्रस्थान करता था

(बनोलेका स्वरुप)

वैरागीके आगे नाना प्रकारके वाजित्र बजे रहेथे, चोतर्फमें झोमों लोग

शोभाको प्राप्त हो रहेथे, सबसें आगे बहुतसे लोग जैनशासनकी जय बोलते हुवे प्रस्थान कर रहेथे एवं सबसें पीछे बहुतसी सौभागिनी स्त्रियें माङ्गलिक गायन कर रहीथीं; इस प्रकार प्रत्येक दिन अति उत्सवपूर्वक बनोला किया जाताथा

कइ एक महानुभाव यहापर शङ्का करते है की वैरागीको एसी पोष कें, इतना जेवर, ऐसा खानपान और इतनी उपभोगीय पदार्थ क्यों सेवन करवाई जाती है यह तो वैरागी (Ascetic) काल हुए नहीं है किन्तु साक्षात् सरागीका स्वरुप है.

भोप्रश्न कर्त्ता साहब ! आपका प्रश्न करना यथार्थ है; किन्तु यदि आपने सूक्ष्म दृष्टिसें विचार किया होता तो यह आक्षेपीय मौका प्राप्त नही होता, देखिये थोडेसेमे ही आपके इस प्रश्नको हल् (वारण) करनेका प्रयत्न करता हूँ:–

वैरागीकी मनोवृत्ति स्थिरीभूत हे या भोगोपभोगमे रक्त है इस बातकी परीक्षाके वास्ते उपरोक्त व्यवहार किया जाता है, अन्य कारण यह भी है कि उसके अपूर्व स्वरुपको देखकर जगतनिवासी भव्यात्मा उस पवित्र वैराग्यकी अनुमोदना करके अनन्त पुण्याईके भागी हो तथा जैन शासनका उद्योत हो

बनोलेके पश्चात् मध्यान्ह कालमे व्यावहारिक और धार्मिक कार्यमे अपना काल निर्गमन करता था; एवम् सायङ्कालके भोजनके पश्चात् अपने प्रतिक्रमण कार्यमें प्रवृत्त हो जाताथा

प्रतिक्रमण कर्मके पश्चात रात्रीके अन्दर सज्जनोसें मिलाप करता हुवा पहर रात्री पर्यन्त धर्मगोष्ठी किया करताथा बाद इसके शयनावस्थामे हो जाता था इस प्रकार अपने नियमित टाइमपर प्रत्येक कार्य कुशलतापूर्वक (Proficiently) किया करताथा

(दीक्षा दिवसका शुभागमन)

देखते ही देखते दीक्षाका निजदिन शुभमिति भाद्रपद शुक्ला पंचमी वीर

सम्वत् (१३७५) विक्रम सम्वत् १९०६ का सुवर्णमय सूर्य अपने दिव्य स्व-रूपको प्रकाशित करता हुवा उदय स्थानपर आन पहुँचा

चारों ओरसे लोक मनोहर वस्त्राभूषण पहीन धर्मशालामे एकत्रित होने लगे, थोड़ेही समयमें क्या देखते है कि निर्मलावस्थाको धारण करनेवाला वैरागी धनराज उक्त स्थानपर आन पहुँचा; आतेही बराबर गुरु महाराजको विनयपूर्वक नमस्कार करके योग्य स्थानपर बैठ गया

थोड़ेही समयके बाद खड़ा होकर दोनो करजोड़ गुरु महाराजसे तथा विद्यमान सम्बन्धियोंसें एव समस्त चतुर्विध संघसे क्षमाका प्रार्थि हुवा

सर्व सज्जनोंने अनुग्रहपूर्वक क्षमा बक्षीसकी; तत्पश्चात् गुरुवर्यके तथा समस्तके समक्ष इस अनुपम गाथाका उच्चारण कियाः—

(गाथा)

खामेमि सव्वजीवे । सव्वेजीवा खमंतुमे ॥
मित्तिमे सव्व भूएसु । वेरंमझ्झंन केणई ॥१॥

भावार्थः—मै सर्व जीवोंसें क्षमाका प्रार्थि होता हूं सर्व जीव मुझे क्षमा करे; समस्त जीवोसे मुझे मैत्रीय भाव है किसीसे वैरभाव नही है

इस महा माङ्गलिक गाथेका सविस्तार विवेचन करनेके पश्चात् गुरु महाराजसें वन्दना कर वरघोड़ेमें प्रवृत्त हुवा

(वरघोड़ेका दृश्य)

सर्वसें आगे नगारे (Drums) पर विजयका डंका धनाधनसें पड़ रहा था, निशान (Emblem) अपनी शोभाको प्रकट कर रहा था, बेण्ड वाजोकी ध्वनिचारों ओर गुञ्जा रही थी, शोभनीक कुञ्जर, कोतलके अश्व, शीविकायें, (पालखीयें) बग्गियें और सिगराम (सेजगाड़ियें) अपनी शोभाको पृथक् पृथक् बतला रही थीं; सवार और सिपाहियोंकी

पलटनसे अधिक शोभा हो रही थी, समस्त वरघोडेके बीचोबीच वैरागीका हस्ति अपनी घूमत चालसें शनैः शनैः कदम उठा रहा था वैरागीके मस्तक पर चवरादि दुल रहे थे इसही अवस्थामे वार्षिक दान देता हुवा कृतार्थ होता था चारों तर्फ श्रावकोंके मुखद्वारा जैनधर्मकी जयध्वनि उठ रही थी सर्वसें पीछे सधवा स्त्रियें धवलमङ्गल गा रही थी, वैरागीके मस्तकपर रहे हुवे तुर्रे और किलङ्गी अपनी अजीब शोभाकों बतला रहे थे, इसका दिव्य स्वरुप सर्व लोगोको मनोरञ्जन कर रहा था; यहा तक कवि अपने गौरव लक्षणसें प्रकाशित करता है कि यह वरघोडा (Procession) साक्षात् चक्रवर्तिके वरघोडेके सदृश दिव्य शोभाको प्राप्त हुवा था

अनुक्रमसे वरघोडा दीक्षाके स्थान पर जा पहुंचा; ज्योंही वैरागी बनडा हस्तिसे नीचे उत्तरा कि सब लोगोंने जैनशासनकी जयध्वनिका उच्चारण किया वैरागी बनडेने प्रथम पूज्यपाद गुरुमहाराजको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानपर विश्रामित हुवा

इसही अवसरमे कई एक लोगोने अतर फुलेलद्वारा वैरागीका सन्मान किया (received) और कितनेहीने न्योछावर करके भिक्षुक तथा गरीबोको बक्षीसकिया

॥ श्रमणपदालङ्कृत ॥

तत्पश्चात् दीक्षाका समय उपस्थित होनेपर गुरुमहाराजने क्रियामें प्रवृत्त होनेके वास्ते सूचना की "आज्ञा प्रमाण" ऐसा कहकर क्रियामें प्रवृत्त हुवा, कुछ क्रिया कर लेनेके पश्चात् श्रमणलिङ्ग (साधुवेश) (monk-dress) धारण करानेकों अन्य स्थानपर ले गये, गृहस्थके सर्व वस्त्र परित्याग कर श्रमण वस्त्रोंमें अलङ्कृत किया, ज्योंहीं उस स्थानसें रवाना हुवे की समस्त लोगोंने वीरशासनकी जयध्वनी की और धन्य धन्य इन शब्दोसे वधाया

यह महानुभाव पुनरपि अपनी क्रियामे प्रवृत्त हुवे, ज्योंहीही टाइमके बाद शुभ मुहूर्त्तमें सर्व सामायक उचराई गई, पश्चात् विधिपूर्वक नाम स्थापन किया;

नाम "सुखसागरजी" रक्खा गया और शिष्य (Desciple) श्रीमान रिद्धिसागरजी महाराजके किये गये

इस अवसरमें सर्व लोगोंने पूज्यपाद राजसागरजी महाराज ऋद्धिसागरजी महाराज और सुखसागरजी महाराजके नामकी जयध्वनी की

तत्पश्चात् धर्मदेशना प्रारम्भ की; इस देशनामे संसारकी अनित्यता और साधु कर्त्तव्य विशेष रूपसे बतलाया गया उस विषयकी यत्किञ्चित् व्याख्या लिख दिखाते हैः—

॥ धर्मोपदेश ॥

(श्लोक)

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदी वेगोपमं यौवनम् ।
मानुष्यंजल विन्दु लोलचपलंफेनोपम जीवनम् ॥
धर्म्मंयो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम् ।
पश्चात्ताप हतो जरापरिणतः शोकाग्निना दह्यते ॥१॥

भावार्थः—लक्ष्मी पेरके रजके मुआफिक है, जेसें पेरपर रज लगकर अति शीघ्र अलग हो जाती है तैसेही लक्ष्मी (Wealth) चलायमान होती है यौवनावस्था पर्वतकी नदीके वेगके मुआफिक होती है, जैसें नदीका वेग शीघ्र उतर जाता है जिसमें भी ढालु पर्वतकी नदीका वेग अतिही शीघ्र उतर जाता है वैसेही चार दिनकी प्राहुणी यौवनावस्था प्रस्थान कर जाती है सच है ? " चार दिनकी चादनी फिर अधेरी रात " मनुष्योंका जीवन कल्लोलित जलके चपल बिन्दु तथा जलके झाग सदृश होता है, जैसें चपल बिन्दु तत्क्षणमे नष्ट हो जाता है तैसेंही जीवनका कुछ ठिकाना नहीं जो स्थिर बुद्धिवाला स्वर्गके अर्गला (भागल)को दूर हटानेवाले धर्मका आचरण नहीं करता है वह वृद्धावस्थाके अन्दर पश्चात्तापसे हतप्रहत् किया जाता है ठीक कहा है " अब पस्ताए क्या बने जब चिड़िया चुग गई खेत" और

शोकरूपी अग्निसे जलाया जाता है जैसें अग्नि हरएक पौद्गलिक स्थूल पदार्थको जला देती है तैसेंही शोकातुर प्राणीकी आंत जल जाती है इस शोकके सदृश जगतमें अन्य कोई दुःखदाई पदार्थ नहीं दिख पड़ती

सामायक चारित्र ऐसा उत्तम पदार्थ है जोकि यथा ख्यात चारित्रको प्राप्त करा देता है, जैसेंकि श्रुतज्ञान (knowledge of scripture) केवल ज्ञानके दिलानेमें एक प्रधान निमित्त है.

यह चारित्र त्रिविध २ (मन, वचन और कायाके साथ करना, कराना और अनुमोदना) अङ्गीकार किया जाता है; इसमें मुनिराज सावद्य व्यापारका सर्वथा त्यागी होता है अर्थात् साधुके सर्व कर्त्तव्य करनेको स्वीकारता है महत्त कारणको पृथक् रखकर कोइ प्रकारका आगार (छुट्टी) नहीं रहती है

वर्तमान समयमें सद्पात्र महानुभाव मुनिवरोंको छोड़कर कइ एक आडम्बरीय, प्रमादी, और मदोन्मत्त साधु, साध्वी अपने क्रियासें भ्रष्ट होकर तीर्थङ्करोंकी आज्ञाका खून करते हुवे दुर्गतिका प्रयत्न करते है मगर धन्य हो, उन मुनिवरोंको जोकि भवतारक चारित्रको निर्मल तथा पालन करके अपने मनुष्यभवकी साफल्यता करते है

जिस वख्त वैरागीको उत्कृष्ट वैराग्य प्राप्त होता है उस वख्त वह जीव सप्तमगुणस्थानपर वर्तता है, दीक्षा लेनेके पश्चात् षष्ठमगुणस्थानपर आ जाता है कारणकि उसकी स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त्तकीही होती है, द्वितीय यहभी कारण है कि नैगमनयके विचारवाला दीक्षा लेके शीघ्र पतित हो जाता है हां अलबत्ता? सूक्ष्मऋजु सूत्रवाला कुछ दृढ भाववाला होता है; परन्तु आद्योपान्त दृढ परिणामोंको रखनेवाला स्थूल ऋजुसूत्र धारक होता है और यह उत्कृष्ट चारित्रधारी कहलाता है देखियेः—

दीक्षा चार प्रकारकी होती है तद्यथा.—

१ सिंहके मुताबिक लेना और सिंहके मुताबिक पालन करना
२ सियालके मुताबिक लेना और सिंहके मुताबिक पालन करना

३ सिंहके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना
४ शियालके मुताबिक लेना और शियालके मुताबिक पालन करना

प्रथम पदवाला उत्कृष्ट, द्वितीय पदवाला मध्यम, तृतीय पदवाला जघन्य और चतुर्थ पदवाला कनिष्ट कहलाता है

जिस वक्त दीक्षा अङ्गीकार की जाती है उस वक्त यही विचार रहता है कि सर्व प्रपञ्चो (enxities) कों परित्याग कर दाक्षिण्यता (flattery) सें विमुख होकर अप्रतिबन्ध आचरण करूंगा तथा पुद्गलको अरसविरस आहारपानी देकर जीर्ण वस्त्रोंकों सेवन करता हुवा उत्कृष्ट चारित्र प्रतिपालन करूगा एव शास्त्र सिद्धान्तोंका वेत्ता होकर अनेक भव्य जीवोका उपगार करूगा और खासकर योगाभ्यास करता हुवा शुक्ल ध्यान एवं आत्म निन्दाद्वारा कर्मोका क्षयकर परमपद लेनेका प्रयत्न करूगां

इत्यादि नाना प्रकारसे विचार करता है लेकिन दीक्षा लेनेके पश्चात् महानुभावोंके शिवाय पामर प्राणि अपनी समस्त प्रतिज्ञाकों परित्यागकर विपरीत वर्ताव करने लग जाता है जैसें:—

गृहस्थोंके वशीभूत होकर दूषित भोगोपभोग पदार्थोंको सेवन करता हुवा आचारसे पतित होकर निर्मल चारित्रको कलङ्कित करता है इत्यादि अनेकशः अवगुणोसे अलङ्कृत होकर दुर्गतिका भागी होता है

हम उनही महामुनिवरोंको धन्य समझते है कि जो सिंहके मुताबिक शूरवीर होकर निर्मल चारित्रको अङ्गीकार करते है तथा यावत् उम्र वैसाही निभाते है, सज्जन पुरुष दुर्गति दातार गृहस्थाश्रमको छोडकर पवित्र चारित्र को ग्रहण करके अपनी आत्माका कल्याण करते है, यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि जितनी उत्कृष्ट करणी चारित्रधारी कर सकते हैं उतनी अन्यको करना दुष्पार है

चारित्रधारीमें सबमें बडा गुण यह होना चाहिये कि दृढ श्रद्धायुक्त* गुरु * भक्तिमें तल्लीन रहै तथा उनकी आज्ञासे अणुमात्र भी विपरीत न

चले. आप भली प्रकार जानते हैं कि गुरु सेवासें बढकर जगत्रयमे कोई पदार्थ नहीं है देखिये किसी दीर्घेच्छु महानुभावने श्री सम्मेत शिखरके स्तवनमे ठीक कहा हैः—

॥ गुरुपदका महात्म्य ॥

(गाथा)

गुरु चरणोंमें प्रीत वनी रहे।
इसको खूब निभाना मोरे राजिन्दा ॥
ज्ञानतत्व अरु सकल पदारथ।
इससें सब मिल जाना ॥ मोरे राजिन्दा सम्मे ॥१॥

सच है ? गुरुचरणोंकी सेवाका यही फल होता है, गुरु कृपा एक ऐसी उत्तम चीज़ है कि दुःसाध्य भी साध्य हो जाता है

कई एक बुध्दि विलक्षण यह कह देते है कि सेवासें कुछ भी फल नही होता किन्तु पढ लिखकर होशियार होना चाहिये जिसमे अपनी यशकीर्ति (fame) तथा शासनका उद्योत हो

यद्यपि उनका कथन यथार्थ है मगरतादृम भी निर्मल ज्ञान तबही प्राप्त हो सकता है कि जब गुरु महाराजकी कृपाका अवलम्बन हो, देखिये इस पर मुझे एक दृष्टान्त स्मरण होता है वह लिख दिखाता हूँः—

किसी एक अनुपम शहरके अंदर अनेक साधुओंकी समुदायसें सुशोभित एक आचार्य महाराज विराजते थे उनके कइ एक शिष्य व्याख्यानदाता, कइ एक विद्यार्थि और कइ एक वैयावची थे उनमेंसे एक विद्यार्थी और एक गुरु भक्तकी सफलताका नमूना पेश करता हूँ

---

* गुरुका अर्थ यहापर यही समजना चाहिये कि जो चारित्रको निर्मल पालन करनेवाले हो अर्थात् चारित्रसे पतित और क्रियासे भ्रष्ट गुरुको गुरु नहीं समझना.

पढनेवाले शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य बतलाते थे तब वह यही उत्तर देता था की अजी हम पढते है दोनो काम नही कर सकते "चाहे पढा लो चाहे घास कटालो" जब कभी जोर देकर गुरु महाराज कोइ कार्य करनेको कहते तो वह लौकिक लज्जावें व मुश्किल करता सो भी उसमें ऐसा प्रयोग करता कि दूसरी वख्त कोइ कार्य न बतलावें यथाः— पानी लेनेको जाता तो मटकी फौड़ देता और गोचरीको कभी जाता तो पात्रे तौड़ देता इत्यादि कार्य इसही प्रकार करता था मगर वे महानुभाव गुरु महाराज यह खूब समझते थे कि यह गुरु कृपाके बगेरही ज्ञानकी सफलताको चाहनेवाला अविनीत मूर्ख शिरोमणी है

इधर भक्ति गुणोको धारण करनेवाले सुविनीत शिष्यको जब गुरु महाराज कोई कार्य फरमाते थे तब वह महानुभाव "तहत्त वचन" (प्रमाणवचन) ऐसा महान सुविनय वचनका प्रयोग करता हुवा अन्य सर्व कार्यको परित्याग कर गुरु महाराजके अनुग्रहपूर्वक बतलाए हुए कार्यको करता था; कहनेका तात्पर्य यह है कि वह भक्तिवान् शिष्य सबसें अधिक टाइम अपने गुरु भक्तिमें लगाता था, जिस वखत गुरुकी सेवा किया करता था उस वखत उसें कई एक उत्तमोत्तम वस्तुओंकी प्राप्ति होती थी गुरु महाराज उसपर अतिही प्रसन्न थे सच है ! विनय गुणके अन्दर ऐसीही अपूर्व शक्ती है कि हरएकको प्रसन्न कर सकता है

एक दिनका जिक्र है कि एक महत् सभा (Gathering) इकठी हुई थी उसमे अनेक विद्वान् लोक एकत्रित थे प्रत्येक धर्मका विचार किया जा रहा था उसके अन्दर यह आचार्य महाराज भी मय अपने शिष्य समुदायके उपस्थित थे इस सुअवसरमे जैनधर्मके ताल्लुक पट् द्रव्य संबन्धि प्रश्न किये गये

आचार्य महाराजने पहिलेही पहिल पढनेवाले शिष्यको आज्ञा दी की इन प्रश्नोके तुम यथार्थ उत्तर दो वह गुरुभक्तिसे विहीन केवल पढाईका सौक रखनेवाला अविनीत शिष्य भामाभौल करने लग गया

इतनेहीमें गुरु महाराजने उस वैयावचीय सुविनीत शिष्यको आज्ञा दी

कि तुम उन प्रश्नोंका यथार्थ उत्तर दो, इस वचनको सुनतेही "आज्ञाप्रमाण" इस पवित्र शब्दका उच्चारण कर उन प्रश्नोके युक्तियुक्त प्रमाणसें ऐसे उत्तम उत्तर दिये कि जिससें सर्व सभासद् लोग प्रसन्न हो गये उसही समय सर्व सभाके समक्ष गुरु महाराजने यह प्रकट किया कि गुरुभक्तिका प्रत्यक्ष फल इस प्रकार मिलता है और अविनीतोंकी अवगणना इस प्रकार होती है.

यह सुन वह भक्ति विहीन शिष्य लज्जित हुवा और गुरु महाराजसे यह प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! मै महामूर्ख हूँ कि आपकी सेवा बिलकुल न की केवल पढनेहीके स्वार्थमे लीन रहा इसही लिये मुझे सद्ज्ञान प्राप्त न हुवा और इस प्रकार दुर्दशासें दूषित हुवा, अब अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समस्त अपराधोंको क्षमा कीजियेगा आजसे मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी सेवामे प्रतिदिन संलग्न रहूगा.

अहाहा! गुरु महाराजकी कृपाका ऐसाही महात्म्य है, जो गुरु महाराजकी सेवा कर ज्ञान संपादन करता है वही निर्मल ज्ञानका भागी हो सकता है, पुस्तकके पढेये दिव्य ज्ञानी (men of deep thoughts) नही हो सकते क्योंकि गुरु गम्यताका जो उत्तम ज्ञान होता है वह पुस्तकोंमे प्रायः नही रहा करता है; देखिये किसी एक विशाल ज्ञानीने ठीक कहा हैः—

(श्लोक)

पुस्तक प्रत्ययाधीतं । नाधीतं गुरु सन्निधौ ॥
सभा मध्ये न शोभन्ते । जार गर्भाइव स्त्रियः ॥१॥

भावार्थः—जो प्राणी गुरुके पास पढनेसे विमुख रहा और केवल पुस्तकके प्रतीतसें पढा हुवा है वह व्यभिचारिणी (Adulteress) गर्भवती स्त्रीके मुआफिक सभामें शोभाको प्राप्त नही होता है; अर्थात लज्जित होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि गुरुगम्यताकी विद्याके सदृश अन्य कोई विद्या नही है

गुरु महाराज यदि प्रसन्नतापूर्वक ज्ञान बक्षीस करे तो एक शब्द सहस्र शब्द इतना फल करता है यह प्रत्यक्ष उपरोक्त दृष्टान्तसें तथा अनुभवसें सिद्ध है

गुरु महाराज उत्तम भाजन देखकर ज्ञान प्रदान करते हैं क्योंकि मध्यम भाजनके अन्दर प्रदान करनेसें विषरूप हो जाता है कहा है:—"**पयःपानं भुजंगाना केवलं विषवर्द्धयेत्**" अर्थात् सर्पको दुग्ध पिलानेसें सिर्फ जहर बढ़ता है; मध्यम भाजनका यही लक्षण है

महानुभावो ! यदि कोइ यहापर यह प्रश्न करे कि गुरु महाराज ही यदि शुध्धाशुध्धका विचारकर अशुध्धको ज्ञान प्रदान न करेंगे तो अधम लोग कैसे पावन हो सकते हैं ? उत्तरमें विदित होकि अधमको पावन करनेका लक्षण इस प्रकार होता है:—

जैसे अशुध्धक्षेत्र हलादि प्रयोगसें शुध्ध हो जाता है तद्वत् अशुध्ध भाजन भी शुध्ध हो जाता है; अर्थात् उस अशुध्ध भाजन के साथमे ऐसा प्रयोग करना चाहिये कि जिससे शुध्ध मार्गमें प्रवृत्त हो जाय इस अवस्था तक सामान्य ज्ञानका परिचय होना उत्तम है तत्पश्चात् शुध्धावस्थामें गुरु गम्यताका उत्तम ज्ञान प्रक्षेपण करना समुचित है यही परम्पराका प्रचलित नियम है

वर्त्तमानमें कइ एक भक्ति करानेके स्वार्थि गुरु वगेरे परीक्षा किये हुवे ही बुगलध्यानी भक्त जनोकों उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान कर देते है किन्तु अखीरमे उसका बहुत ही बुरा परिणाम होता है; देखिये गृहस्थ लोग एक दमड़ीकी हंडी खरीद करते है उस समय यह फूटी है या अछी है इस बातको जाननेके वास्ते तीन टङ्कारोंसे बजाकर ग्रहण करते है; तो क्यों साहिब ? शिष्यवर्गकी या विद्यार्थिकी वगेरे परीक्षा किये हुवे उत्तम ज्ञान प्रदान करना कैसे समुचित हो सकता है ? अर्थात् अवश्य परीक्षा करना चाहिये

इधर वर्त्तमान जमानेमे कइ एक धूर्त्त विद्यार्थि लोग स्वार्थ लोभमे मग्न होकर बाह्य भक्ति लक्षणको दिखलाते हुवे उत्तम ज्ञान ग्रहण करनेकी कोशीस करते है और हृदयमें यह दूषित विचार करते हैं कि ज्ञान सम्पादन होनेके पश्चात् इससें परिचय रखनेकी कोई आवश्यकता नही है नही ! नहीं !! इतना ही नहीं !!! बल्के ज्ञान संपादन करनेके पश्चात् यह चेष्टा किया करते है कि जब तक यह गुरु महाराज मौजुद हैं तब तक मेरी प्रतिष्ठा नहीं हो स-

केगी इसलिये कोइ प्रयत्न करूं कि यह संसारसें प्रस्थान कर जॉय यह वही मसलहै कि जिस तरह सिंहके दुष्ट शिशुने अपनी उपगारिणी बिल्लीको मारनेका प्रयत्न किया था; इसही लौकिक दृष्टान्तको किञ्चित् रूपमें प्रकाशित करते है:—

(कृतघ्नता पर उदाहरण.)

एक किसी भयानक अटवीके अन्दर बहुत से जानवर रहते थे, वे एक दूसरेसें संयोग कर अपना योग्य कार्य किया करते थे

व्यावहारिक यह कहावत है कि बिल्ली सिंहकी मासी होती है एक दिनका जिक्र है कि एक सिंहके बचेने जाकर मार्जारको प्रार्थना की कि हे मासी ! मुझे पञ्जे मारने वगेराकी कला सिखलानेकी कृपा कीजिये; सुनतेही बिल्लीने दिलमें यह विचाराकि इस नूतन भानजेको एकदमसे सर्व कलाएँ नही सिखलाना चाहिये न मालूम विनीत है या अविनी है ऐसा समझ उसने यह उत्तर दिया कि कलसे तूं कला सीखनेको आना

द्वितीय दिन प्रातःकाल होते ही वह सिंहका बचा अपनी मासी बिल्लीके आश्रम पर आन पहुँचा और प्रार्थना की कि मैं आपकी आज्ञानुसार हाजिर हुवा हूँ, अब कृपा फरमाकर अपनी कलाकौशल सिखलाइयेगा; उस बिल्लीने दया लाकर पञ्जा मारना आदि कला कौशलमे निपुण किया

सिंहके बचेने एक दिन दिलमें विचार किया कि,जब तक मासी मौजूद रहेगी तब तक अपनी प्रतिष्ठा (Respect) होना दुश्वार है क्योंकि पाठक गुरुकी विद्यमानीमें विद्यार्थिकी पूर्णतः प्रतिष्ठा नहीं होती इसलिये इस मासी को इसअवसें विदा कर देना चाहिये; ऐसा विचार विकराल रूपको धारण कर ज्योंहीं बिल्लीको मारनेको पञ्जा उठाया त्योंही बिल्ली तत्काल दरख्त पर चढ गई

यह अवस्था देख सिंहके बचेने बिल्लीसें प्रार्थना.की कि हे मासी ! मुझ-

को यह कला तुझने क्यो न सिखलाई; बिल्लीने उत्तर दिया रे दुष्ट ! अधम !!
कृतघ्न !!! यदि तेरेको यह कला सिखलाती तो आज मेरा जीवन रहना
दुष्वार था सच है ! कृतघ्नों (Ungreatful) का यही लक्षण है और इस
ही लिये सिंह पञ्जे वगैराकी कला जानता है मगर दरख्तपर नहीं चढ सकता है

इस दृष्टान्तसें तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार बिल्लीने अयोग्य सिंहके बच्चेको संपूर्ण कला नहीं सिखलाई उस ही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष योग्यायोग्यकी परीक्षा किये वगैर अयोग्यको उत्तम प्रकारका ज्ञान प्रदान नही करते है मगर यदि व अपनी अतुल कृपाद्वारा किञ्चित् जी गुरुगम्यताका ज्ञान बक्षीस कर दे तो जवका निस्तारा होना अति सहज है; गुरु महाराज ही तरणतारण है; देखिये एक सुविनीत विद्वान्‌का कथन है:—

(श्लोक)

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थे ।
सुगतिकुगतिमार्गो पुण्यपापे व्यनक्ति ॥
अवगमयति कृत्याकृत्य जेदं गुरु र्यो ।
जवजल निधि पोतस्त विना नास्तिकश्चित् ॥१॥

श्री सोमप्रजाचार्य ॥

जावार्थः—हे स्वामिन ! आप अज्ञानको विनाश करनेवाले है तथा आगमके रहस्याऽर्थको बतलानेवाले है; एवम् पुण्य पापरूप सद् और असद्गतीका प्रकट कथन करनेवाले है तथा हे गुरुवर्य ! कृत्याकृत्य जेदोंको आप बतलानेवाले है इस ही लिये हे नाथ ! इस जवरूपी संसारसें तिरानेमें आपके शिवाय कोइ अन्य नौका नहीं है; अर्थात् आप ही समर्थ और आधारजूत है

गरजकी जगत्रयमे गुरु महाराजके समान कोइ उपगारी नहीं हो सकता इस ही लिये उनकी आज्ञामें कटिबद्ध (engage) होना यह शिष्य वर्गका मुख्य धर्म है और इस ही सें चारित्रकी निर्मल आराधना कर अपनी आत्माका जला कर सकता है

॥ वृहद्दीक्षा ॥

इन महानुभावकी वृहद्दीक्षा इस ही सालके मार्गशीर्षमे बडे ही समारोहसें हुई इस वृहद्दीक्षाका किञ्चित स्वरुप लिख दिखानेका प्रयत्न करता हूं:–

सज्जनो ? इस वृहद्दीक्षाका नाम छेदोपस्थापनीय है यानी छोटी दीक्षामे प्रमाद वश लगे हुए प्रायश्चित्तोंकों छेदनकर निर्मल पञ्च महाव्रत (give great oaths) उच्चराए जाते है इस अवस्थाके पूर्व तक केवल सर्व सामायकका ही अधिकारी रहता है इस प्रकार उत्तम चारित्रका प्राप्त होना बडा ही दुर्लभ हे; देखिये श्री उत्तराध्ययनके तृतीय अध्ययनके प्रथम गाथामें इस प्रकार फरमाया हैः—

॥ धर्मदेशना ॥

(गाथा)

चत्तारिपरमङ्गाणि । दुल्लहाणीह जन्तुणो ॥
माणुसत्तं सुईसद्धा । संजमम्मीय वीरियम् ॥१॥

अर्थः—प्राणियोंको मनुष्यपन, सूत्रपर श्रद्धा, सयम और वीर्य इन चार उत्कृष्ट अङ्गोका प्राप्त होना अति दुर्लभ है इन चारों अङ्गोका किञ्चित् विशेष स्वरूप लिख दिखाता हूँः—

यह चेतन अनादि कालसें निगोदके अन्दर रहा हुवा अनन्त दुःखोंसे दग्ध हो रहा है नरक (Hell) के जीवोंको जितना दुःख है उतना अन्य गतिवालेको नहीं मगर विचारे निगोदके जीवोंकों उससे भी अनन्त गुणा दुःख ज्ञानियोंने फरमाया है देखिये मनुष्य जिस वख्त जन्म लेता है उस समय इतनी वेदना होती है कि जैसे कोई बलवान् पुरुष साढेतीन क्रोड सूइयें गरम करके अपनी शक्तिपूर्वक किसी मनुष्यके सर्व रोमराइमे प्रवेश कर दे इसमें जितनी वेदना है उससे भी अनन्त गुणी होती है कहा हैः–

(गाथा)

ऊंठकोम्ही सूई ताती करीरे । समकाले चोंवे कोई राय जो ॥
तेथी अनंतगुणीतोहा कहीरे । दुःख सहत विचार तब थायजो
तूंने संसारी ॥१॥

निरोगी पुरुष एक स्वासोद्वास लेता है इतनेमे निगोदिये जीव कुछ जाजेरू (अधिक) सत्तरा जव कर लेते है यानी इतनी टाइममे सतरा वख्त जन्म और सतरा वख्त मरणको प्राप्त होते है आत्मार्थि महानुभावों ! विचारिये कि जब एक वख्त जन्म लेनेसे इतना दुःख होता है कि जिसको सुनने मात्रसें भव्यात्माकी देह कम्पायमान हो जाती है, अश्रुपातमें नदियें वहने लग जाती है, करणमें शूलसा मालूम होता है, भुजाका बल नष्टताको प्राप्त हो जाता है, बुध्दि विह्वल दशाको प्राप्त हो जाती है, मन शोकसागरमें गोता लगाने लग जाता है, मगज शून्य दशाको प्राप्त हो जाता है, चिन्ता महारानी शरीरके प्रत्येक अवयवमे प्रवेश कर जाती है कहाँ तक कहा जाय वज्रके घावसें भी अधिक दु खको प्राप्त होता है शिवाय दुःखके कुछ भी नही सूझता जब सुननेसें ही ये हाल है तो भला भोगती वखतका तो कहनाही क्या है

धर्माऽनुरागियों ! एकवार जन्मका इस प्रकार दुःख होता है तो विचारें निगोदिये जीव जोकि निरोगी पुरुषके एक श्वासोश्वासके अन्दर १७ वख्त जो जन्म मरण करते है उनके दुःखोंको केवली महाराज या उनकी आत्मा ही जान सकती है

ऐसे महान् कष्टके स्थानसें यह चेतन अकाम निर्जरा कर व्यवहार राशिमे प्राप्त होता है इसमें भी यदि अपर्याप्ताऽवस्थाकों प्राप्त हवा तो कोइ भी कार्य करनेको समर्थ नही हो सकता कदाच पुण्ययोगसें पर्याप्तावस्था पालिया और एकेन्द्रियें उत्पन्न हुवा तो भी नाना प्रकारकी वेदना सहन करना पड़ती है; देखिये पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ और वनस्पतिकाय मनोऽभावके कारण कुछ भी उचित कार्य करनेको समर्थ नही हो सकती है

अकाम निर्जरा करता हुवा अनन्त पुण्याईके वश बेइन्द्रिको प्राप्त करता है तद्वत् क्रमशः तेन्द्रि चौरिन्द्रि तक पहुंचता है मगरताहम भी ज्ञानादि तथा मनोऽभावसें यथार्थ धर्म प्रतिपालन नहीं कर सकता है

(चतुर्गतिका दृश्य)

इस स्थलसें उठकर असन्नि पञ्चेन्द्रिकों प्राप्त करता है मगर यहापर भी नव प्राण होनेसें धर्मका यथावत् आचरण नहीं कर सकता है पश्चात् जीव सन्नी पञ्चेन्द्रिकों धारण करता है; इस अवस्थामें भी चारों गतियें मौजूद है यदि जीव नरक गतिमें प्राप्त हो जावे तो नाना प्रकारकी वेदनाको सहन करना पड़ता है वहापर रहे हुवे परमाधामी किस २ प्रकार वेदना देते है; देखियेः—नेरैयेकी टंगडि पकड़कर चारसो पाचसो योजन ऊंचे उछालते हैं बीचमें कई बाजकवे आदि चूंटश् कर खाते है, नीचे कुंभीपाक नरकमें गिरते है, कभी खड्गसे शिर काटते है, कभी हात, कभी पेर, कभी नाक, कभी कान काटते है; कभी भाला शिखासें डालकर नीचे निकाल देते है, कभी अधोसें उर्ध्व भागमें निकलाते है कभी नेत्रोमें पिरोते है, कभी कर्णोमें और कभी मुखमें प्रवेश करते है, कभी कटारीसे हृदय विदीर्ण करते है, कभी लोहुकी नदीमें टंगड़ी पकड़ फेंक देते है, कभी गरम २ स्तम्भ आलिङ्गन करवाते है, कभी भयानक रूप बनाकर डराते है इत्यादि अनेकश घोरातिघोर कष्ट देते है. जिसका पूर्ण स्वरूप हमारी लेखनीसे बाहर है

यदि जीव पुण्य योगसें तिर्यञ्च गतिको प्राप्त हो जावे तो वहा पर भी देखिये कितने २ कष्ट सहन करना पड़ते है; जैसे बिचारें बेलोंको सार्थवाह रथोमें, गाड़ियोंमें जोतकर मनोबंध बोझा खिचवाते है; किसान कुवेमेंसे जल खिचवाते है; नेत्रोंको बंद कर तेलीघानीमें घूमाते हैं; व्योपारी पीठपर पोठी रखकर ककर पथ्थरमें गमन करवाते है भिस्ती पानीकी पखाल लादकर डुमाते जाते हैं; किसान खेतोंमें हलमें जोतकर जमीन विदारण करवाते है विचारे घोड़े फिट्न (बग्गी) तागे इक्के वगेरामें जुडकर कितने ही मनुष्योंका व माल असबाबका बोझा खीचते है; घासपानी और दाना भी

वखतपर नहीं मिलता है; चाबुकोंके प्रहार सहन करते हुवे अपने कालको व्यतीत करते है इस प्रकार हस्ति, ऊंठ और खरादि जानवरोंको भी अनेकशः कष्ट सहन करना पड़ता है जोकि हम प्रत्यक्ष दृष्टिसे देख सकते है

यदि जीव पुण्य कृत्यसे देवगतिमें उत्पन्न हो जावे तो व्रत पच्चक्खाण ग्रहण नहीं करनेसे यथेष्ट धर्मका पालन नही कर सकता है विचारे देवता प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! दो घड़ीकी सामायक यदिहमें भी उदय आ जाय तो हमारा जन्म सफल हो जाय; यद्यपि वह कितने ही सुखी हैं तदपि उस गतिसें मोक्ष हरगिज़ नही हो सकता यही प्रबल पुण्यहीनताका लक्षण है

भोभव्यात्मा ! उपरोक्त तीनो ही गतियोंको परित्याग करके जो प्राणि मनुष्य गतिको प्राप्त करता है वह अनन्त पुण्याईको धारण करनेवाला अपने यथार्थ धर्मको प्रतिपालन करनेको समर्थ हो सकता है इस प्रकार कठिनता पूर्वक मनुष्य भव प्राप्त होता है मगर इस गतिमे भी कितनी ही आफतें होनेसें यथार्थ धर्मको पाना कुछ सहल नही है किन्तु अतिही कठिन है देखियेः—

यदि अनार्य क्षेत्र में उत्पन्न हो गया तो धर्मकी प्राप्ति नही हो सकती है, कदाचित पुण्य योगसें आर्य क्षेत्रमें उत्पन्न हुवा और नीच जातिमें प्राप्त हो गया तो भी यथार्थ धर्म नही पा सकता, यदि उत्तम जातिमें प्राप्त हुवा और दरिद्र कुलमे जन्म लिया तो भी श्रेष्ट धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि उत्तम कुलमे प्राप्त हुवा और शरीरसें लाचार रहा तो भी धर्मकरणी नही कर सकता, यदि शरीर निरोग रहा और दुर्व्यसनोमें मग्न रहा तो भी धर्मकृत्य नही कर सकता यदि दुर्व्यसनोसे अलग रहा और देव गुर धर्मकी योगवाई न मिली तो भी इष्ट सिद्धि नही होती, अगर पुण्ययोगसें उस क्षेत्रमें इन तीनों रत्नोंकी योगवाई हो और उनसें सयोग न होतो भी पुण्यहीनता समझना चाहिये, कदाचित समर्ग हुवा और धर्म श्रवण न किया तो भी यथार्थ प्राप्ति नहीं हो सकती, यदि श्रवण किया और उसको दिलमे धारण न किया तो भी कुछ फल नहीं हो सकता, कदाचित धारण किया और उस जिन वाणीपर श्रद्धा न हुई तो भी उत्तम फल प्राप्त नही हो सकता, यदि किञ्चित् श्रद्धा हुई और उसके मुताबिक प्रवृत्ति

न की तो भी संपूर्ण यथेष्टता प्राप्त नहीं हो सकती इस प्रकार जिनागमपर श्रद्धा होना बड़ी दुर्लभ है

महानुभावो! उत्तम श्रद्धा हो जानेके बाद भी निर्मल चारित्रको ग्रहण करना अत्यन्त दुर्लभ है, गृहस्थाश्रममें हजारो दुःख मौजूद है यथाः–सबसें बड़ा चिन्तारूपी दुःख आकर व्याप्त हो जाता है जैसेः—

लक्ष्मी न होनेकी हालतमें उसे प्राप्त करनेका अधिकाधिक फिकर रहता है, अरे मैं क्या करूं? व्यापार करूं या डाका डालूं या देश लूंटुं या निलाम करूं या अन्य द्यूत व्यापार करूं? आदि अनेक विकल्प बने रहते है तथा लक्ष्मी होनेपर उसके रक्षा की अधिकतः चिन्ता होती है यथाः—

अरे कोई चोर न ले जाय, कहीं राज न ले ले। कहीं डाकान पड़ जाय, कहीं अग्निमें न जल जाय, कहीं देवता अपहार न कर लें और कहीं जमीन निगल न जाय आदि अनेकशः दुःख होते है एवम्ः—

कुटुम्ब परिवारके भी बहुतसें दुःख है यथा कोई कु स्त्रीसे संयोग हो जाय तों वह अनेकशः दुःख देती है जैसें बिचारा पुरुष दुकानसें या नोकरीसें भोजनकी वख्त घरपर आता है उस तप्ताऽवस्थामें वह स्त्री कहती है आजनाज नहीं है, कभी कहती घृत नहीं है, कभी कहती गुड़ नहीं है, कभी कहती शकर नहीं है, कभी कहती दाल नहीं है, कभी कहती आग लकड़ियें नहीं है क्या तुमारे हाथपेर जलाके रोटियें बनाऊं? इस प्रकार बिचारे उस पुरुषको भोजनके समय दुःख देती है; और भी सुनियेः–

जिस वख्त की शयनगृहमे पहुचता है उस वख्त भी नाना प्रकारसें बड़बड़ाहट्ट किया करती है, कभी कहती मुझे उत्तमोत्तम वस्त्र बना दो, कभी कहती अछे २ जेवर बना दो, कभी कहती मुझे उत्तमोत्तम खानपान कराओ; अन्यथा मै तुमे स्वीकार न करूंगी, न तुमारे घरमें रहूंगी आदि अनक प्रकारकी धमकी बतलाकर विचारे उस पुरुषको दुःखि कर देती है.

इस ही प्रकार बहीन और लड़की यही कहा करती है कि मुझे कुछ भी

नहीं दिया चाहे उन्हे हजारों रुपैयेका माल देदिया जाय तोभी संतोप को प्राप्त नही होती है पिता, माता, भाई, पुत्र इत्यादि सर्व अपने स्वार्थमे रमण करते है यह दुनियाइ रिस्तावही तक फलदायक हैं जहा तककी अपना शरीर निरोगावस्थाको धारण किया हुवा है तथा लक्ष्मीने जब तक निवास किया है

देखिये स्वार्थि रिस्तहदार बाहरसें इतना प्रेम दिखलातें हैं कि जैसें निर्गुणी रोहिंडेके पुष्प अपने मनोहर रूपकों बतलाते हैं; सच है ! दुर्जनोका यही स्वरूप है लेकिन सज्जन पुरुष वेही है कि जो दुःखमे भी सहाय्य करते है सुखमे तो हजारों मित्र बन जाते है कहा हैः—

(दोहरा.)

सुखमे सज्जन बहुत है । दुःखमें दीने ठीन ॥
सोना सज्जन कसनको । विपति कसोटी कोन ॥१॥

इस प्रकार स्वार्थि सम्बन्धियोंकि दुःखके अन्दर परीक्षा हो जाती है कि उनका सचा प्रेम है या झूठा इसपर मुझे एक अनुपम दृष्टान्त स्मरण होता है उसे यहा उध्दृत कर लिख दिखाता हूं:-

(संसारकी अनित्यताका अनुभव.)

जम्बुद्वीपके इसही भरतक्षेत्रके अन्दर मालव देशमें अवन्तिकापुरी नामक एक अनुपम शहर है वहांपर विक्रमादित्य राजा अनेक गुणशाली राजाओंसे शोभायमान होता हुवा सुखपूर्वक राज्य करता था उसमें बडे २ विशाल जैन मन्दिर अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट कर रहेथे और ध्वजा पताका तोरणादि अलौकिक शोभासें सुशोभित थे

वहांपर देवगुरु भक्त, धर्म कार्यरक्त, विनयवन्त अनेक भव्य श्रावक श्राविका निवास करते थे; उन्हमें मणिचन्द और सुवर्णचन्द नामक दो प्रतिष्ठित सेठ निवास किया करते थे उनके सूर्यकान्ता और चन्द्रकान्ता दो स्त्रियें

थी; उनके–सूर्यपश और चन्द्यश नामके दो विनयवान् पुत्र थे–इन दोनोंके–चन्द्रमति और तारामति नामकी दो स्त्रियें थीं

इन दोनों श्रावक बंधुओंके आपुसमें गाढ प्रीति थी इनमेंसे सूर्ययश कुमार विशाल बुद्धिको धारण करनेवाला जिनेश्वरके आगमोंके रहस्यका वेत्ताथा सासारिक विषय सुखोंको जोगता हुवा जी अनित्य जावनामें निमग्न था इधर चन्द्रयश कुमार बिचारा जोलेपनको धारण किया हुवा गहरे विचारोंसें विमुख था

एक दिनका जिक्र है कि यह दोनो मित्र आपुसमे वार्तालाप कर रहे थे उसही अवसरमे विद्वद्वर्य सूर्ययश कुमारने ससारकी अनित्यता प्रकट कीकि हे मित्र! पिता, माता, जाइ, वहीन, स्त्री, पुत्र, पौत्रादि समस्त परिवार स्वार्थके साथी है कोई किमीका नही सब झूठा है ऐसा जिनेश्वरका वचन है इसलिये किसी पर विश्वास नही करना चाहिये सदा सावधानीसें ही रहना यह उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है

यह व्यवस्था सुन चन्द्रयश बोला कि मित्र तुम्हारा कहना यथार्थ नही; देखिये मेरे मातपितादि मुजपर अधिकाधिक स्नेह रखते हुवे लालना पालना उत्तम प्रकारसे करते है मेरे विरह (Separation) को बिलकुल सहन नहीं कर सकते, आधिव्याधिमें इतना दग्धपना हो जाता है कि जो मेरे कथनसें बाहर है, इधर स्त्री ऐसी पतिव्रता है कि जो मेरे दर्शन किये बगैर अन्नजल ग्रहण नही करती है तथा आज्ञासें एक अणुमात्र जी विपरीत नही करती, मेरी विरहाऽवस्थाको समयमात्र जी सहन नही कर सकती, आधिव्याधिमें मृत्युवत् डःखको प्राप्त हो जाती है, यहॉ तक उसका उत्तम व्यवहार है कि जहापर मेरा स्वेद (पसीना) गिरता है वहापर रुधिर डालनेकों तैयार है अर्थात् विनय जक्तिमें इतनी लीन है कि जो हमारे वक्तव्यसें बहार है, इसही प्रकार अन्य कुटुम्ब परिवार जी वसा ही स्नेहकारी है; इसलिये हे मित्र! तुमारा कहना तद्दन मिथ्या है

यह सुन सूर्ययश बोला कि हे जोले जाई! तेरा यह कहना ठीक नही

वे सन्ध्याके रङ्गके मुआफिक पलटते देर नहीं करते हैं गजसुकुमालजीने अपनी मातासें ठीक कहा हैः—

(गाथा)

पलटे रङ्ग पतङ्ग कसूंवाको जिसो
ते ऊपर विश्वास जामण करवो किसो ॥१॥

हे मित्र ! यदि तेरी इछा हो तो तेरे स्नेही कुटुम्बकी प्रत्यक्ष परीक्षा करके बतलाऊं कि दुःखमें किस प्रकार साथी है इस बातको सुनकर चन्द्रयशने सहर्ष स्वीकार किया

सूर्ययशने उसको कहाकि हे मित्र! तुम मकानपर जाकर "उदरमें शूलरोग हो गया" ऐसा बाहना (Protence) करना और अपने नेत्रों वगेरेको ऐसे विकृति रूपमे करनाकी जिससे सब लोगोंको मृत्यु अवस्था प्रतीत होने लग जाय

सुनतेही इन शब्दोंके वह शीघ्रही अपनें घरपर पहुंचा और भोजन करके एकदमसें कल्पित शूलरोगसें दग्ध होता हुवा विलापात करने लगा

इस अवस्थाको देखकर मातपिताओंने कइ एक वैद्य, हकीम और मास्टरोंको बुलवाये मगर किसीकी भी औषधी फायदेमन्द न हुई सर्व कुटुम्बके लोग निरास होकर इस भयानक दुःखसे दुःखित होने लगे

इसही अवसरमें वह सूर्ययश कुमार वैद्य स्वरूपको धारणकर औषधोका बॉक्स लेकर चन्द्रयशके मकानपर जा पहुंचा पहुंचतेही नोकरसे कहाकि शेठ साहबसें जाकर कहोकि एक विदेशी वैद्य द्वारपर खड़ा है, वह प्रत्येक बीमारीकी उत्तमोत्तम औषधी जानता है यह सुन नोकरने शीघ्रही शेठसें जाकर प्रार्थना की सुनतेही शेठने अतीव हर्षके साथ बुलानेकी आज्ञा बक्षीसकी, उसही वख्त नोकरने उस वैद्यको भीतर प्रवेश करा दिया, वैद्यने अपने योग्य

स्थानपर बैठकर उस ग्लानीकी नब्ज देखी और कहाकि एक दुग्धका क-टोरा भर लेआओ

सुनतेही इस शब्दके उसका पिता रजत (चादी) के कटोरेके अन्दर निर्मल दुग्ध भर लेआया उस वैद्यने कटोरेको लेकर उस ग्लानीके शरीरपर इक्कीसवार उतारा किया और सब लोगोके सामने यह ज़ाहिर कियाकि व्याधिका जितना जहर था सर्व इसके अंदर खिंचें गया है इसलिये जिसको यह कुमार प्यारा हो वह इसे पानकर लेवें जिससें यह कुमार जीवित हो जायगा और पान करनेवाला मरण शरण हो जायगा

अब यह वैद्य प्रत्येकको पृथक् २ पूछता है उसपर लोग क्या २ उत्तर देते है सो विचित्र लीला ध्यानपूर्वक पढियेगा

प्रथमही प्रथम वह वैद्य दुग्धका कटोरा लेकर उसके पिताके सन्मुख हुवा और प्रार्थना कीकि हे शेठ साहब ! आप वृद्ध है अधिक जीवकी संभावना नही इसलिये यदि आप सचे प्रेमी है तो आफताफके मुआफिक दमकते हुए इस कुंवर कन्हैयेको जीवित कीजिये और लीजिये यह दुग्ध सानन्द पान कीजिये

पिताका उत्तरः—प्यारे वैद्यजी ! यह कार्य होना अति कठिन है इस जगतमें विरले पुरुषोंको छोडकर कौन ऐसा है कि जो चाहकर मृत्युवश होवे इसके अतिरिक्त जिस बातको तुम कहो वह स्वीकार है, यदि हम दोनो दम्पती मौजूद रहेंगे तो पुत्रोत्पत्ति होना असंभवित नही है भाई वैद्यजी ! निर्थक हाहा करनेमें कुछ लाभ नही है देखिये ठीक कहा हैः—" आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जा सुखी भवेत् " इसका अनुकरण करते हुवे मैंने आपसें स्पष्ट निवेदन किया है

यह सुन वैद्य कौतुकार्थ माताके सन्मुख उपस्थित हुवा और प्रार्थना कीकि हे शेठानी साहबा ! यह आपका युवान् पुत्र मिनटोंके अंदर मरण शरण हो जायगा जिस पुत्रकोंकि आपने नौ मास पर्यन्त अपने उदरके अन्दर स्थान

प्रदान किया है बाद में नाना प्रकारकी सुश्रुषाकर पालन किया है वह मनोहर पुत्र आज परलोकके प्रस्थानकी तैयारी कर रहा है आप वृद्धावस्थाके अन्दर पहुंच गई हो अब अधिक जीवनकी संभावना नहीं इसलिये कृपाकर अपने प्यारे पुत्रको बचाओ, रक्षा करो, इस दुष्ट कालके फन्जेसें मुक्त करो; अर्थात् जीवितदान दो और लो यह दुग्धपान कर लो

माताका उत्तरः—हे भाई वैद्यजी! तुम्हारा कहना सर्वथा ठीक है किन्तु यह कार्य होना बहुत कठिन है इस दुनियामें सैकडों पुत्र जन्मते है और इसही प्रकार मृत्युको प्राप्त होते है तो भला! किसश के पीछे जान दी जाय यह संसारका अनादि प्रवाह ऐसाही चला आता है और इसही प्रकार चलता रहेगा विशेष क्या कहू तुम खुद सुज्ञ हो

इसके बाद दुग्धका कटोरा लेकर बहुत सेरिस्तहदारोंके सन्मुख हुवा किन्तु सबने इसही प्रकार टूटाफूटा उत्तर दिया अन्तमे वह वैद्य उसकी स्त्रीके पास गया और कहाकि हे भद्रे! तुम अपने पतिकों बचाओ अगर पति मर जायगा तो तुम्हें इस दुनियामे कुछ भी सुख नही है देखो उत्तम खानपान भी तुम नही कर सकती, उत्तम वस्त्र भी भोगमें नहीं ला सकती हो तथैव अलङ्कारोंसें अलङ्कृत नही हो सकती, उत्तम सेजपर शयन नहीं कर सकती हो, हँसीमजाक तथा अन्य वार्तालाप निस्पर नहीं कर सकती हो, अपने शीलकी रक्षा भी उत्तम प्रकारसें करना दुर्लभ है इसही प्रकार किसीसें घनिष्ट सम्बन्ध रखना भी दुःसाध्य है कहनेका तात्पर्य यह है कि पति मृत्युके बाद स्त्रीकों किसी प्रकारका सुख नहीं हो सकता है तो फिर अपने प्यारे पतिके बचानेका यत्न क्यो छोडती हो स्त्रियोंका यह मुख्य धर्म है कि अपने पतिके संकट (Distress)को निवारण करे और सुना भी जाता है कि तुम बनी ही पतिव्रत धर्मधारका हो और सदैव अपने पतिकी आज्ञामे चलनेवाली हो तथैव गाढ प्रीति रखनेवाली हो इसलिये हे बुद्धिमते! लो यह दुग्धपान करो और अपने प्यारे प्राणनायकों दुष्ट मृत्युसे बचालो

स्त्रीका उत्तरः—वैद्यजी! तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु जीते जीव मरना कैसे बन सकता है देखो इस दुनियाके अन्दर हजारों स्त्रियोंके पतिकाल

प्राप्त हो गये हैं इसही प्रकार मेरी भी हालत हो जायगी अर्थात् हजारों विधवाएंकोनेका आश्रय ले रही है इसही प्रकार एक मै भी बढ़ जाऊंगी तो कुछ हर्ज नही मगर भाई वैद्यजी ! तुम्हारे कथनानुसार करनेकों मै सर्वथा असमर्थ हुं

उस वैद्यने इस प्रकार अद्भुत घटना देखकर पुनरपि समस्त कुटुम्बकों कहाकि अरे भाईयो ! कोई भी दया लाकर इस कुमारकी रक्षा करो तुम्हारा प्रेम इसही उपमावस्थामें प्रतीत होगा

कुटुम्बका उत्तरः—कौन इस जगत्के अन्दर ऐसा है जो अपना व अपने संबधियोंका भला न चाहता हो मगर क्या किया जाय जीवित हालतमे जान देना कठिन है और इसही कारण हम सब मजबूर है विशेष क्या कहै तुम खुद बुध्दिमान हो

इस आश्चर्यजनक लीलाको देखकर उस चन्द्रयशको विस्मय करता हुवा वह वैद्यरूप मित्र सर्व कुटुम्बके प्रति कहने लगाकि धन्य हो तुम्हकों व तुम्हारे उत्तम कुलकों, धन्य हो तुम्हारे शुध्द व्यवहार तथा तुम्हारे गाढ प्रेमको किन्तु इस प्रकार कुटिल व्यवहार रखते हुवे अपना उत्तमपन समझते हो मैने केवल तुम्ह लोगोंके स्नेहकी परीक्षाके वास्ते ही इतना प्रयत्न किया है यह संसार महान मिथ्या तथा विश्वासघातक प्रतीत होता है देखो मै यह उपपान करता हूं इससे मुझे कुछ भी नुकशान नही हो सकता यह बात सुन सर्व लज्जित हुव

(गृहस्थाश्रमसें ग्लानी और वराग्यमें रमणता)

चन्द्रयश इस संसारकी अद्भुत लीलाको देखकर वैराग्यताकों प्राप्त हुवा.

इसही अवसरमे एक चतुर्ज्ञानधारी महान् आचार्यका पदार्पण हुवा, इस अपूर्व खुशखबरीकों सुनतेही सर्व लोक एकत्रित होकर पूज्य गुरुवर्यके सन्मुख

गये और महतामम्भरसे नगर प्रवेश (Entry) करवाया उपाश्रयमे प्रवेश होतेही उपगारी गुरुवर्यने अपनी अलौकिक धर्मदेशनासें भव्य जनोको मुग्ध किये; वह चन्द्रयश कुमार भी इस जलसे मेंशरीक था

एक दिन उन धर्मावतारने संसारकी अनित्यता (Transient) पर असाधारण व्याख्यान दिया जिससें अनेक भव्यात्मा गृहस्थाश्रमके दुःखसें धूज पड़े इसमें सबसें अधिक उदासीनता उस चन्द्रयशको प्राप्त हुई, यह कुमार अपने मातापिताकी आज्ञाको धारणकर इन विशाल ज्ञानीके पास अनेक भव्य प्राणियोंके साथ महताम्मम्भरसे निर्मल चारित्र ग्रहण किया

धन्य हे ! उस अतुल वैरागीकोकि जिसने दुःखके दाता गृहस्थाश्रमको तत्काल परित्याग कर भवतारक चारित्र अङ्गीकार कर लिया

इस दृष्टान्तसें आपको विदित हो गया होगा कि यह गृहस्थाश्रम किस प्रकार मिथ्या है, तथापि निर्मल चारित्रको अख्तियार करना अति दुर्लभ है जो भव्यात्मा इस भवोद्धारक चारित्रको अख्तियार करते हैं वे महानुभाव पञ्च महाव्रतको भली प्रकार पालन कर सकते है

यह पञ्च महाव्रत एक ऐसे उत्तम रत्न है कि जिसको व्यवहार निश्चयादि भेदोंद्वारा यथार्थ पालन करे तो उत्कृष्ट मोक्ष पद प्राप्त होता है उनही महान् पञ्चरत्नोकी व्याख्या लिख दिखाते है:—

॥ पञ्च महाव्रतोका दिग्दर्शन ॥

प्रथम अहिंसा महाव्रत.

किसी भी प्राणीकों हिंजा (तकलीफ) न पहुँचाना उसें अहिंसा महाव्रत कहते हैं.

व्यवहारसें:—पृथ्वी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति, बेन्द्रि, तेन्द्रि, चौरिन्द्रि, और पञ्चेन्द्रि, इन नौ प्रकारके जीवोंकी हिंसा करे नहीं, करावे नही और

करतेको अनुमोदे नहीं एवम् २७ मनसें, वचनसें, और कायासें एवम ८१ प्रकारसे सर्वथा हिंसाको परित्याग करे, अर्थात् हिंसा चतुष्कमेंसे जघन्यसे प्रथम भेद व उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा त्याग करे

(हिंसाचतुष्क)

१ द्रव्यसें हिंसा करता है भावसे नहीं.

विवेचनः—जैसें मुनिराज अहारपानीके वास्ते तथा विहार वगेरामे गमनागमन करते है उस वख्त जो कोइ हिंसा हो जावे वह द्रव्य हिंसा है अर्थात् स्वरूप हिंसा है बन्ध हिंसा नही

२ भावसें हिंसा करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—दिलमें ऐसा विचार होता है कि मै अमुक मनुष्यको या अमुक जानवरको प्राणरहित करदूं अथवा अमुक प्राणिको अमुक दुःखसें दग्ध करदूं इत्यादि अनेक दुष्ट विचार करता है लेकिन हिंसा करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह भाव हिंसा जानना; अर्थात् इससे अशुभ बंध पडता है

३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे हिंसा करता है.

विवेचनः—परिणाम भी कषायके रहते है तथा द्रव्य हिंसा भी करता है; अर्थात् दोनो प्रकारकी हिंसा करके दुर्गतिका भागी होता है

४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे हिंसा नहीं करता.

विवेचनः—यह शून्य भागा है; अर्थात् असंभव है.

निश्चयसें:—रागद्वेष करके जो अपनी आत्मा लीन हो रही है उससें मुक्त होकर अपने निज स्वरूपको प्रकट कर निर्मलावस्थाको प्राप्त होना.

द्वितीय सत्य महाव्रत.

सर्वथा असत्यका परित्याग करना उसे सत्य महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसेंः—क्रोध, मान, माया और लोभसें झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं और बोलतेको अनुमोदे नहीं एवम् १२ मनसें वचनसें और कायासें एवम् ३६ प्रकारसें सर्वथा मृषावाद परित्याग करे, अर्थात् मृषाचतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद व उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा परित्याग करे

(मृषाचतुष्क)

१ द्रव्यसें झूठ बोलता है भावसे नहीं

विवेचनः—जैसें किसी एक वियावान जङ्गलके अन्दर एक मुनिराज विश्राम ले रहे थे उस वख्त एक सिंह पास होकर निकला उसकों उन्होंने जाति जान लिया. थोडी देरके बाद क्या देखते है कि बहुतसे मनुष्योंके साथ अनेक शस्त्र धारण किया एक राजा आन पहूंचा पूछता क्या है कि हे मुनीश्वर ! सिंहकों इधर निकलते आपने देखा है क्या ?

यह सुन वह मुनिराज दिलमे विचार करने लगे कि यदि मे बतलाता हूँ तो पचेन्द्रिय जीवकी घात होती है; यदि इनकार करता हूँ तो मृषावादका प्रायश्चित लगता है; यदि मौन रखता हूं तो जीवन रहना मुश्किल है ऐसा विचारते हुवे शीघ्रही यह ज्ञात हुवाकि जिनेश्वरका एकान्त मार्ग नहीं है धर्मके सर्व असूल सापेक्ष और निर्वाध्य है, उन सर्वज्ञ देवने द्रव्य तथा भाव ऐसे दो प्रकारके मृषावाद फरमाये हैः द्रव्य मृषावाद उसे कहते हैं कि जिसमें महत्त कारणों होनेसे अधिक लाभके वास्ते यदि बोलना पडे तो उससे बन्ध नहीं पडता है किन्तु स्वरूप मृषावाद है; ऐसा विचार कर उन मुनिराजने उत्तर दिया हे राजन् ! मुझे मालुम नहीं कि मृगराज किधर गया है अथवा अनुपयोगतासें असत्य बोला जाय वह भी द्रव्य मृषावाद समझना

२ भावसें झूठ बोलता है द्रव्यसे नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचार करता है कि मै अमुकके समक्ष इस इस प्रकार मनोकल्पित आडम्बरीय वार्त्तालाप या कीसीकी यश कीर्त्ति या निन्दादिक अतिही खूबसूरतीके साथ कहूंगा इत्यादि विचार करता है लेकिन ऐसी वार्तालाप करनेका मोका नहीं पाता, वह भाव मृषावाद जानना

द्रव्य और भाव दोनों प्रकारसें मृषावाद.

विवेचनः—परिणाम भी सत्य बोलनेमे निमग्न रहते है तथा इसही प्रकार बोलनेका भी अवसर प्राप्त हो जाता है; अर्थात् दोनों प्रकारका मृषावाद बोलकर दुर्गतिका भागी होता है

४ द्रव्य और भाव दोनों प्रकारसे मृषावाद नहीं बोलता है.

विवेचनः—यह शून्य भांगा है; अर्थात उत्तम और ग्रहण करने योग्य है.

निश्चयसें:—पौद्गलिक पदार्थको यह चेतन जो अपनी करके मान रहा है अर्थात् ममत्वमे लीन होकर नित्य प्रति अधिकाधिक आनन्दमें मग्न हो रहा है उससे विमुक्त होकर निर्मल भावमें रमण करना

तृतीय अस्तेय महाव्रत

बगैर दी हुई वस्तुको बिलकुल अङ्गीकार नहीं करना उसें अस्तेय महाव्रत कहते हैं

व्यवहारसें—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, ज्येष्ठ, सचित्त और अचित्त इन ६ प्रकारसें चौरी करे नहीं, करावे नहीं और करतेको अनुमोदे नहीं एवम १८ मनसें, वचनसें और कायासें एवम् ५४ प्रकारसें सर्वथा चौरी परित्याग करे अर्थात् स्तेय चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा परित्याग करे.

(स्तेयचतुष्क)

१ द्रव्यसें चोरी करता है भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसें किसी एक शहरमें एक धनाढ्य शेठ रहता था वह एक वख्त सकुटुम्बे यात्रार्थ रवाना हुवा, पीछेसें उसके मकानमें अचानक (Suddenly) अग्नि लग गई उस वख्त उसके सुयोग्य पडोसी (Neighbours) ने यह विचार कर सर्व सामान निकाल लिया कि जब वह आवेगा उसे वापिस दे दूगा जब वह शेठ यात्रासें लौटकर आया तब सर्व वस्तुएं उसे दे दीं. यह द्रव्य अदत्ता दान जानना; अर्थात् स्वरूप चोरी है बन्ध चोरी नही

२ भावसें चोरी करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—मनमें ऐसा विचारता है कि मैं अमुक राजाका या अमुक शेठ साहूकारका खजाना तोडकर बहुतसा द्रव्य चुरा लाऊं या किसी जगह डाका (Dacoity) डाल कर बहुत सा धन लूंट लाऊं इत्यादि सङ्कल्पविकल्प किया करता है किन्तु चोरी करनेका या डाका डालनेका मौका प्राप्त नहीं होता है यह भाव अदत्ता दान जानना

३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे अदत्ता दान.

विवेचनः—परिणाम भी अदत्ता दानमे मग्न रहते है तथा माल भी लूंट लाता हैं यह दोनो प्रकारका अदत्ता दान सेवन करके आत्मा दुर्गतिका भागी होता है

४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे चोरी नहीं करता है.

विवेचनः—यह शून्य भागा है:-अर्थात् श्रेष्ठ और आचरण करने योग्य है.

निश्चयसें—यह चेतन क्षण २ मे जो कर्मोंकी वर्गणा तथा पंचेन्द्रियके

तेवीश विषय ग्रहण कर रहा है उन्हे परित्याग कर उत्तम साधनोका अनुसरण करे

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत.

मैथुन [व्यभिचार]सें सर्वथा पृथक् रहना उसें ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते है

व्यवहारसें:—देवाङ्गना, स्त्री और तिर्यञ्चनी इन तीनो जातिसे मैथुन सेवन करे नही, सेवन करावे नहीं और सेवन करतेको अनुमोदे नहीं एवम् ९ मनसे, वचनसें और कायासें एवम् २७ प्रकारसें सर्वथा कुशील परित्याग करे; अर्थात् मैथुन चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष सर्वथा परित्याग करे

(मैथुनचतुष्क)

१ द्रव्यसें मैथुन करता है भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे भरत चक्रवर्ति रुक्ष परिणामोंसें अपनी ६४००० स्त्रियोंको सेवन करते थे मगर रक्तता रहित थे द्वितीय दृष्टान्त यह है कि किसी समय एक महान् पवित्र मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे एक नदीके

(नोट)

दीर्घ विचारसे विमुख होकर भ्रम वश कितनेक लोग यह प्रश्न करते है कि स्पर्श मात्रसें मैथुनकह देना यह मिथ्या है कारणकि ऐसे तो माता पुत्रके स्पर्शसे, पिता पुत्रीके स्पर्शसे, भाई बहिनके स्पर्शसे व्यभिचारका दोष मानना पडेगा और यदि ऐसा हो तो यह अन्याय है

उत्तरः—भो भव्यात्मन् ? यदि आपनें सूक्ष्म विचार किया होता तो ऐसा सामान्य प्रश्न कभी पैदा नहीं होता देखिये गृहस्थाचार और श्रमणाचारके अन्दर बहुत अन्तर है मुनिराज दूषित कार्योंके सर्वथा त्यागी है; दीक्षा लेनेके बाद साधु जन अपने खास माता, बहिन और पुत्रीको स्पर्श नही करते है इसमें शील-रक्षाका ही कारण है विशेषेण किम्.

तटपर आन पहुंचे देखते क्या है कि एक आर्या (साध्वी) जलमें डूबी जा रही है निगाह गिरते ही यह विचार किया कि यदि मैं इसको निकालूं तो शीयलव्रतके नियम विरुद्ध संघर्ष (स्पर्श-संघट्टा) दोषका भागी होता हूं यदि न निकालता हूं तो पञ्चेन्द्रिय जीवका निरर्थक घात होता है इसके जीवनसें हजारों भव्यात्माओंका उध्दार (Deliverance) होगा ऐसा समझ द्रव्यसे मैथुनका दोष न विचारता हुवा विशुध्द भावोंसे शीघ्र ही हाथ पकड़कर बाहर निकाल दी

२ भावसें मैथुन करता है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—दिलमे ऐसा विचारता है कि मैं इन्द्राणीसें या अमुक राजाकी रानी या अमुक युवा स्त्रीसें विषयसुख सेवनकर अपना मनुष्य भव सफल करूं मगर ऐसा दुष्ट प्रयोग करनेका मौका प्राप्त नहीं होता यह भाव मैथुन जानना

३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसे मैथुन.

विवेचनः—मनोभाव भी व्यभिचारमे संलग्न रहे और योग भी मिल जाय, यह दोनो प्रकारका कुशील नरकादि गतिका दाता होता है

४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसें मैथुन नहीं.

विवेचनः—यह शून्य भागा है; अर्थात् उत्तम और सेवन करने योग्य है

निश्चयसेंः—यह चेतन निज गुणको परित्याग करता हुवा परपुद्गलमें रमणकर आनन्दित हो रहा है उससें सर्वथा पृथक् होकर अपने अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें तन्मय हो जाय

पंचम अपरिग्रह महाव्रत.

भोगोपभोगीय अशेष पदार्थोसें मूर्छा रहित होना उसें अपरिग्रह महाव्रत कहते है

व्यवहारसेः—अल्प, विशेष, कनिष्ठ, जेष्ठ, सचित्त और अचित्त इन ६ प्रकारके परिग्रहको रखे नही, रखावे नहीं और रखतेको अनुमोदे नहीं एवं १८ मनसें, वचनसें और कायासें एवम् ५४ प्रकारसें सर्वथा परिग्रह त्याग करे; अर्थात् परिग्रह चतुष्कमेंसें जघन्यसें प्रथम भेद और उत्कृष्टसें चतुर्थ भेद ग्रहण करे शेष भेद सर्वथा त्याग करे.

(परिग्रह चतुष्क)

१ द्रव्यसें परिग्रह है और भावसें नहीं.

विवेचनः—जैसे मुनिराजके पुस्तक पत्रादि ज्ञानोपगरण तथा जिनेश्वर देव और गुरु महाराजके चित्रादि दर्शनोपगरण एवम् वस्त्र, रजोहरण, (ओघा) पात्रादि चारित्रो पगरण होते है; किन्तु ममत्व रहित होनेसे द्रव्य परिग्रह जानना यानी स्वरूप परिग्रह है बन्ध नहीं इसही प्रकार भरत चक्रवर्ति वगैराका उदाहरण जानना

२ भावसें परिग्रह है द्रव्यसें नहीं.

विवेचनः—जैसे कोई प्राणी विचार करेकि मुझे क्रोड़ रूपेकी प्राप्ति हो जाय, शेठ साहुकारपन एवम् राजा महाराजा चक्रवर्त्यादिका सिंहासन मिल जाय बहुतसे पुत्र, पौत्र, नौकर, चाकर अथवा दिव्यप्रासाद एवम् हाथी, घोड़े, बग्गी सिगरामादि वाहनोंकी प्राप्ति हो जाय भोगोपभोगके उत्तमोत्तम पदार्थ सेवन करनेको मिलें इसही प्रकार बहु मूल्य वस्त्राभूषण प्राप्त हों इत्यादि नाना प्रकारके परिग्रहोंका चिन्तवन करता है किन्तु प्राप्त नहीं होते यह भाव परिग्रह जानना अर्थात् बन्धनका हेतु है

३ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसें परिग्रह.

विवेचनः—दिलमें यह विचार करता है कि मुझे हाट, हवेली, ज़मीन, जायदाद, पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब, परिवार, वस्त्राभूषणादि प्राप्त हों और

इसही माफिक सर्व मनोरथ सफल हो जॉय यह दोनो प्रकारका परिग्रहका दाता जानना

४ द्रव्य और भाव दोनो प्रकारसें परिग्रह नहीं.

विवेचनः—यह शून्य भागा है; अर्थात् उत्तम और ग्रहण करने योग्य है

निश्चयसेः—यह चेतन राग, द्वेष, ज्ञानावर्णीय प्रमुख अष्टकर्मों में निमग्न हो रहा है उन्हे विध्वंसकर आत्मस्वरुपमें रमण करे.

यदि कोइ प्राणी इन भवतारक पंच महाव्रतोंको व्यवहार और निश्चय करके अखिल स्वरुपसें प्रतिपालन करे तो निम्न लिखित पञ्च दिव्य प्राप्त होते है

प्रथम महाव्रतके पालन करनेसें दृष्टिगोचर जीव आपुसमे वैर भाव नहीं ले सकते; अर्थात् लराइ झगडा और प्राण रहित नहीं कर सकते है यह अलौकिक प्रथम सिद्धि जानना

२ दूसरे महाव्रतके पालन करनेसे वचन सिद्धि हो जाती है; अर्थात् किसीको यह कह दे कि तेरा यह कार्य अमुक दिन सफल हो जायगा वह अवश्य ही हो जाता है, यह द्वितीयालौकिक सिद्धि जानना

३ तृतीय महाव्रतके पालन करनेसें जिस २ स्थल पर चरण रक्खें उस २ स्थानपर नवनिधान प्रकट होते हैं नीतिकारका कथन है "निस्पृहे निधानानि" यह हेतु अनुभव सिद्ध है यह अलौकिक तृतीयासिद्धि जानना

४ चौथे महाव्रतके पालन करनेसें अनन्त वीर्य प्राप्त होता है: इसहीसें कर्मोंका विध्वंसकर प्राणि अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त होता है यह अलौकिक चतुर्थी सिद्धि जानना

५ पञ्चम महाव्रतके पालनेसें भव भ्रमण नष्ट हो जाता है वस्तु संसर्गसें भववृद्धि होती है और इस महाव्रतसें दिनवदिन वस्तु संसर्ग निकन्दन होता जाता है, यह अलौकिक पञ्चम सिद्धि जानना

इन कर्मध्वंसक महान् पवित्र पञ्चमहाव्रतोंका जघन्यसें रक्षिया सदृश और उत्कृष्टसें रोहिणी सदृश शुध्दाचरण करना चाहिये. महानुभावों ! अवसरको पाकर एक दृष्टान्त लिख दिखाता हूं

(पञ्च महावृत्तोंपर दृष्टान्त)

किसी एक अनुपम शहेरमें धन्नासार्थवाह नामक एक शेठ निवास करता था उसके उत्तमशील नामक एक सुपुत्र था इसके उत्तम कुल धारक ४ स्त्रिये थी नोकर, चाकर, हाट, हवेली और लक्ष्मीकरके पूरित था भोगोपभोग पदार्थोंका आनन्द लूँटता हुवा सुखपूर्वक अपना काल निर्गमन करता था

एक दिन वह शेठ ब्रह्म मुहूर्तके अन्दर उठकर यह विचार करने लगा कि देखें मै अपने लडकेकी चारों भार्याओंकी परीक्षा करूं कि गृह कार्य कौन उत्तम रीतसें चला सकती है, प्रातःकाल होतेही अपनी नित्य क्रियासे निवृत्त होकर अपने मुनीम तथा गुमास्ताओंको यह आज्ञा दी कि जिस २ स्थलपर अपने रिस्तहदार निवास करते है उस२ जगह यह सूचना दी कि यहापर एक महत् उत्सव होनेवाला है इसलिये कृपयाशीघ्र ही पधारकर इस जलशेको सुशोभित कीजिये गा

शेठकी आज्ञानुसार दिन मुकर्रिर करके सर्व स्थानपर प्रार्थनापत्र भेज दिये नियमित दिनपर सर्व सज्जन लोक एकत्रित हुवे उसही समय शेठने अपने पुत्रकी चारों स्त्रियोंको उस जलसेमें निमन्त्रित की उन्होने महत् विनयसें अपने श्वसुरके चरणोंमे प्रवेश किया, अर्थात् उस जलशेमें हाजिर हुई

शेठने सर्व महिमानो (प्राहुणों)का यथोचित सन्मान किया तत्पश्चात् इन चारों स्त्रियोंको सर्वके समक्ष पाच २ शालिके दाने दिये और यह कहाकि जिस वख्त मै वापिस मागु उस वख्त यही पाच दाने मुझें अर्पण करना तत्पश्चात् वह जलसा विसर्जन हुवा. उन चारों स्त्रियोंने मकान पहुंचकर पृथक् २ इस प्रकार विचार किया:—

१ प्रथमा स्त्रीने यह विचारा कि घरके अन्दर मनोमन्द शाली रक्खी हुई है जिस वक्त सुसरजी कहेंगे उस ही वक्त इसमेंसे पाच दाने लेकर अर्पण करउंगी, इन्हें सम्भालकर रखनेसे क्या प्रयोजन है यह सोच बाहर उकरडे पर फैंक दिये

२ द्वितीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीने अनुग्रहपूर्वक यह उत्तम वस्तु दी है इसे मैं भक्षण कर लूं तो मुझे बहुत ही लाभ होगा यह विचार वे शालिके दाने भक्षण कर गई

तृतीया स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजीकी आज्ञा. आज्ञा पालना मेरा मुख्य कर्त्तव्य है इसके बराबर कोइ उत्कृष्ट धर्म नहीं जैन सिद्धान्तोंमें यह प्रसिद्ध है विज्ञान, दर्शन और चारित्र एवम् विनय, वैयावच्च और तपश्चर्या इत्यादि उत्तमोत्तम सर्व धर्म आज्ञामे ही समावेश है; यही जिनागमका सार है ऐसा दीर्घ विचार करवेशालीके दाने अपने रत्नोंकी पेटीमे रख दिये

४ चतुर्थी स्त्रीने यह विचारा कि सुसराजिने यह दाने कोइ शुभ मुहूर्तमे दिये है इसलिये मेरा यह धर्म है कि उन्हे वृद्धि रूपमें वापिस अर्पण करु जैसें पुत्रको द्रव्य देता है और वह व्यापारादि प्रयोगोंमें द्रव्यको बढाता है इसही प्रकार मेरा भी कर्त्तव्य है यह सोच वे पाचों दाने अपने भाईके पास भेज दिये और यह लिख दिया कि इनका कृषी व्यापार करके हर साल क्रमशः बढाते रहना इसमें जितना खर्च होगा उतना मे अर्पण कर दूंगी इस प्रकार चारों स्त्रियोंने अपनी २ मति अनुसार कारखाई की

कितनेक वर्ष व्यतीत होने पर शेठको एकवार स्मरण हुवा कि मैने जो परीक्षा की है उसका क्या नतीजा हुवा उसें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये यह विचार पूर्वानुसार सर्व रिस्तहदारोंको एकत्रित किये और उसही प्रकार उन चारों स्त्रियोको अपनी दी हुई वस्तुको लेकर हाजिर होनेकी निमन्त्रण की

प्रथमा स्त्री अपने कोठार (धान्यगृह) मेंसे पाचे दाने लेकर रवाना हुई, द्वितीयाने भी इसही प्रकार किया, तृतीयाने अपने जवाहिरातका डिब्बा लेकर प्रस्थान किया, चतुर्थाने कितनेक दिन प्रथमसें ही अपने पाच दानेकी परपरा

तुगत पैदावारीके पाचसौ शालिकी गाड़ियें मंगवा रखी थीं और यह हुकम दे दियाया कि अमुक दिनकी अमुक टाइम पर अमुक स्थान पर हाज़िर हो जाना; इस प्रकार सर्व स्त्रियें अपनी २ तैयारी कर सुसराजीके चरणसरोजमें प्रवेश हुई

शेठजीने उन चारों स्त्रियोंको यह आज्ञा दी कि वेशालीके दाने वापिस अर्पण करो; आज्ञा पातेही वे चारों क्रमशः प्रवृत्त हुई

प्रथमा स्त्रीने जब वेशालीके दाने अर्पण किये तब शेठजीने कहा कि ये वे खास दाने नहीं है कि किन्तु अन्य है? सच बतलाओ! वे कहा गये? इसही प्रकार द्वितीया स्त्रीका भी सम्बन्ध जानना उन्होंने अपनी २ कारवाई प्रकट रूपसे निवेदन कर दी

तृतीया स्त्रीने जवाहिरातके डिब्बेमें सें वे दाने निकाल कर नजर (भेट) किये और अपना पूर्व कृत विचार निवेदन किया, सुनते ही शेठजी प्रसन्न हुवे चतुर्था स्त्रीने वेशालि की पाचसे गाडियें समर्पण की और अपना पूर्व कृत सर्व प्रकट किया यह सुन शेठजी अगाध प्रसन्न हुवे और उसही समय इन चारों स्त्रियोंकों पृथक पृथक् पदसे नियुक्त की

प्रथमा स्त्रीको फूस (काजा) निकालने का काम सिपुर्द किया और यह कहा कि तूंने जैसे शालीके दानेकी परवाह नहीं की इस प्रकार द्रव्य को भी बरबाद कर देगी इस लिये तुझे यही कार्य योग्य है यह कहकर "उज्झिया" नाम बक्षीस किया

द्वितीया स्त्रीको भोजन बनानेका कार्य बक्षीस किया और यह कहा कि जैसें तूंने शालीके दाने भक्षण कर लिये तेसें हीं हरेक चीज खानेमे तेरी अधिक प्रीति है इसलिये तुझे भोजन बनानेका तथा प्राहुणे आदि जिमानेका कार्य सोंपा जाता है यह कहकर "भक्खिया" नाम प्रदान किया

तृतीया स्त्रीको भंडारका कार्य सिपुर्द किया और यह आज्ञा दी कि जिस

प्रकार तूंने शालीके दाने सम्भाल कर रखे थे उसही प्रकार घरकी सर्व वस्तुऐं सावधानीसे रखना यह कहकर "रक्षिका" ऐसा नाम बक्षीश किया

चतुर्थी स्त्रीकों स्वामिनी पद बक्षीस किया और अति प्रसन्न होकर यह कहा कि तूं बड़ी बुध्धिमती है, लघु वयमें इतने चातुर्य और साहसिकादि गुणों से अलङ्कृत है इसलिये गृह सबंधि सर्व कार्य तेरे सिपुर्द किये जाते है तेरी आज्ञाके बगैर कोई कार्य नही हो सकेगा इत्यादि कहकर "रोहिणी" ऐसा नाम प्रदान किया

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रोहिणीने शालीकी वृध्दि की इस ही प्रकार मुनिराजकों पञ्च महाव्रत उज्वल रूपसें पालन करनेमें कटिबध्द होना चाहिये कदाचित वृध्दि करनेकी सामर्थ्य न हो तो मूलकी अवश्य ही रक्षा करना चाहिये इस प्रकार संयमका प्राप्त होना अति दुष्कर है; यदि संयम प्राप्त हो गया और वीर्य (शक्ति) प्रकट न हुवा तो भी यथेष्ट प्राप्त नही हो सकती कारण की वीर्यका पाना भी अति दुर्लभ है देखियेः—

॥ प्रार्थनारूप उपदेश ॥

कई महानुभाव श्रमण पद प्राप्त होनेके पश्चात् सामर्थ्य होनेपर भी विनय, वैयावच्च, तप, जप, ध्यान, पठनपाठनादि क्रियाओंमें अपनी शक्तिका यथोचित उपयोग नही करते है वे आराम तलबी लोग शारीरिक सुखमें निमग्न हो कर सदाचारोंसें पतित हो जाते है यहा तककि आपखुदका भी अन्यपर निर्भर रहता है वे महानुभाव इतना भी नही सोच सकते कि परकी आशा अवश्य धोका देनेवाली है सज्जनो ! किसी ज्ञानी गुरुने ठीक कहा हैः—

(गाथा)

परकी आशा सदा निराशा । ये जग जनका फॉसा ॥
य काटनकाकरो अभ्यासा । लहो सदा सुखवासा ॥ आप स्वभाव ॥१॥

सज्जन श्रोताओं ! ये कायर लोग अपने शिष्यसमुदायमें ग्रस्त होकर सूरवीरतासे विमुख हो जाते है, जो महानुभाव अपने भुजा बलसें सर्व कार्य करते है अथवा करनेकों समर्थ है वे भव्यात्मा अपनी यथेष्टाकों प्राप्त कर सकते है

दीक्षा लेनेके समय बुध्दि जन यह विचार करते है कि अपने समस्त कार्य के अतिरिक्त गुरु महाराज तथा अन्य रत्नादि मुनिवरोंकी सेवा करना हमारा मुख्य धर्म होगा इस भव और परभवमें सच्चा साहाय्यकारी हमारे भुजा बलसे किये हुवे कार्य ही हो सकेंगे अन्य सर्वाश्रय व्यावहारिक लहरोमें बह जॉयगे इस प्रकार उत्तम विचारोंसें जो भव्यात्मा निर्मल चारित्रको ग्रहण करता है वह सूरवीरता पूर्वक इस विषम संसारमे विजयका झंडा बजा सकता है अपनी आत्मा और परमात्माका उध्दार करनेको समर्थ हो सकता है किन्तु ऐसा शुभ कर्म उदय आना अति दुर्लभ है इस प्रकार धर्म देशना होनेके बाद जय २ शब्दोंसे दशों दिशाओं पूरित की गई

ये महानुभाव कितनेक दिन तक इस शहरमें ठहरे और धर्मकी अत्युन्नतिकी चातुर्मास संपूर्ण होनेके पश्चात ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे मरुस्थल देशके सुप्रसिध्द शहर योधपुरमें प्रवेश किया वहापर आत्म कल्याण तथा भव्यात्माओंका उद्धार करते हुवे सानन्द निवास करते रहे

॥ चारित्र रक्षा तथा भव्योपकार ॥

इस स्थलपर कितनेक दिन निवास करनेके बाद ग्रामानु ग्राम विहार करके भव्यात्माओंका उध्दार करते रहे दुषम कालके महात्म्यसें दुष्ट कर्मोंनें गुरुवर्य्य श्री राजसागरजी, ऋध्दिसागरजीको आनघेरा जिससे आपको चारित्रसें शिथिल होना पड़ा* इस अवस्थाको देख परम वैरागी पूज्यपाद श्रीमान् सुख-

---

* ॥ विधिरहो बलवानितिमेमतिः ॥

अहाहा ! कर्मकी गति विचित्र है इसने बडे २ तीर्थंकर, गणधर और महानाचार्य एवम् चक्रवर्त्ति, वासुदेव प्रतिवासुदेव और बलदेव तथा बडे २ राजा महाराजा और शेठ साहूकारोंको अपनी फॉसमे दबा लिये

सागरजी महाराजकी तबियत उन लोगोंसे दिन बदिन हठती रही अन्तमें अपकों निर्मल चारित्रकी रक्षा करनेके हेतुसिरोही (गोम्वाड) राज्यमें वीर संवत २३७७ विक्रम संवत १९१८ में पृथक् हो ना पड़ा इस समय मुनिराज श्री पद्मसागरजी और गुणवन्तसागरजी आप महानुभाव के सहचारी हुवे

सर्वज्ञ भक्तों ! आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि यह महानुभाव कैसी निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाले तथा किस प्रकार उत्तम चारित्र पालन करने वाले थे; मैं इस बातको दावेके साथ कह सकता हूं कि जिन भव्यात्माओंने इन भव तारकके दर्शन किये है उन्होने अपनी पवित्र जिह्वा द्वारा मुक्त कण्ठसें प्रशंसा की है तथा करते हैं धन्य हो, मुनि रत्न हों तो ऐसे ही हों

आप महानुभावने अपने निर्मल चारित्रकी आराधना करते हुवे उपरोक्त दोनो मुनिराजोंके साथ सिंहके सदृश मारवाड़, मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़,

---

आपकों यह बखूबी रोशन होगा कि इस ही दुष्टने कइ एक श्रुतकेवलियों (चतुर्देश पूर्वधारी) कों नरक निगोदमें पकडगेरे क्या यह कम आश्चर्य है ? इसही प्रकार बडे २ योगीश्वर, यानी महात्मा और ऋषीश्वरोकों चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके सन्मुख कर दिये सज्जनो ! क्रोडो उपाय क्यों न किये जॉय किन्तु निद्धत्त और निकाचित बगैर भोगे हरगीज नहीं छूट सकते देखिये किसी ज्ञानी महात्माका कथन है —

(श्लोक)

कृतः कर्मक्षयोनास्ति । कल्पकोटी शतैरपि ।
अवश्य मेव भोगतव्य । कृतः कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥

भावार्थः—कोटाऽनुकोटी कल्प पर्यन्त क्यों न उपाय किया जाय किन्तु बधन क्रिया हुवा कर्म कदापि नष्ट नहीं हो सकता, शुभाशुभ जो कुछ कि कर्म बधन कर चुके है उसे अवश्य ही भोगना पडेगा यह निर्विवाद विषयहै

आपकों उपरोक्त व्याख्यासे यह विज्ञात हो गया होगा कि दुर्जय कर्मराज कितना बलीष्ट है बस इसहीके प्रचण्ड प्रकोपसें आपको भी गस (मूर्छा) खाना पड़ा.

कच्छादि देशोंमें विचरकर सराहनीय धर्मोध्धार किया एवम् परम पवित्र श्री शत्रु-जय तीर्थराजकी जियारत (यात्रा) कर अपना मानव भव सफल किया तत्पश्चात् ग्रामानुग्राम विहारकर क्रमशः फलवर्ध्धि (फलोदी) जिला योधपुर–मरुस्थलमें पदार्पण किया वहाके श्री संघपर अगाध उपगार कर कृतकृत्य किये; जहा तक मेरा खयाल है मैं कह सकता हू कि सबसें अधिक उपगार आपका इस ही क्षेत्रमें हुवा है मगर तदपि कितनेक कृतघ्न लोग आपके उपगारकों विस्मृत हो रहे है तथा बहुतसें महानुभाव उनके पवित्र नामको वारंवार स्मरण कर अपनी आत्माका कल्याण करते है गत वर्षमे मैंने भी इस स्थलपर चातुर्मास किया है मै अपने अनुभवसें कह सकता हूं कि कइएक भव्यात्मा उनके नाम कों फुरते हुवे अपनी अलौकिक भक्तिका दृश्य दिखलाते थे

इधरसे रूपश्रीजीकी शिष्या उद्योतश्रीजी अपने अखण्ड चारित्र प्रतिपालनके हेतु अपनी शिथिल संप्रदायसें पृथक् होकर वीर सवत २३९१ विक्रम संवत १९२१ में फलोदी आयें और पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराज सें वासक्षेप लेकर अपना जन्म पवित्र किया; यद्यपि राजसागरजी महाराजकों गुरु मान चुके थे तदपि उनसें पृथक् होनेसे तथा उन्हकी शिथिलावस्था समझकर तरणतारण गुरु इनही महानुभावोकों माने इसही लिये पुनरपि शुध्द वा सक्षेप ग्रहण किया

पूज्यपाद गुरुवर्यने तीन वर्षोंके वाद यानी वीर संवत २३९४ विक्रम सवत १९२५ में भगवनूदासकों दीक्षा देकर अपने निज शिष्य वनाये नाम भगवान् सागरजी रख्वा गया उधर उद्योतश्रीजीने दो वर्ष रहनेके वाद वीर संवत २३९३ विक्रम संवत १९२४ में श्राविका लक्ष्मीवाईकों दीक्षा देकर अपनी निज शिष्या वनाई नाम लक्ष्मीश्रीजी रख्वा गया उस वख्त इस समुदायमें केवल तीन मुनिराज व तीन साध्वियोंजी निवास करते थे

(नोट)

गुरुवर्यके फलोदी पदार्पणके पहिले ही पद्मसागरजी पृथक् हो गए थे तथा बीकानेर निवासिनी आप साहबकी हस्त दीक्षिता धन्नश्रीजी उद्योश्रीजीसें मिल गए लिहाजान मुनिराजवन साध्वियोजी विद्यमान थे

उसही समयसें श्रीमान् "सुखसागरजी महाराजके नामसें सिंघाडा" मशहूर हुवा उसके पेस्तर श्रीमान क्षमाकल्याणकजीणी महाराजका सिंघाडा इस नामसे जाहिरथा बीचमें कितनेक लोग राजसागरजी महाराजका भी सिंघाडा कहा करते थे मगर जबसे यह महानुभाव सिथिलावस्थाको पहुचे और भवतारक पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी महाराजने पृथक् होकर अपना व गुणवन्तसागरजी वगेराका एवम् उद्योतश्रीजी आदिका उध्धार किया तबसें क्षमाकल्याणजी महाराजके नमास वासक्षेपमाला जाता है और सुखसागरजी महाराजके नामसें सिंघाडा कहा जाता है

अहाहा ! धन्य हो ऐसे नररत्नकों कि जिसने डूबती हुई जहाजको तिरा दी मैं इस बातको प्रकट रूपमें कह सकता हू कि हमारे समुदायमें इनके बराबर अबतक इस प्रकार कोई अतुल उपगारी नही हुवा नही ! नही ! ! इतनाही नही ! ! ! किन्तु सर्व जैन समदायमें निकट वर्षोंमें आसपास इन महानुभावके तुल्य इस प्रकार अवर्णीय उपगार करनेवाला नहीं हुवा होगा यद्यपि उपगारी कइएक प्रकारके होते है मगर तदपि अवसर उपगारी सबसें बडा होता है और आप महानुभावने इसही बृहत् उपगारको किया है

मोक्ष अभिलापियों ! आपके अन्दर ऐसे ही अलौकिक गुण भरे हुवे थे कि जिसका पार पाना मुश्किल है आप अपनी आत्माकों सुखरूपी सागरमें निमग्न करते हुवे अनेक भव्य जीवोंकों सुखी करते थे देखियेः—

॥ यथा नामस्तथा गुणाः ॥

सुखयतिजनानूतत सुखं–सुखानासागरः इति सुखसागरः इस षष्ठीतत्पुरुष समासमें आपको विदित हो गया होगा कि वे महानुभाव कैसे गुण करके सुशोभित थे, सुख एक ऐसी चीज़ है कि जिसमें सर्वोत्तम पदार्थोंका समावेश हो जाता है

सज्जन पाठकवरों ! सपूर्ण नामके अंदर गुण होना कुछ आश्चर्य नही है किन्तु आपका एक १ अक्षर अगण्य दिव्य गुणोंसे इस प्रकार भरा हुवा है

कि जिसका लिखना हमारी लेखनीसे बाहिर रहै तदपि अपनी अल्प बुद्ध्यानुसार किञ्चित् लिख दिखाते हैः--

॥ गुरु भक्तिपर दोहरे ॥

सुखसागर गुरुरायके ॥ गुण गाऊं चित लाय ॥
अक्षर अक्षरके प्रति ॥ बहु गुण रह्या समाय ॥ १ ॥

सुः– सुमति सदा गुरु चितवसे ॥ कुमति भगे अति दूर ॥
त्रिकरण शुद्धि करते ॥ दिव्य ज्ञान भरपूर ॥ १ ॥

खः– खलके मित्र गुरुथे सदा ॥ करुणारस भंडार ॥
पर उपगारमें मग्नथे ॥ दर्शन निर्मल धार ॥ २ ॥

साः– सायरसम गंभीर गुरु ॥ चारित्र रत्न भंडार ॥
ब्रह्मचर्य गुरु धारते ॥ महिमा अपरंपार ॥ ३ ॥

गः– गगनसमा गुरु निर्मला ॥ रवि सम तेज प्रताप ॥
शशिसमान थी सौम्यता ॥ मणि सम शोभे आप ॥४॥

रः– रहस्य रङ्गमे झीलते ॥ आत्मध्यानमें लीन ॥
कर्म वृन्दोंको तोड़ते ॥ होके मोक्षाधीन ॥ ५ ॥

जीः– जीवाजीव विचारमें ॥ निपुण रहे गुरु राज ॥
षट् द्रव्यमें लीनथे ॥ बुद्धिवन्त महाराज ॥ ६ ॥

मः– महा दुष्ट रिपु कामकों ॥ जिनमे दिया हटाय ॥
रतिकी मती बिगाड़ दी ॥ सूरवीर महाराय ॥ ७ ॥

हा:– हानीकारक कार्यको ॥ नष्ट किये तत्काल ॥
दूर हटाया दुष्टकों ॥ मोद महा विकराल ॥ ८ ॥

रा – रागरहित वैराग्यमें ॥ रमण कियाथा नाथ ॥
मनवच काया दमन करी ॥ सुमति सखीके साथ ॥ ९ ॥

ज.– जस कीर्त्ति गुरु राजकी ॥ सकल विश्व विख्यात ॥
बाल शिष्य आनन्दकों ॥ दर्शन दो साक्षात ॥ १० ॥

आप वेही महानुभाव है कि जो बृहतखरतर गच्छाधिपति महा महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणकजी महाराजके पचम पद (पीढ़ी) पर होते हैं जिसका कि किञ्चित् विवरण ग्रन्थके अन्तिम भागमे लिखेंगे

मै इस बातको अति खेदके साथ प्रकट करता हू कि आप महानुभावका फोटो (तसवीर–छवी–चित्र) मौजूद नहीं है वरना हम अपने प्यासे नेत्रोको तृप्त कर अपनी आत्म विशुद्धि करते मगर सच है! भाग्य हीनोको ऐसे सत्पुरुषोंके दर्शनोका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है सज्जनो! इस अवसरमें उनकी सौम्य मूर्तिको ध्यानमे लानेके लिये आपके शान्त स्वरुपके कितनेक चिन्ह लिख दिखाता हू'––

॥ शान्तमुद्रा ॥

आप महानुभाव गन्दूमीरङ्ग, गोल चहरा और मझोलेकदसें तथा माध्यस्थ शारीरिक स्थिति करके सुशोभित थे; एवम् ललाटाकृति अतुला पुण्याईसें झलकती हुई अपनी अजीब शोभाको प्रकट करती थी; शान्त रससे भरी हुई आपके मुखकमलकी छवी भव्य जनोंके चित्तोंको मोहित करती थी आपके दर्शनोंका यहा तक प्रभाव था कि जो प्राणी एकवख्त कर लेता था वह वहासें अलग होनेकी इच्छा ही नहीं करता कहा तक कहा जाय आपके अवर्णीय गुण अपरम्पार है ।

॥ अपूर्व गुणोंका दिग्दर्शन ॥

सुज्ञ जनो ! आपने ३६ वर्ष पर्यन्त अखण्ड चारित्र पालन कर शासनकी सेवा की इस अवसरमें आप महोदधिने अनेकानेक उत्तम कार्य किये जिसकी कि व्याख्या हमारी बुद्धिसे बहार है तदपि यत्किञ्चित उध्धृत कर पाठकोंकी सेवामें लिख दिखाते हैं:—

(सम्यग् ज्ञानकी महिमा,)

(श्लोक)

यथाऽवस्थित तत्वाना । संक्षेपादि विस्तरेणवा ॥
योऽवबोधस्तमत्राहुः । सम्यग्ज्ञान मनीषिणः ॥ १ ॥

भावार्थः—संक्षेपसे या विस्तार पूर्वक तत्वोंका यथार्थ बोध होना उसे विद्वान् लोग सम्यग् ज्ञान कहते है

विवेचनः—यद्यपि ज्ञान शब्दका अर्थ जानना मात्र होता है तदपि सामान्य जानने और तात्विक जाननेमें जमीन आसमानका अन्तर है यह प्रकटत विख्यात है—जहाँ तक प्राणी तात्विक विषयोंसे वञ्चित है वहां तक आत्माका उद्धार हरगिज नहीं हो सकता इस ही लिये तात्विक बोधके यथार्थ जानपनेको सम्यग् ज्ञान कहते हैं

आप महानुभाव ज्ञानके ऐसे उत्तम रसिक थे कि प्रायः हमेशा सूत्र सिद्धान्त अवलोकन किया करते थे और उनके क्लिष्ट विषयोंको मनन कर अपनी आत्माको ज्ञान रसमें मग्न किया करते थे निर्मल ज्ञानके यहातक उत्सुक थे कि यदि कोई विषय समझमें नहीं आता तो इतना अगाध प्रयत्न करते कि जो प्रायः अवश्य सफलीभूत होता, देखिये:—

(दिव्य पुरुषार्थ.)

-एक दिनका जिक्र है कि आप पञ्चमाङ्ग "श्री भगवती सूत्र" पढ रहे थे उसमें गाङ्गेय मुनिके क्लिष्ट भांगे समझमें नहीं आये तब आपने फलो-

धीमें रहे हुवे यतिवर्य रावत सुन्दरजी (जो कि आपके गाढ़ परिचित थे) को दरियाफत् किया किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उस समय उन्हे यथार्थ समझमें नहीं आ सके इस अवस्थाको देख गुरुवर्यको गहरी चिन्तामें निमग्न होना पडा तदपि प्रयत्नसे पराङ्मुख नही हुवे सच है ! उत्तम जनोंका यही धर्म है देखिये नीतिकारने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

प्रारभ्यतेन खलुविघ्नभयेन नीचैः ।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमतिमध्या ॥
विघ्नैपुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।
प्रारभ्य सुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ १ ॥

भावार्थः—अधम पुरुष विघ्नके भयसें कोईकार्य आरंभ नहीं करते तथा मध्यम पुरुष प्रारंभ करने पर यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसे परित्याग कर देते है; किन्तु उत्तम पुरुष प्रारम्भ करलेके बाद बार २ उपसर्गसें दुःखित होने पर भी कभी नहीं छोड़ते

अब आपको रातदिन इस विषय कि चिन्ता होने लगी अखीर कितनेक दिनके पश्चात् एक दिन आप शान्तता पूर्वक धर्मशालामें विराजमान थे उस समय अचानक उन क्लिष्ट भावोंकी श्रेणी आपके खयालमें प्राप्त हो गई फिर क्या पूछिये चिन्ता देवीने प्रस्थान किया आप आनन्द रसमें झीलने लग गये उसही वख्त उपरोक्त यतिवर्यको बुलाकर अपने विचार प्रकट किये आपके संयोगके पहिले ही यतिवर्यको कुछ २ समझमें आ चुके थे किन्तु इस अवसरमें दोनोकी एक सम्मति होकर विजयको प्राप्त हुवे कहनेका तात्पर्य यह है कि आप तत्वज्ञानमें असाधारण प्रयत्नशील पुरुष थे सज्जनो ! आपने इस उत्तम अनुभवसें भव्य जीवोंके उपगारके हेतु अनेक गोलवालादि सिध्धान्तोमेंसें उध्धृत किये देखियेः—

पन्नवणा सूत्रके प्रथम पदसे जीवाजीव राशीका विस्तार उध्दृत किया जो कि "श्री ज्ञानवर्धक जैन मित्र मण्डल" सैलाना-मालवाकी तर्फसें "जीवाजीव राशि प्रकाश" नामक ग्रन्थ वीर संवत् १४३७ विक्रम सवत १७६७ ईस्वीसन् १९१० में प्रकाशित हो चुका है आपाके कल्पसूत्रमे नवकार वगेराकी कथाओंका समावेश कर सरस ग्रन्थ बनाया मुनिराजोंके लाजकारी अनेक सूत्रोंमेंसे उध्दृतकर १०८ बोलोंकी रचना की ६२ मार्गणाओंका जीवोंके ५६३ जेदोंके साथ बासठिया यन्त्र एवम् गुणस्थान, गत्यागति, समुच्चय, मूल हेतु, अल्प बहुत्व इत्यादि बहुतसे यन्त्रोंकी रचना की एवम् अनेक दशक, अष्टक, सतक इत्यादि नाना प्रकारके गहन थोलाचालादि उध्दृत किये इतना ही नही किन्तु जव्यात्माओंके आप यहा तक हितेच्छु थे कि शास्त्रमें अति आवश्यकीय पदार्थ जो देखते उनका शीघ्र ही नोट कर लेते थे आपके हस्त-लिखित कई एक छोटे २ अमूल्य परचे इस वक्त जी दृष्टिगोचर होते है मैं कह सकता हू कि आपके समुदायमें रहे हुवे कई एक साधु बहुतसे गहन बोलचा-लादिसें परिचित है यह आप महानुजावका ही विशाल प्रजाव है कहाँ तक कहा जाय इस विषयमें आपका अकथनीय उपगार श्लाघनीय है

(पाठन शैली)

आप महानुजाव जव्यात्माको पढानेके अन्दर जी अगाध प्रयत्न करते थे, इस समुदायमें रहे हुवे कितनेक साधु, साध्वी जो कि आपके पढाए हुवे है जैन शासनका निम्नर विजय कर रहे है; तथा कई एक श्रावक, श्राविकाओंको उत्तम धर्म शिक्षा प्रदान की आप हरएक चीजको समझानेके वास्ते असाधा-रण प्रयत्न करते थे, यदि किसीकों एकवार कहनेसें समझमें नही आता तो दो वार, चार वार, दश वार समझाते किन्तु दिल पर कजी ग्लानी नहीं लाते थे जिन २ महानुजावोंने आपके चरणों की सेवा की है वे वेशक किसी कदर तत्त्वज्ञानसें परिचित हुवे हैं; आपकी पाठन शैली जगज्जनको मोहित करती थी हरएक चीज इस क्रमसे पढाते थे कि बहुत दिन आवृत्ति न करने पर जी यकायक मनोमन्दिरसें पृथक् नही हो सकती थी आप अनेक जव्यात्माओंको

उत्तम ज्ञान देकर रत्नचिन्तामणि अपने मानव भवको सफल कर गये कहां तक कहा जाय आपका असाधारण उपगार जगत प्रशंनीय है

(अमृत रसका आस्वादन)

आप जिस वख्त व्याख्यान देते थे उस वख्त वचनामृतसें श्रोतागणोंके चित्तोंमें ऐसा भान पड़ता था कि मानो साक्षात् बृहस्पति ही व्याख्यान देते हों; जिस वख्त आदिमें नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करते थे उस वख्त सिंहरूप नादसें व्याख्यानगृहगूंज उठता था और समस्त श्रोता जन शान्तरसमें निमग्न हो जाते थे गाथा या श्लोक इस प्रकार स्पष्ट फरमाते थे कि साधारण पुरुषको भी बहुतसा अर्थ प्रतीत हो जाता था आप जिस वख्त किसी विषयकी व्याख्या फरमाते उसे ऐसे अपूर्व सरस शब्दोंकी लतामें ग्रथित करते थे कि श्रोता जन एकाग्र चित्त होकर श्रवण करते; तथा अपनी अनिमेष दृष्टिसे गुरुवर्य के मुखकमलको अवलोकन करते थे आपका सुस्वर नामक कर्म अपनी अपूर्व शोभाको प्रकाशित करता था व्याख्यानमें प्रायः विशेषतः वैराग्यरस, शान्तरस और करुणारस अपनी अजीब शोभाका अलौकिक दृश्य दिखलाते थे; शेष रस भी आवश्यकता पर अपनी योग्य स्थिति प्रदर्शित करते थे आपकी अमृतमय देशनासें भव्यात्माओंके हृदय कमल इस प्रकार प्रफुल्लित हो जाते थे कि जैसे सूर्यके दिव्य प्रकाशसें कमल विकशित हो जाते हैं आपकी अमृतमय देशनाका पान कर भव्यात्मा आनन्द समुद्रमें गोता लगाने लग जाते थे; कहां तक कहा जाय आपकी व्याख्यान शैली जगज्जन प्रिय थी

आप महानुभाव निर्मल ज्ञानकी उत्तम उपासना कर दुष्ट ज्ञानावर्णीय कर्मको निकन्दन करते थे और ज्ञानी पुरुषके प्रति बहु ही पूज्यभावसे अवलोकन कर उत्तम सत्कार करते थे, कोई भी प्राणी शत्रुता या ईर्षा वश होकर यदि किसी ज्ञानी पुरुषकी निन्दा करते तो वे शूल सदृश शब्द आपको असह्य दुःखसें दग्धित करते थे सच है ! उत्तम पुरुषोंका ऐसा ही स्वभाव होता है

सज्जनो ! ज्ञान बराबर जगत्रयमें कोई पदार्थ नहीं है ज्ञान कहो चाहे विद्या कहो एक ही अर्थ होता है जैसें धनको पाकर प्राणी खानपानादिके

सुखोंमें आनंदित होता है तैसें ही इस विद्याका विषय समझ लेना मगर इतना अवश्य अन्तर है कि धनवाला तो इस ही भवमे साधारण सुखोंको प्राप्त करता है, जिसमें भी अनेक मुसीबतें उपस्थित रहती है; मगर ज्ञानवान्‌की तो विचित्र ही लीला है यह धन जोबन जितना है सब विद्या रत्नकें बगेर निस्सार है भव्य प्राणीके विद्या समान कोई उत्तम अलंकार नही है भोगोपभोगका सरस पन भी इस हीसे प्राप्त होता है किसी नीतिकारने ठीक कहा है:—

(श्लोक:)

विद्यानाम नरस्यरूपमधिक पृच्छन्न गुप्तंधनं ।
विद्याभोग करीयशः सुखकरो विद्यागुरुणा गुरु: ॥
विद्याबंधुजनो विदेशगमने विद्यापर देवतं ।
विद्याराजसु पूज्यतेनतुधनं विद्याविहिनः पशुः ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्योंका विशेष सुरूप एक विद्या ही है जो कि अन्तरात्मामें रहा हुवा गुप्त धन है यह महा गुरूरूप विद्या, भोग, यश और सुखको करनेवाली होती है यही विद्या विदेश गमनमे भ्रातृवत् साह्यकारी होती है और यही विद्या उत्कृष्ठ देवपनेको धारण की हुई है; अन्य धन राजा, महाराजा और चक्रवर्त्तिसें उसें विनय, बहु मानसें नही पूजे जाते कि जितनी विद्या महाराणी पूजी जाती है और इस ही लिये विद्याके बगर प्राणी पशु तुल्य समझा जाता हैं इस प्रकार इस भवमें साधारण सुखोके अतिरिक्त परभवमें अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त कर सकता है देखिये कितने २ गुण प्राप्त होते है:—

॥ दोहरे ॥

जगके सबही धननमें । विद्या धन शिर मोर ॥
यह तो व्यय कीने बढे । घटत जात धन ओर ॥ १ ॥
याते तुमको उचित है । मानो गुरुकी शीख ॥
गुणीजननपे माँगिये । विद्या धनकी भीख ॥ २ ॥

विनय वढाई देत है । जगमे आदरमान ॥
विद्या ही परलोकमे । देत मुक्तिको स्थान ॥ ३ ॥'

केवल नीतिकार ही इसकी प्रशंसा करते हों ऐसा नहीं समझियेगा किन्तु तीर्थंकर, गणधर, श्रुत केवली और माहन आचार्योंने इसकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है देखिये महा महोपाध्याय श्रीमद्यशोविजयजी महाराज अपने नव पद पूजाके सप्तम ज्ञानपद पूजामें इस प्रकार फरमाते हैं:—

॥ गाथा ॥

प्रथम ज्ञानने पीछे अहिंसा । श्रो सिद्धाते भाख्युं ॥
ज्ञानने वदो ज्ञान मनिन्दो ज्ञानीये शिव सुख चाख्युं. भ०सि०॥३१॥
सकल क्रियानुं मूल जे श्रद्धा तेहनु मूल जे कहिये ॥
तेह ज्ञान नित २ वन्दिजे॥ते विण कहो केम रहिये.भ०सि०॥३२॥

इससे आपको विज्ञात हो गया होगा कि ज्ञान एक कैसी उत्तम पदार्थ है वे महानुभाव इस मोक्षदाता सम्यक् ज्ञानकी असाधारण आराधना करते थे तथा इसही प्रकार प्रयत्न कर अनेक भव्यात्माओंको आराधन करवाते थे तथा अनुमोदन तो एक अद्वितीय गुणोंसें ही विभूषित थी आपको इस निर्मल ज्ञानका ऐसा सुदृढ व्यसन था कि जैसें मनुष्योंको भोजनका व्यसन होता है कहा तक कहा जाय आप ज्ञानके एक अपूर्व भक्त थे आपकी अवर्णीय महिमा विश्व प्रशंसनीय है पाठकवरों! अब मै आपके दर्शन पदकी कुछ महिमा लिख -दिखाता हूं:—

॥ सम्यग् दर्शनका विवेचन ॥

रुचिर्जिनोक्त तत्वेषु । सम्यक् श्रद्धान मुच्यते ॥
जायतेतन्निसर्गेण । गुरोरधि गमेनवा ॥ १ ॥

भावार्थ —स्वाभाविक यानी स्वकीय मतीसें अथवा गुरु सकाशात् यानी परमोप-

कारी गुरु महाराजकी अतुल कृपासें जिन भगवान् प्रणीत तत्वों पर सुदृढ रुचि होना उसे सम्यक् श्रद्धा (दर्शन) कहते हैं.

विवेचनः—हमे ऋषभदेव प्रणीत या महावीर कथित शब्दों पर आग्रह हो ऐसा नहीं किन्तु जिन भगवान्के फरमानका ही हमारा मन्तव्य है आपको यह भलीव प्रकार विज्ञात होगा की जिन किसें कहते हैं देखिये —

य रागद्वेषादि शत्रुन् जयतिसजिन —जिस महानुभावने रागद्वेषादि अशेष शत्रुओंको विजय कर डाला है उसे जिन कहते हे–जो केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथा ख्यात चारित्र गुण करके सुशोभित है तथा अनेक लब्धियों करके विभूषित हैं जो एक समय (कालका सबसे छोटा हिस्सा) में लोकालोकको हस्त रेखावत् देखते हे देखिये किसी महा ऽनुभावका कथन है —

"त्रैलोक्य युगपत्कराम्बुज भुवन्मुक्तावदा लोकते" यानीवे जिन भगवान् करकमलमे लुटते हुवे मोतीके सदृश ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग इन तीनो लोकोंको एक कालावच्छिन्न सें अवलोकन करते है

चाहे वे किसी नाममे मशहूर हो किन्तु एतावत्, गुण विशिष्ट जो जिन भगवान् है उनहीके प्रणीत तत्वोपर रुचीका होना उसे सम्यग् दर्शन कहते है

आप महानुभाव सम्यक दर्शन (श्रद्धा) में ऐसे सुदृढ थे कि यदि इन्द्र भी आकर क्षोभित करता तो आप किञ्चिदपि चलायमान नहीं हो सकते थे कदाचित् सूर्य अपनी पूर्व दिशाकों छोड दैव प्रयोगसें पश्चिम दिशामें उदय होने लग जाय, मेरु पर्वत कोई उपसर्गसें कम्पायमान हो जाय, समुद्र वायु प्रकोपसें अपनी मर्यादाकों परित्याग कर दे, पृथवी किसी कारणसें अपनी सहनशीलताकों छोड रसातलमें चली जाय, अग्नि शीतलता धारण कर ले, जल उष्ण प्रकृति स्वीकृत कर ले, आकाशमे पुष्प खिलने लग जाय, खर सिंगकों धारण करने लग जाय, वन्ध्याके पुत्र प्रसूत हो जाय, महिला दाढी, मूछसे सुशोभित हो जाय, करतल पर बाल पैदा होने लग जाय, ऊसर भूमिमे नाज उत्पन्न हो जाय, सर्प अमृतरस देने लग जाय, जहर जीवन दशाको प्राप्त करा दे, स्त्री तीर्थंकर गौत्र बांधने लग जाय किन्तु वे महानुभाव अपने निर्मल दर्शनसें कभी चलायमान नही हो सकते थे कहनेका तात्पर्य यह है कि उपरोक्त

वस्तुऐं विपरीत दशामें प्रवृत्त नही हो सकती है किन्तु कदाचित् देव प्रयोग या अन्य किसी कारणसें ऐसा हो भी जाय तदपि वे महानुभाव मनागपि चलायमान नही हो सकते थे; अर्थात् ऐसे सुदृढ थे कि जिसका विवरण हमारी लेखनीसें वहार है

श्रद्धा एक ऐसी पदार्थ है कि जिसमें मनुष्य अवश्य अपनी इष्टताकों प्राप्त करता है यावत्प्राणी सम्यग् दर्शन प्राप्त न कर ले तावत् अन्य धार्मिक क्रियाओंसें केवल निरस पुण्य प्रकृतिका बन्धन कर क्षणिक सुख प्राप्त करता है किन्तु मोक्ष मार्गसें सदैव विमुख रहता है देखिये अभव्य जीव अनेक कष्ट क्रिया कर यावत् नवग्रैविक देवलोकमें पहुचता है; किन्तु सम्यग् दर्शन न होनेसें चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीके पाशसे पृथक् नही हो सकता, अर्थात् शिवसुखसे हमेशा पराङ्मुख रहता है दर्शनसें भ्रष्ट हुवा मनुष्य मोक्षको कभी प्राप्त नहीं कर सकता देखिये पूर्वाचार्य श्रीमान् रत्नशेखर सूरीश्वर अपनी वनाई हुई सम्वोध सत्तरीके १७-वे गाथे में फरमाते है

॥ गाथा ॥

दंसणभठो भठो दसण भठस्स नच्छिनिव्वाण ॥
सिझन्ति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिझन्ति ॥१॥

भावार्थ---दर्शन (सम्यक्त) से भ्रष्ट हुवा प्राणी भ्रष्ट समझा जाता है इसही लिये दर्शन भ्रष्टकों निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त नही हो सकता चारित्र रहित प्राणी तो सिद्ध पदकों प्राप्त कर भी सकता है किन्तु दर्शन रहित प्राणी कभी शिव पद नही पासकता

उपरोक्त गाथासे आपको विज्ञात हो गया होगा कि दर्शन एक कैसी उत्तम पदार्थ है और इस ही पवित्र पदको आप गुरुवर्य असाधारण रूपसें आराधन करते थे बाह्य सम्यक्त ग्रहण करनेके हेतु शुद्ध देव, शुद्धगुरु और शुद्ध धर्मकी उपासना करते थे तथा निश्चय सम्यक्तके हेतु कर्म चैतन्यके स्वरूपकों जानकर आभ्यन्तर तप, जप, ध्यान तथा योगाभ्यास एवम् शुभ

भावनाद्वारा कर्म मलको पृथक् कर आत्मीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यको प्रकट (उज्वल) करनेका अगाध प्रयत्न करते थे जिस प्रकार आप इस सम्यग् दर्शनकी आराधना करते थे उसही प्रकार भव्यात्माओंको भी उपदेश देकर आराधन करवाते थे तथा जो प्राणी कि सम्यग् दर्शनको धारण करनेवाले थे उनकी तर्फ पूज्य दृष्टि रखते हुवे अत्यन्त प्रशंसा करते थे. कहाँ तक कहा जाय सम्यग् दर्शन पर आपका श्लाघनीय प्रेम था प्रिय धर्माऽभिलाषियों ! अब मैं आपको चारित्रकी कुछ महिमा लिख दिखाता हूः—

॥ सम्यग् चारित्रका विवरण ॥

(श्लोक)

सर्व सावद्य योगाना । त्यागश्चारित्र मिष्यते ।
कीर्त्तित तदहिं सादि । वृत्तभेदेन पञ्चधाः ॥ १ ॥

भावार्थः—समस्त पापोत्पादक योगोंके परित्यागको सम्यग् चारित्र कहते है वह अहिंसादि वृत्त भेद करके पाच प्रकारका फरमाया है

विवेचनः—किसी मर्यादामे रहना या किसी क्रियामें गमन करना उसे चारित्र कहते है किन्तु मन, वचन और काया जितने ही सावद्य व्योपार है उन्हे सर्वथा त्यागकर अहिंसादि पञ्च महा व्रत जिन्हकी व्याख्या हम पूर्वमें कर चुके है उसमे रमण करना उसे सम्यक् चारित्र कहते है

आप महानुभाव ऐसे उत्तम प्रकारसे चारित्र पालन करते थे कि उनके मुआफिक वर्त्तमानमें साधारण मुनिसे पलना अति दुष्कर है

शिष्य समुदाय होनेके पहिले आप जिस वख्त वस्त्रादिकों की प्रति लेहना करते थे, अपने उपयोगको स्थिरकर प्रत्येक वस्त्रोंको भलीभाति अवलोकन करते थे वर्त्तमानमें कई एक साधु, साध्वी बिखरे हुवे वस्त्रको साफ कर जमा लेना ही प्रति लेहन कर्त्तव्य करते है; किन्तु महाशयो ! यदि वास्तविक विचारा

जाय तो जीव दयाके हेतु ही प्रतिलेखनका फरमान है देखिय इस ही प्रतिलेखनसें एक मुनिराजकों अवधि ज्ञान पैदा हो गया थाः—

एक किसी नगरके अन्दर एक विद्वान आचार्य महाराज अपने बहुतसे मुनिराजकी सम्प्रदायसें विराजमान थे उनमेंसें एक सउपयोगी महात्मा जिनेश्वर कथित नियमानुसार जयणा पूर्वक प्रतिलेखना कर रहे थे; बाद जिस वख्तकी काजे (कचरा) को यत्नापूर्वक ले रहे थे उस वख्त कंथुवे वगैरा कइ एक छोटे २ जानवर दृष्टिगोचर हुवे, देखते ही यह विचार किया कि अहा धन्य है! जिनेश्वरके धर्मकों और धन्य है उनके दिव्य ज्ञानको तथा धन्य है उनकी पवित्र वाणीको और धन्य है उनकी असाधारण उपगार बुद्धिको! कि जिसने हम अधम जनोंके वास्ते ऐसे उत्तम नियम बनाये वगैरा नाना प्रकारसें अनुमोदना करते हुवे दृढ श्रद्धासक्त हुवे इस अवसरमे अवधि ज्ञानावर्णीयपटल दूर होकर आत्मोध्धारक अवधिज्ञान प्राप्त हो गया इससें आपको प्रथम देव लोक की ध्वजातक जलोजात विज्ञात होता था; नाना प्रकारकी चित्र विचित्र लीलाकों देखते थे कहनेका तात्पर्य यह है कि जयणा युक्त प्रतिलेखनका इस प्रकार फल होता है

आप महानुभाव हरएक छोटे बडे जन्तुओंकी यथार्थ जयणा करते हुवे दोनो टाइम नियमानुकूल दृष्टि प्रमार्जन तथा पूजन प्रमार्जन उत्तम प्रकारसें कर जिनेश्वरकी शुद्ध आज्ञाको शिरोधार करते थे इसही प्रकार चारित्रकी रक्षा करनेवाली अष्ट प्रवचन माताको अत्युत्तम प्रकारसें पालन करते थे देखियेः—

(अष्ट प्रवचन माताका स्वरूप)

१ ईर्यासमितिः—आप जिस वख्त विहार करते थे या अन्य गमनागमनकी आवश्यकता होती थी उस वख्त अन्य सर्व डाव्यिक और मानसिक विषयोंको परित्यागकर ३। हाथ अर्थात् शरीर प्रमाण जमीनको एकाग्र दृष्टि द्वारा अवलोकन कर गमन करते थे सज्जनो! नीचे देखकर चलनेके अन्दर धार्मिक फलके अतिरिक्त बहुतसें शारीरिकादि गुण भी प्राप्त होते हैं देखिये किसी कविने ठीक कहा हैः—

(दोहरा)

नीचे देख्या गुण घणा । जीव जंतु टल जाय ॥
ठोकर की लागे नहीं । पड़ी वस्तु दिख जाय ॥ १ ॥

इसके सिवाय कङ्कर, पत्थर, कांटे, शूल, खुरट, गड्डे, सर्प, विच्छु आदि जो की शरीरको बधा पहुंचानेवाले है उन सबसें रक्षा हो जाती है

२ भाषासमितिः—आप महानुभाव क्रोधसें, मानसें, मायासें, लोभसें, रागसें, द्वेषसे, भयसे और हास्यमें इन आठ कारणोंसें कर्कश, कठोर, छेदकारी, भेदकारी, मर्मकारी, मोषाकारी, सावद्य, और निश्चय इन आठ प्रकारकी भाषाओंको अर्थात् पापकर्मोत्पादक सर्व अशुभ भाषाओंको परित्यागकर प्रियकारी, हितकारी, आज्ञाकारी सत्य वचन बोलते थे

बुद्धि विचक्षणों! जिस वख्त आप किसी भव्यात्मासें संभाषण करते थे ऐसी सुकोमल मधुर वाणी फरमाते थे कि जिससे सन्मुखी अमृतरस पानकर आनन्दित हो जाताथा वाणी एक ऐसी अमूल्य वस्तु है कि जिससे प्राणीके जातिकी, कुलकी, पटुताकी, गुणकी और स्वभावकी परीक्षा करवा देती है इस लिये जो कुछ बोलना हो बहुत ही विचार कर बोलना चाहिये देखिये किसी बुध्दिवान्ने ठीक कहा हैः—

(दोहरा)

वचन मोल अमोल है जो कछु बोले बोल ॥
पहिले हृदय विचार कर । पीछे बाहिर खोल ॥ १ ॥

भव्यज्ञान रसिको ! सद्वचन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि दुःखसें दग्धित हुवे प्राणीको शान्तरसमें निमग्न कर देती है और कटुक शब्द सुखी

-प्राणीकों भी वज्रके घाव सदृश दुःखकों प्राप्त कर देता है. देखिये किसी महात्माका कथन है:—

(दोहरा)

वचन वचनके आंतरे। वचनके हाथ न पांव॥
वही वचन है औषधी। वही वचन है घाव॥१॥

पाठकगणों! इसही जिह्वामें अमृत और इसही जिह्वामें जहर है जगज्जन इसही जिह्वासें ईश्वर भजनकर अपनी आत्माका कल्याण करते है और इसही जिह्वासे बदकलाम बोलकर दुर्गतिका बन्धन करते हैं; तब तो यह वही नजीर समझना चाहिये कि जिस जिह्वासें षट्रस भोजन किया जाता है उसही जिह्वासें गोयाविष्टा खाना है

धर्मचुस्त सज्जनो! आपकों थोड़े में ही विज्ञात हो गया होगा कि भाषासमिति एक कैसी दिव्य गुणधारी माता है इसही लिये वे महानुभाव इसकी आज्ञा शिरोधारकर तनमनसें सेवा करते थे

३ एषणासमितिः—आप ४२ दोष टालकर अरसविरस आहारपानी किया करते थे रसनेंद्रियको इस प्रकार कब्जमें कर रक्खी थी कि वह अपनी लोलुप्य दशाको कभी प्रकट नहीं कर सकती थी शरीरकी पुष्टि के हेतु तो सरस भोजनका भक्ष सर्वथा ही असंभव था किन्तु व्याधि वगेरा अन्य अवश्यकीय अवस्यामें भी जहातक बन सकता इस मदोत्पादक शत्रुसे पृथक् रहते थे आप वैसे ही संतोषी मुनि थे कि जैसे दशवैकालिकके प्रथम अध्ययनकी सज्झायमें फरमाया है तद्यथाः—

(गाथा)

मुनिवर मधुकर समकह्या। नहीं है राग नहीं द्वेष॥
लाधो भामो देवे देहने। अणलाधे संतोष॥धर्म०॥१॥

४ आदानजंमत्त निक्षेपणासमितिः—आप महानुजाव किसी जांडोपगरणको जब ग्रहण करते थे अथवा रखते थे तब वडेही उपयोगके साथ तथ जयणा पूर्वक काममें लाते थे दिनको दृष्टि प्रमार्जन व रातको पूंजन प्रमार्जन कर हरएक पदार्थ उपयोगमें लाते थे अपनी समस्त उपधी जिस धर्मशालामें निवास करते उसही स्थानमें रखते थे किन्तु अन्य स्थानपर कुछ जी नः रखते थे; अर्थात् हरएक कार्य सउपयोग व सजयणा करते थे.

५ पारिष्ठापनिकासमितिः—कोई जी पदार्थ जो कि परठने योग्य होती उसें शास्त्रोक्त रीतिसें निर्वद्य स्थानमें परठते थे

॥ घोर शत्रु मनकी दुर्जयता ॥

६ मनोगुप्तिः—सम, समारंज और आरंज करके मनको स्वाधीन करते थे सज्जनो! मन एक वगेर लगामका ऐसा अश्व है कि जिसका वेग पवनसें जी बहुत तेज है देखियेः—क्षणमें मनुष्य, क्षणमें तिर्यच, क्षणमें नरक, क्षणमें स्वर्ग, क्षणमे मोक्षादि चौ तर्फ घूमा करता है किन्तु किसी जगह स्थिर रहकर आत्म कल्याण नही करता बमे २ ज्ञानी ध्यानी, तपस्वी, चारित्री योगीश्वर और महर्षियोंको अपने आचरणोसें पतित कर क्षणमें नरक निगोदके सन्मुख कर देता है देखिये योगिराज श्री आनन्दघनजी महाराज अपने बनाये हुवे चतुर्विंशति जिन स्तवन संग्रहके सत्तरवे स्तवनमे फरमाते है किः—

(गाथा)

मुगति तणा अजिलाषी तपिया । ज्ञानने ध्यान अज्यासे ॥
वयरीमुकाइ एहवुं चिंते । नाखे अवले पासे हो ॥ कुं० ॥३॥

जावार्थः—यह मन महा दुष्ट शत्रु है कारण कि मोक्षाजिलाषी तपस्वी जो कि इसको साधन करनेके हेतु निज गुण जाननेके वास्ते ज्ञानाज्यास कर रहे हैं तथा निज गुण प्रकट कर उसमें रमण करनेके वास्ते ध्यानाज्यास कर

रहे हैं उन महान् मुनिराजोंको कर्मरूपी फासमें गेर देता है देखिये प्रसन्नचन्द्र राजर्षिको क्षणान्तरमें सप्तम नरकके दलियोंका संग्रह करवा दिया और थोड़ी ही देर बाद जब सीधी गतिको अवधारण किया तब शीघ्र ही केवल ज्ञान प्राप्त करवा दिया इस लिये वीर पुत्रों ! इस दुष्ट शत्रुको किसी प्रकार शनैः शनैः अपने कब्जमें करनेका प्रयास करना चाहिये; जब तक यह मन पराजय न होगा सर्व क्रियाएं केवल निरस पुण्य प्रकृतिये (जो कि क्षणिक सुखको देनेवाली है) का संग्रह करवाती हैः इस एकको साधनेके वास्ते हजारो उपचार करने पड़ते है देखियेः—

ज्ञान, दर्शन और चारित्राराधन, दान, शियल, तप, भावना, योगाभ्यास और ध्यान क्रिया वगेरा जो कि अनेक कष्ट सहनकर साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका करते है वे केवल एक इसही घोर शत्रुको वशमे करनेका हेतु है एक इस मनके ही न सधनेसें छार परलीपनरूप सर्व निष्फल है और यदि यह स्वाधीन कर लिया जाय तो सर्व क्रियाऐं समुद्रके जलके मुआफिक सार्थक है देखिये वेही पूर्वोक्त महानुभाव अपने उसही स्तवनके आठवें गाथाके अन्दर फरमाते हैः—

॥ गाथा ॥

मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं। एह वात नहीं खोटी ॥
एम कहे साध्युं ते नवी मानु। एकही वात छे मोटी हो॥ कुं०॥८॥

भावार्थः—हे जिनेश्वर देव ! चचलताको परित्याग करके एकाग्रतासें जिस मनुष्यने मनको वशीभूत किया है उसने तप, जप, ध्यान, संयमादि सर्व कार्य साधन कर लिये कारण कि साधनका अन्तिम भाव नही है इस लिये जिसने मन वशमें कर लिया उसने आत्मिक ठकुराईका मूल सिद्ध कर लिया है यह बात सर्वथा सत्य है कदाचित्त कोई निरर्थक अपनी जिह्वासें कह देवे कि मेंने मनको साधन कर लिया तो यह बात बिलकुल अमान्य है, क्योंकि मन एक अति ही दुर्जय शत्रु है

मान्यवरों ! आपको उपरोक्त महानुभावके दो गाथाओंसें प्रतीत हो गया होगा कि मन एक कैसा दुर्जय शत्रु है इसको साधन करनेंके वास्ते अनेक प्रयोग है- उनमेंसे एक सहज प्रयोग यह भी है कि जिस वख्त आदमी कोई भी कार्य करे उस वख्त यह अवश्य शोचे कि "Whethor it is right or wrong" अर्थात् क्या यह सही है या गलत ! ऐसा विचारनेसे अवश्य बहुतसे हानिकारक कार्य दूर हो जाते है प्रत्येक कार्यका यह धर्म है कि विचारनेसे अति शीघ्र, सहज और निराबाध पूर्वक हो जाता है और बगेर विचारनेसें "घरहाण जगत हाँसी" होती है देखिये कहाः—

॥ दोहरा ॥

विना विचारे जो करे । सो पीछे पछताय ॥
काम बिगारे आपनो ॥ जगमें होत हँसाय ॥ २ ॥

द्वितीय-यौगिक क्रियानुसार यह भी प्रयोग है-कि जिस प्रकार एक साहूकारने वन्दरको वशीभूत कियाथा उसही प्रकार मनको स्वाधीन करना चाहिये, जानवरोंमे सबसें अधिक चंचल वशेतान वन्दर ही माना जाता है उसमें भी यदि वह सुरा पानकर ले तो फिर चंचलताका क्या ठिकाना और इस अवस्थामें यदि उसको विच्छु काट खाय तब तो एक अद्वितीय ही चंचलता प्रकट हो जाती है कहनेका तात्पर्य यह है कि मदिराका पान किया हुवा और विच्छु काटा हुवा जिस प्रकार वन्दर चंचल होता है इसही प्रकार इससे कई गुने अधिक मनरूपी मर्कट चचल व शेतान होता है: देखिये उस सेठने इस प्रकार वानरको स्वाधीन किया थाः—

॥ अद्भुत दृष्टान्त ॥

किसी एक ग्रामके अन्दर एक गरीब ब्राह्मण रहता था उसके एक स्त्री व एक पुत्री थी वह इस प्रकार निर्धन था कि सुबहको मागकर लाता और सुबह अपना गुजरान करता एवम् शामको मागर लाता और शामका गुजरान करता; इस प्रकार अपना काल निर्गमन करता था

उसने एक ऐसा वतीरा अख्तियार कर रक्खा था कि जिस वख्त स्थण्डिल भूमि जाता उस वख्त अपनी शौच क्रिया करनेके पश्चात् जलपात्रमें जो कुच्छ जल शेष रह जाता वह हमेशा एक वटवृक्षमे गेर दिया करता था इस प्रकार कितनाक काल निर्गमन हुवा अब उसकी लड़की युवावस्थाको प्राप्त हुई, इस हालतमें उस ब्राह्मणको उसके विवाहकी चिन्ता होने लगी किन्तु निर्धन होनेसें शिवाय दिलगिरीके कुच्छ भी नही सूझता था ऐसे दुःख की हालतमें एक दिन उस दरख्तमें पानी डालना भूल गया उसही वख्त उसमेंसें एक पिशाच प्रकट हुवा और उस ब्राह्मणपर क्रोधित होकर कहने लगाकि अरे दुष्ट ब्राह्मण! तूने मुझको आज जल क्यों न पिलाया ? मै आज तुझे मारे बगैरे हरगिज नही छोडूंगा यह भयकर शब्द सुन वह ब्राह्मण बोला रे अधम! कृतघ्न!! दुराचारी!!! तूं बडाही दुष्ट है कि अपनेही स्वार्थमें समझता है किन्तु मेरी लड़कीके विवाह संबंधि असीम दुःखका कुछ भी विचार नही करता

यह सुन वह प्रेत अपने दुष्ट शब्दोंका पश्चात्ताप कर उस ब्राह्मण पर अत्यन्त प्रसन्न हुवा और कहने लगा कि हे भद्र! तूं किसी प्रकारकी चिन्ता मत कर मै तेरे सर्व कार्यको उत्तम प्रकारसें कर दूंगा तथा तेरे दरिद्रताको दूर कर श्रीमन्त बना दूंगा देख मै वानर रूप हो जाता हूं मेरे गलेमें यह सुवर्ण जंजीर डाल किसी एक बड़े शहरमें ले चल वहा पर किसी धनवान्को सवालक्ष रुपे में मुझको वेच देना, यह सुन वह ब्राह्मण हर्षित होकर उस वानर रूप पिशाचको लेकर मकानपर पहुचा और अपनी स्त्रीको सर्व विषय समझाकर वहांसें रवाना हुवा; दरकूचदर मुकाम करता हुवा क्रमशः कलकत्ते सदृश एक विशाल शहरमें पहुंचा, वहां पर घूमता २ एक किसी क्रोडपतिके यहांपर जा पहुंचा वहा पर श्रेष्ठी, ब्राह्मण और वानर के इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवेः—

ब्राह्मणः—हे श्रेष्ठीवर्य! मैं इस कपिको वेचना चाहाता हूं दया कर योग्य मूल्य प्रदान कीजियेगा

श्रेष्ठीः—भाई ब्राह्मण! इसका क्या मूल्य लेगा?

ब्राह्मणः—दयानिधे ! सवालक्ष मुद्रिका लेऊंगा

श्रेष्ठीः—सद्गुणी ब्राह्मण ! इसमे ऐसा क्या अद्भुत गुण है कि जिससें इतनी अधिक किम्मत लेना चाहता है ?

ब्राह्मणः—हे परोपकारी ! तुम अपनी डुकानका जो कुछ काम बतलाउगे उसें तार (Telegraph) सें जी अति शीघ्र कर देगा तुमारे सैकड़ों नोकरोका खर्च बचा देगा; अर्थात् सालजरमे लाखो रुपोका काम करेगा

श्रेष्ठीः—चिठी देकर-अछा तो जाउ खजानेसे रुपे लेलो और- वानरको यहा बांध दो

वानरः—अजी शेठ साहब ! जरा मेरी जी प्रार्थना सुनियेः-

श्रेष्ठीः—जाई कपि सानन्द कह सुनाउ

वानरः—श्रेष्ठी शिरोमणे ! इसमें शर्त यह है कि मैं एक मिनिट जी बेकार नहीं रहूंगा अगर मुझे कोई कार्य न बतलाउगे तो उसही वख्त तुमें जक्षण कर जाऊंगा

श्रेष्ठीः—दिलमे सोचकर " अपने सैकड़ो डुकाने है एक कपि कितनाक काम कर सकेगा," जाई वानर ! मुझको तेरा कथन सहर्ष स्वीकार है

इस प्रकार -वार्त्तालाप हुई और उस वानरको सवालाख रुपेमें खरीद कर अनेकानेक काम करवाते है, उधर वह ब्राह्मण खजानचीसे रुपे लेकर सहर्ष अपने मकान पर पहुचा और अपनी कन्याकी खूब जलुशसें शादी कर सानन्द निवास करने लगा

इधर वह कपि हंजारों कोसोंका काम मिणटोंके अन्दर करने लगा करी व एक वर्षमें लाखों रूपेका नफा कर दिया वह श्रेष्ठी इस प्रकार वानरको कार्य करते हुवे देखकर दिलमें विचार करने लगाकि यह तो वर्षोंके कार्यको

मिण्टोंके अन्दर कर देता है न मालुम कोई देव है या राक्षस है या विद्याधर है या अन्य कोई लब्धीवंत है कि जिससें इस प्रकार कार्य करता है, अब मैं इसको क्या कार्य बतलाऊंगा और किस प्रकार यह जीवन पूरा होगा एसी चिन्ता करही रहाथा कि इतनेमें वह वानर आकर, बोला कि शेठ साहब! मैं सर्व कार्य कर चुका हूं अब कोइ नूतन कार्य मुझे बतलाईयेगा वरना मै आपको अवश्य भक्षण कर जाऊंगा

यह सुन वह श्रेष्ठी अधिक दुःखी हो गया और नाना प्रकारसें संकल्प विकल्प करता हुवा उपाय सोचता है किन्तु कुछ भी योग्य व्यवस्था न विचार सका, अब दिनबदिन शारीरिक अवस्था बिगडती जाती है भोजन भी सम्यक् प्रकारसें नही करता; इस दुष्मावस्थाको देखकर उसकी सुखशीला पुत्रीने पूछा कि हे पिताजी! आज कल आपकी व्यवस्था इस प्रकार क्यों कर हो रही है यह सुन पिता बोला कि पुत्रि मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूं मेरा किया हुवा मुझको ही भुगतना पडेगा इस समय पिताके गद्गद् नेन भर आये अश्रुपात बहने लगे खेदरसमें भरा हुवा यह कहता है:-

(दोहरा)

कौन सुने किसको कहूँ। सुने तो समझे नॉय ॥
कहेवो सुनवो समझवो। मनहीको मनमॉय ॥१॥

ऐसे दिलगिरीके शब्द सुनकर वह लडकी पुनरपि प्रार्थना करने लगी कि हे तात! आप अपने दुःखको स्पष्टतया कथन कीजियेगा मैं अवश्य उसका उपाय बतलाऊंगी ऐसे साहसिक शब्द सुन उस पिताने अपना सर्व वृत्तान्त कह सुनाया तनुजाने यह सुन २४ घण्टेके बाद उत्तर देनेकी प्रार्थना की अब वह शेठ सहर्ष खानपान करने लगा इधर वह लडकी अपने इष्टदेवके स्मरणमें तल्लीन हुई स्वप्नमें इष्टदेव और लडकीके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवे:-

इष्टदेवः—हे सुपुत्रि! सोती है या जगती है?

पुत्रीः—हे स्वामिन् ! जगतमें कौन ऐसा है कि जो दुःखमें निडावश होता हो.

इष्टदेवः—अच्छा तो कह तूने मुझे क्यों स्मरण किया है ?

पुत्रीः—क्या नाथ ! आपसें भी छिपी हुई बात है ? आप अपने पवित्र अवधि ज्ञानसें जान सकते है

इष्टदेवः—उस वानरका संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा ले सुता ! इसका यही उपाय है कि जिस वख्त कोई कार्य हो उससें करवा लेना और शेष टाइममें ऐसा करना कि मैदानमे एक लम्बा स्तम्भ आरोपण कर उसपर उसे चढने उतरनेका कार्य बतला देना

जब कि दूसरा दिन हुवा उस लडकीने अपने पिताको सादर नमस्कार कर गत रात्रिके स्वप्नकी सर्व व्याख्या कह सुनाई और इष्टदेवका बतलाया हुवा वह उत्तम प्रयत्न भी निवेदन किया यह सुन उसका पिता अति हर्षित होकर नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम आशिर्वादें देने लगा और उसही दिन अपनी दुकान पर जाकर उस स्थंभकी व्यवस्था करवाई इसही अवसरमें वह वानर आकर शेठसें बोलाकि रे असत्यवादी ! तूंने मुझसें क्या वायदा किया था आज दो दिवस हुवे है जिसमें मुझको बिलकुल बराबर काम नहीं बतलाया जाता है तू मुझको अति शीघ्र कोई कार्य बतला वरना तुझे इसही वख्त भक्षण कर जाऊंगा

यह सुन वह श्रेष्ठी पराक्रम पूर्वक बोला रे दुष्ट वानर ! क्या तू कोई प्रकारका मगरूर करता होगा जाओ उस सन्मुखी स्तम्भके ऊपर चढकर उतरो वानर इस कर्त्तव्यको कर पुनरपि कहने लगाकि अब मैं क्या काम करूं ? तब शेठने वही कार्य करनेका हुकुम दिया इस प्रकार कई एकवार चढने ऊतरनेका कार्य किया आखीरमें शेठने य हुकुम दिया कि जब हम कोई कार्य बतलावें उसें करना चाहिये और शेष टाईममें इस स्थम्भ पर चढने उतरनेका काम हमेशा करते रहना इस प्रकार कितनेक दिन तक यह कार्य किया

अन्तिममें हेरान होकर उस वानरने अपना निज स्वरूप प्रकटकर शेठको सर्व वृत्तान्त कह सुनाया शेठने अति प्रसन्न होकर उसें विमुक्त किया।

तत्त्वाऽभिलाषियों! आपको इस दृष्टान्तसें विदित हो गया होगा कि उस बुद्धिमती लक्ष्मीके प्रभावसें सेठने उस दुष्ट वानरको किस प्रकार वशीभूत किया. कहनेका तातपर्यह है कि जिस प्रकार उस मर्कटसें वख्त जरूरत कार्य लेते थे बाद हमेंशा चढने उत्तरनेकाही कार्य करवाते थे उसही प्रकार इस मनरूपी मर्कटसें उत्तम व्यावहारिक कार्य तथा धार्मिक क्रियाओं करवाना चाहिये और शेष टाईममें श्वासोश्वासके नियमानुकुल समान्यतया "अरिहन्त" के जापमें तथा विशेषतया "सोऽहम्" पदके जापमें सलग्न करना चाहिये. विशेष स्वरूप गुरु गम्यतासे जानना सज्जनो! वे महानुभाव इस प्रकार मनोगुप्तिमें रमण करते थे

(मौनानंद)

२ वचनगुप्तिः—आपश्री सप, समारम्भ और आरम्भ करके वचनको स्वाधीन करते थे; हमेशा मौनव्रतको अख्तियार करते थे मौनसें केवल यह मत समझियेगा कि भाषा वर्गणाको सर्वथा रोकते थे किन्तु "मुनेर्भाव कर्मवा इति मौनम्" ऐसा अर्थ समझियेगा आप जिस वख्त वाग्विलास करते थे बनी ही गम्भीरतासें तथा सदाचारपूर्वक किया करते थे और आवश्यकीय अवसरपर सर्वथा मौन भी रखते थे

अनुभवी महाशयों! मौन एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जो हमारे आत्मस्वरूपको प्रकट कर देती है देखिये तप, जप, ध्यान और यौगिक क्रियाओंमें भी इसको परिपूर्ण सत्कार मिला है इसको स्वीकार किये विद्वन मोक्ष मार्ग दुःसाध्य है नीतिकारने भी लिखा है कि "मौनंसर्वार्थ साधनम्" इस अमूल्य पदसें यह स्पष्टतया प्रकट है कि उच्च शिखरपर पहुंचानेवाला मौन एक उत्कृष्ट साधन है

महानुभावों! जगद्गुरु श्रीतीर्थंकर देव भी दीक्षा लेनेके बाद यह अभि-

ग्रह धारण करते है कि जब तक मुझे केवलज्ञान न हो मौनमें रहकर ध्यानादि उत्तम क्रियाओंका आचारण करूंगा इतनाही नहीं किन्तु केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् भी मौनके बगैर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त नही कर सकते देखिये मोक्षगामी चौदह वें गुणस्थानपर जाकर शैलेसीकरण करते हैं; अर्थात् मन, वचन और कायाको मेरू पर्वतके सदृश अचल करते है पश्चात् शिवपुरमें प्राप्त हो जाते हैं

कई एक भव्यात्मा ऐसी मौन रखते है कि सावद्य भाषाको परित्याग कर निर्वद्य वचन बोलते है यह जघन्य मौन कही जाती है तथा कई एक लोग वचन कलापको रोककर हूँकारादि शब्दोंसें तथा हस्त, चरण, मुख, नेत्र और मस्तक वगैरासे अङ्ग चेष्टा करते है एवम् पत्रादिको पर लिखकर अपने अभिप्रायको सूचित करते है यह मध्यम मौन कही जाती है और कई एक आत्मार्थी भव्यात्मा उपरोक्त समस्त कर्त्तव्योंको परित्याग कर आत्मीय गुणोंमें निमग्न हो जाते है यह उत्कृष्ट मौन कही जाती है

पाठकवरों ! वे पूज्य गुरुवर्य जघन्य मौन तो प्रायः हमेशांही पालन करते थे और उत्कृष्ट मौन समयानुसार ध्यानावस्थामें किया करते थे इस प्रकार वचन गुप्तिकी सादर सेवा कर अपने मानव भवको सफल करते थे

(कायोत्सर्गकी सनिष्ठता)

३ कायगुप्तिः—सम, समारम्भ और आरम्भ करके कायाको वशीभूत करते थे; अर्थात् कायोत्सर्ग ऐसी उत्तम रीतिसें करते थे कि कैसा भी उपसर्ग क्यों न हो जाय किन्तु बिलकुल चलायमान नहीं हो सकते थे जिस वख्त आप पर्यङ्कासन (पद्मासन) करते थे उस समय दोनो हाथोंको योग्य स्थितिसें रख ठुड्डीको वक्षस्थलपर लगा देते थे तथा जिह्वाको तालु स्थान पर लगाकर दृष्टिको नासिकाके अग्र भाग पर स्थिर करके ध्यानारूढ हो जाते थे और कायासे इस प्रकार विमुक्त होते थे कि उस नासिकाके अग्र भाग पर सर्व शरीरको ध्यानमें लाकर प्रथम ही प्रथम चरणोंकी तर्फसें तत्पश्चात्

जानुसें, जङ्घासें, कटिसें, करकमलोंसें, भुजाओंसे, हृदयसें, वक्षस्थलसें, कण्ठसे, मुखसें, नेत्रोंमें, ललाटसें, मस्तकसें और शिरासें इस प्रकार अङ्गके प्रत्येक अवयवोसे क्रमशः दृष्टि हटाते हुवे अन्तमें मै अशरीरी हू ऐसा विचार आत्मध्यानमें लीन हो जाते थे उस समय कितनाही भयङ्कर उपसर्ग क्यों न आक्रमण करता हो किन्तु आप महानुभाव बिलकुल क्षोभित नही होते थे

वर्त्तमानमें कितनेक आत्मध्यानियोंको देखकर काउसग्ग ध्यानकी एक विलक्षण ही दशा प्रतीत होती है कइ एक पैरोको हिलाते है, कइ एक अपने हाथोंको चपलता वश कर देते हैं, कइ एक दृष्टि विपर्यास करते हुवे नजर आते हैं, कइ एक मस्तकको हस्तिकी घूमत चालपर घुमाते है, कइ एक ओष्ट फुरीते हुवे निश्चात होते है और कइ एक जोर२ से नमस्कार मन्त्रका जाप करते हुवे निकट वर्त्ति भव्यात्माओंको बाधा पहुचाते है; यहा तक कि शरीरके प्रत्येक अवयवका नियम भ्रष्ट कर क्रियामें प्रवृत्त होते है सज्जनो! इस हास्यावस्थामें उपसर्ग सहनका तो विचार ही क्या? किन्तु वे वेठरूप क्रियाको करनेवाले लोग एक साधारण जन्तु मच्छरसें भी चलायमान हो जाते है; मगर भव्य आत्मार्थी लोग प्राणान्त कष्ट होनेपर भी काउसग्ग ध्यानसे कदापि चलायमान नहीं होते थे देखियेः—

परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी जिस वख्त काउसग्ग ध्यानमें खड़े थे उस समय कमठ तापसका जीव मेघमाली देवताने घोर अन्धकार कर मूसलधार वृष्टि की यहा तककी बारह२ कोश पर्यन्त सर्व अटवी जलमय कर दी और उन तीर्थंकर देवके नासिका पर्यन्त जल पहुंच गया था मगर तो भी वे मनागपि क्षोभित न हुवे इधर शासनाधीश्वर श्रीमन्महावीर परमात्मा को कायोत्सर्गमें शय्यापालक के जीवने कर्णों में लोहके तीक्ष्ण कीलेपिरो दिये, गवालियेने पैरों पर खीर पकाई, चण्डकोशिया नागने अपने फणको ऊपर मारा और भी संगमादि देवोंने नाना प्रकारके भयङ्कर उपसर्ग किये लेकिन वे जगद्गुरु किञ्चिदपि चलायमान न हुवे इस प्रकार अनेक तीर्थंकर गणधर, आचार्य, उपाध्याय और साधुजनोंने कायोत्सर्गमें स्थित रहकर अपनी आत्माका कल्याण किया प्रिय सज्जनों! उपरोक्त रीत्यानुसार जे पूज्य

गुरुवर्य भी यथाशक्ति पूर्वाचार्योंका अनुकरण करते हुये इस प्रकार काय-गुप्ति मातेश्वरीकी यथार्थ सेवा बजाकर स्वकीय आत्माको निर्मल करते थे

आत्माऽभिलाषियों! चारित्र एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिसके समान अन्य साध्यकारी कोई वस्तु प्रतीत नही होती; सर्व रत्नोंमें यह शिरोमणि रत्न है; इसे ग्रहण करनेसे भव्यात्मा अपनी मनोकामनाकी साफल्यता करता है; देखिये किसी कवीश्वरने ठीक कहा है:—

(श्लोक)

चारित्र रत्नान्न परंहि रत्नं । चारित्रवित्तान्न परंहिवित्तम् ॥
चारित्र लाभान्नपरोहि लाभ—श्चारित्र योगान्नपरोहियोगः ॥१॥

भावार्थः—इस जगत्में चारित्रके बराबर कोई अन्य रत्न नही है चारित्रके बराबर कोई द्रव्य नही है तथा चारित्रके समान कोई अन्य लाभ नहीं है एवम् चारित्रके तुल्य कोई योग नहीं है यह वही चारित्र है कि जो यदि एक भी दिन उदयमें आजाय तो इस प्रकार उत्तम फल प्राप्त करा देता है:

(श्लोक)

दीक्षा गृहीता दिनमेकमेव । येनोग्रचित्तेन शिवं सयाति ॥
नतत्कदाचिदवश्यमेव । वैमानिकः स्यात्रिदशः प्रधान ॥ १ ॥

भावार्थः—यदि प्राणी एक दिन ही दीक्षा ग्रहण कर ले और उग्र चित्तसे उसे पालन करे तो अचिरात् मोक्षपदको प्राप्त करता है कदाचित् वैसा उत्कृष्ट आचरण न कर सके तो भी साधारण क्रियाओंसे अवश्य वैमानिक देवलोकमें प्रधान पद प्राप्त करता है

नहीं२ इतनाही नहीं किन्तु यह चारित्र रत्न सम्यगज्ञान, दर्शनको सफल करता है आप यह खूब समझ सकते है कि मर्यादा वगेर जितने क-

र्त्तव्य है वे सर्व निष्फल है और इसही लिये ज्ञान, दर्शनका सारजूत चारित्र वतलाया है देखिये खरतरगच्छ गगनाम्बरमणि नवाङ्गी टीकाकार श्रीअजयदेव सूरीश्वर अपनी वनाई हुई आगम अष्टोत्तरीके ७९-वें गायेमे इस प्रकार फरमाते हैः—

(गाथा)

नाणं नरस्ससारं । सारं नाणस्स शुद्ध सम्मत्तं ॥
सम्मत्तसार चरणं । सारं चरणस्स निव्वाणं ॥७९॥

जावार्थः—मनुष्य जवका सार ज्ञान है और ज्ञानका सार शुद्ध सम्यक्त्व है तथा शुद्ध सम्यक्त्वका सार चारित्र है एव चारित्रका सार मोक्ष समझना इन उपरोक्त गाथाओंसे आपको विज्ञात होगया होगाकि चारित्र रत्न एक कैसी उच्च पदार्थ है.

सज्जनो ! आप लोगोंको ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी महिमा पढ़कर यह सदेह पेदा होता होगा कि ज्ञानकी व्याख्यामें दर्शन और चारित्रसें ज्ञान को मुख्य वतलाया और दर्शनके विवेचनमे सवसें उच्चा दर्शन पद वतलाया तथा चारित्रके विवरणमें ज्ञान और दर्शनसें चारित्रको अधिक वतलाया इसका क्या कारण है ? उत्तरमें निवेदन है कि जहा तक सोचा जाता है प्रायः यही ज्ञात होता है कि जिसका विषय कथन किया जाय उसकी महिमा अधिक वतलाई जाती है लेकिन यदि वस्तुतः देखा जाय तो ये तीनोही अनुपम रत्न समान है, पूर्वाचार्योंका जी यही कथन है कि "सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः" बुद्धिजनेषु किं विशेषम्

वर्त्तमानमे कइ एक साधुसाध्वी सयमी नाम धराते हुवे जी अपने आचारोसे अनेक विपरीत कर्त्तव्य करते हुवे दृष्टिगोचर हो रहे हैं, द्रव्य चारित्र जी जव यथार्थ पालन नहीं कर सकते तो जावचारित्रकी आशाही क्या ? पूर्वोक्त अष्टप्रवचन-माताका पालना अति दुष्कर दिख पड़ता है वे चारित्रकी

सत्ताका मौलर रखनेवाले चारित्र रक्षक एक भी मातेश्वरीकी जब यथार्थ सेवा नही बजा सकते तो आत्मोध्दारका तो कथनही क्या? मालुम नहीं होताकि वे महानुभाव इस प्रकार संयमको अख्तियार कर दिलमें क्या हर्ष मनाते होंगे? जोकि गृहस्थके तथा अन्य सामुदायिक प्रपञ्चोंके गाढ बन्धनसें जखड़े हुवे है साथका साथ यह भी कह देना समुचित समझता हूँ कि जगके समस्त साधु साध्वी इस ढङ्गके हों ऐसा न समझियेगा किन्तु कइ एक आत्मार्थी पूज्य मुनिराज अपने चारित्रमें कुशल होकर उच्च श्रेणीमें पहुंचनेका दृढ प्रयत्न करते है इसही प्रकार वे पूज्य गुरुवर्य भी चारित्र क्रियामें एसे निपुण थे कि जिसकी व्याख्या हमारी लेखनीसे बाहर है धन्य है! आपकी चारित्र महिमा जगज्जन प्रिय थी सज्जनो! अब मै आपकी दान महिमाका किञ्चिद् विवेचन लिख दिखाता हू

(दानगुणपर व्याख्या)

किसी वस्तुको कृपापूर्वक सहर्ष देना उसे दान कहते है ये दान पाच प्रकारके होते है तद्यथाः—

(गाथा)

अभयं सुपत्तदाणं। अणुकम्पा उचिय कित्तिदाणाइं॥
दुन्निहि मुक्खो भणिउ। तिन्नि भोगाइयं दिंति॥१॥

अर्थः—अभय, सुपात्र, अनुकम्पा, उचित और कीर्ति इन पांच दानोंमेंसें आदिके दो दानमोक्षके दाता है तथा शेष ३ सम्यग् भोगकी प्राप्तिके हेतु है इन्हही पॉच दानोकी किञ्चित व्याख्या लिख दिखाता हूंः—

(१) अभयदानः—प्राणीमात्रको भय रहित करना उसें अभयदान कहते है इसके दो भेद हैः-प्रथम द्रव्य अभयदान द्वितीयभाव अभयदान.

द्रव्य अभयदान—उसें कहते है कि किसी जीवकी हिंसा होतीहो तो

उसे तन, मन और धन करके रक्षा करे. तनसें रक्षा उसें कहते हैं कि उपदेश देकर अथवा शारीरिक बलद्वारा किसी प्राणीके प्राणोंको रक्षा करे मनसें रक्षा उसें कहना चाहिये कि दिलमें यह जावना जावे कि हे प्रजो ! किसी प्रकार यह प्राणी बच जाय तो उत्तम हो धनसें रक्षा वह कही जाती है कि इव्य दकर उसे बचा लेना

कइ एक महानुजाव यहापर यह प्रश्न करते है कि अगर किसी एक हिंसकको दश रूपे देकर एक बकरेकों या अन्य किसी जानवरकों बचाया तो वह प्राणघातक उन रूपेके दो चार जानवर लाकर वध करेगा तो ऐसे अजयदानसें क्या नतीजा हुवा इससें तो बहेतर है कि ऐसी अवस्थाओंमें मौन अखत्यार करना समुचित है

प्रश्नकर्त्ताका प्रश्न अवश्य विचारणीय है किन्तु वे महानुजाव यदि तटस्थ होकर स्थिर बुद्धिद्वारा विचार करते तो एसें महदान गुणसे पराङ्मुख न रहते देखिये जिनेश्वर देवका यह फरमान हैकिः—परिणामें बंध, क्रियाए कर्म, और उपयोगे धर्म ये तीनो पक्ष प्रायः सबही जैन धर्मावलंबियोंकों माननीय है तो अब खयाल कीजिये कि उस प्राणी रक्षकका मानसिक विचार क्या था ? विचारशील सज्जनो ! अगर आप बुद्धि विचक्षण जिज्ञासु है तो अवश्यही यह स्वीकार करेंगे कि उसके जाव केवल जीव दया करना मात्रही थे तो क्यों साहेब ! शुज विचारोंसे शुज बंध व अशुजसें अशुज बंध तो क्यों कर वह नियम विपरीत समझा जावे देखिये करुणालय महानुजावोका कथन हैः—

(श्लोक)

योदद्यात्काञ्चनंमेरु । कृत्स्नामपिवसुन्धराम् ॥
एकस्यजीवनदधा न्नारित तुल्यतयो. फलम् ॥१॥

जावार्थः—जो प्राणी सुवर्णमय मेरु पर्वत तथा समस्त पृथ्वीका दान

दे देवे तो भी जीवितदान (अभयदान) देनेवालेके बराबर इष्ट फल प्रा
नहीं कर सकता बुध्दिजनेषु किंविशेषम्

भाव अभयदान—उसें कहते है कि कोई प्राणी किसी दुर्व्यसनमें
किसी अशुभ प्रवृत्तिमें याकुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी मान्यतामें ग्रस्त हो
रहा हो तो उसें उपदेशादि प्रयोगोंसें सुमार्गबाधक प्रवृत्तियोंको पराजय कर
वाकर सद्‌मार्गमें प्रवृत्त कर अथवा गृहस्थाश्रमके अनेक दुःखोंसें विमुक्त करा
कर भवतारक चारित्र अङ्गीकार करवाता हुवा उसके मानवभवको कृतार्थ करे
यह सर्वसें शिरोमणी व आत्मिक अनुभव सुखको देनेवाला है

(२) सुपात्रदानः—सम्यक् प्राणीको दान देना उसें सुपात्र दान कहते
है यह प्राय सर्व त्यागी मुनिराजके वास्तेही सघटित है और किसी तौरपर
देशविरती शुध्द श्रावकमे भी घटित हो सकता है देखिये पवित्र मुनिराजोंको
दान देनेसे इस प्रकार लाभ होते हैः—

(श्लोक)

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्गत्य मालम्बते ।
नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ॥
दैन्यंनाद्रीयते दुनोतिनदरः क्लिश्नन्तिनैवा पदः ॥
पात्रेयोवितरत्यनर्थ दलन दानं निदानं श्रियाम् ॥१॥

भावार्थः—जो भव्यात्मा अनर्थोंको दलन करनेवाले कल्याणकोष रूप
सुपात्र दान देते है उन्हे दरिद्रता गिरफ्तार करनेकी इच्छा नहीं कर सकती
अर्थात् सदैव लक्ष्मीवन्त होते हैं तथा दुर्गतिके सेवासें पृथक् रहते है यानी
सदैव सद्गति प्राप्त करते है एवम् अपकीर्त्ति उन्हे आश्रयण नहीं कर सकती
यानी सदैव यशस्वी होते है और क्षिती उन्हे स्वाधीन करनेकी अभिलाषा
नहीं कर सकती है अर्थात् सदैव अलभ्य लाभकी प्राप्ति होती है तथा व्याधि
उन्हे बाधित नहीं कर सकती यानी सदैव कुशलतामें निवास करते हैं एवम्

दीनता उन्हे पकड़ नहीं सकती अर्थात् सदैव अमीरात भोगते हैं और रोग उन्हे पीड़ित नही कर सकता यानी हमेंशा निरोगाऽवस्थाकों धारण करते हैं तथा आपदा उन्हे क्लेपित नहीं कर सकती अर्थात् हमेंशा निराबाध आनंद करते हैं; यहाँ तक वे दानेश्वरी सुखी होते है कि अन्तमें क्रमशः अचिरात् परमपद (मोक्ष)कों प्राप्त होते हैं

इस विश्वभरमें अगर निष्प्रयोजन उपगारी हो तो प्रायः आधिक्यतासें एक पवित्र जैमुनिराजही हो सकते है इन्हे वस्त्र, पात्र, आहार उपाश्रय और भेषजादि दान देनेसें इतना तीव्र पुण्य सचय होता है कि जिससें शीघ्रही निर्जराकी सम्भावना है

३ अनुकम्पादानः—किसी जीवपर करुणा लाना उसे अनुकम्पादान कहते है—यथाः—किसी अतिथी, निराश्रय गरीबको आहारपानी देकर उसकी आत्माको सतोप करना अथवा वस्त्रादि देकर धूप, ठण्डसें बचाना एवम् अन्य जीवकों दुःखी देखकर दिलमें दिलगिरी लाना कि हे प्रभो! किसी प्रकार यह भी सुखी हो जाय तो उत्तम है

४ उचितदानः—दुनियावी नियमाऽनुकूल देना उसें उचित दान कहते है यथाः—बहिन, पुत्री, भत्रीजी, भानेजी वगैराकों देना

५ कीर्तिदानः—अपने यश निमित्त देना उसें कीर्तिदान कहते हैं यथाः सदा व्रत खोलना जहाँ चाहे गरीब चाहे अमीर कोई आवे मिलती हुई वस्तुकों निराबाध ले जा सकता है अथवा चारण भाटकों दान देना एव अपनी नामवरीके लिये टीप वगेरामें बहुतसा द्रव्य देदेना वगेराः सर्व कीर्तिदानमें समावेश है

इन उपरोक्त पॉच दानोंमेंसे आप पूज्य गुरुवर्य अभयदानमें असाधारण प्रयत्नशील थे आप परमोपकारी अपने अतुल उपदेशद्वारा जिव्हाके लोलुपी मासहारियोंका मास खाना छुड़्वाकर जीवोंकी रक्षा करवाते थे तथा वध होते हुवे प्राणीकी रक्षाके हेतु बनता हुवा उत्तम उपचार करते थे तथा भाव अभय दानमें तो आपका एक अलौकिकही हृदय था; किसीकों दुर्व्य-

सनोसें अलग हटाकर सद्मार्गमें प्रवृत्त करनेके लिये तथा गृहस्थाश्रमके अ-सह्य दुःखसें बुड़ा लेनेके वास्ते आपश्रीका प्रशंसनीय प्रेम थाः—

वर्त्तमानमें कइ एक साधु, साध्वी मौल लेकर अथवा इर्षाद्वारा अपनी समुदायकों बढ़ानेके हेतु एवम् अपनी सेवा करवानेके खातिर वा जगतमें नाम वरीविस्तीर्ण करनेके लिये शिष्य समुदायका संग्रह करते हुवे प्रतीत होते है वे हमारे महाऽनुभाव इतनाभी नही सोच सकते कि ऐसी कर्तूतोंसें क्या हमारा या शिष्य समुदायका वा शासनका भला हो सकता है ? किन्तु सच है ! अबोध जडका स्वभावही ऐसा होता है

हमारे वे पूज्य दयानिधि किसी प्राणीके परमोपकारके निमत्तही गृहस्था-श्रमके गहरे दुःखसें मुक्त कर अपने पवित्र चरणाऽम्बुजोंका शरण देते थे अ-र्थात् पवित्र संयम प्रदान करते थे और उसकी उम्र पर्यन्त मात पितासें भी अधिक लालना पालना करते थे और सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आ-राधन करवा कर कृत कृत्य कर देते थे

प्यारे ज्ञान रसिकों ! आपकों यह बखूबी रोशन होगा कि ज्ञान दानसें बढकर इस जगत्रयम कोई दान नही है चूंके इस दानसे सब दानोंकी साफ-ल्यता होती है

आप पूज्य गुरुवर्य इस विषयसें भलीव प्रकार सुपरिचित थे कि ज्ञानके बगेर सर्व शून्य है इसलिये प्राथमिकाऽवस्था ज्ञान दानसेंही विभूषित करना चाहिये ताके अन्तिमाऽवस्था पर्यन्त निराबाघ अलभ्य दानकों हासिल कर सके

आप सामान्य ज्ञान दानसें सत्क्रियामें प्रवृत्त कराकर शुध्द, देव, गुरु और धर्मके निर्मल स्वरूपकों उसके हृदयाऽङ्कित करते थे पश्चात् विशेष ज्ञान दानसें आगम रसपान कराकर ध्याता, ध्येय और ध्यान इन तीन वस्तुओंका पवित्र स्वरूप बतलाते थे उसका किञ्चिद् विवरण इस स्थल पर पाठकोंके अभिमुख करता हूं

(१) ध्याताः—ध्याने वाले (ध्यान करने वाले) महानुभावकों ध्याता कहते है

ध्याताकों मुख्य तीन विषयोंमे सदैव पृथक् होना चाहिये जिससें कि अजेय मन चल विचल होकर निगमग्रन्थके फांसमें गेर देता है वे ये है:-१ दृष्ट २ श्रुत ३ अनुभूत ये प्रायः वगैर चिन्तन कियेही स्मृति पथमें आजाते है यथाः—

कोई एक प्राणी हवा खोरी करता हुवा जारहा था उसने नगराधिपतिकों बड़ेही जुलुसके साथ शहरके बीचो बीच किसी गुलजार बाजारमें निकलते हुवे देखे आगे बढकर क्या देखता है कि उसका एक असीम प्रेमी सड़कके किनारे पर खड़ा हुवा राह देख रहा है वह तत्काल स्थानाऽऽपन्न हुवा दोनोकी चो नजर होतेही हर्षित नेत्र गद २ भर आए और स्नेहलतासें गुंथी हुइ शब्द श्रेणी खिल उठी इस प्रकार वार्तालापसें दोनोके हृदय प्रेम रससें आपूरित (थवाथव) होगये अब वे दोनो बाजारसें अनेक भोगोपभोगीय पदार्थ खरीद कर एक मनोहर वाटिकाके अन्दर जा पहुचे वहापर अनेक सुन्दर पुष्पान्वित वृक्ष अपनी अजीब शोभाको झलका रहे थे वें दोनो प्रेमी एक पवित्र स्थानपर विश्रामित हुवे और उन भोगोपभोगीय पदार्थोंको उत्कट इच्छा द्वारा सेवनकर आनंद रसमें निमग्न हुवे थोंड़ेही समय पश्चात् वे दोनो महानुभाव अपने २ मकानपर सानद पहुच गए

अब वह महानुभाव (जिसका जिकिर हम ऊपर कर चुके है) ध्यानाऽवस्यामें संलग्न हुवा इस समय वगैर विचारेही वह राजाकी सवारी (वरघोड़ा) और मित्रकी मनमोहन वाणी एव इन्द्रियोंको सुखदाई खाद्य पदार्थादि स्मरण हुवे, मनकों बहुत दबाता है किन्तु वारंवार वे विषय सन्मुख होते हैं इस प्रकार कइ बार हटाने पर भी वे अपनी कटिबद्धतामें पराजय न हुवे और अन्तमें उसे ध्यान भ्रष्ट कर दिया इस लिये मेरे प्यारे ध्यान रसिकों! इन मगल बाधक निमित्तोंसें सदैव पराङ्मुख होना चाहिये

(२) ध्येयः—जिसका ध्यान किया जाय उसें ध्येय कहते हैं

हमको वैसेही ध्येयकी आवश्यकता है कि जिससे बढ़कर जगत्रयमें नहीं. राग द्वेषके फांससे जकड़े हुवे ध्येयके ध्यानेसें आत्मिक अनुभव निरंतर दूर रहता है चूंके जो खुद अनेक प्रपञ्चोंमें ग्रसित हो रहा है और अपना भला करनेकी वाञ्छा कर रहा है वह हमारा भला हरगीज् नहीं कर सकता. हमें ऐसे ध्येयका ध्यान करना चाहिये कि जो अक्रोधी, अमानी, अमायी और अलोभी हो तथा अरागी, अद्वेषी, अकामी और अशरीर हो एवम् अकर्मी, अक्षय, अविनाशी और अगोचर हो तथैव अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्यग्राही भोक्ता हो अर्थात् निरंजन, निराकार और ज्योति स्वरूपें हो ऐसे सिद्ध भगवान् जोकि अनंत गुणगणाऽलङ्कृत है वेही उत्तम ध्येय होना चाहिये

३ ध्यानः—सम्यग् विचार या सम्यक् चिन्तनको ध्यान कहते है जैसें:-

हे नाथ ! आप इस प्रकार समस्त दुःखोको निरासेन (नष्ट) कर अनंत सुखोंमें झील रहे हो मैं अनादि कालसें चतुराष्ट लक्ष जीवा योनीमें भ्रमण करता हुवा अनेक दुःखोंसें दुःखित हो रहाहूं मैने अनेक वक्त सुपात्रादि दान दिये, शील व्रतमें सर्वथा निमग्न रहा, उग्रतपस्याकी, शुभ भावनाभी भाइ किन्तु वे सर्व क्रियाएं अनुपयोग द्वारा अज्ञान कष्ट क्रियाकी श्रेणी प्रतिपन्न हुई प्रतीत होती है

हे प्रभो ! किसी दिन तुमभी ऐसी दशामें थे तो क्या वजह है कि मै यही रखड़ रहाहू और आप शिवपद (मोक्ष) को प्राप्त होगए इस तरह नाना प्रकारकी आशङ्काए करता हुवा विचारता है कि हे जगदाधार ! आप उन अष्ट कर्मोंके व चेतनके निज स्वरूपों सें भलीव प्रकार परिचित होगए थे जिससे शीघ्रही उन घोर अष्ट दुष्टोंको दूर हटाकर आत्मीय स्वरूपमें लीन हुवे

मुझकोभी इसही प्रकार इन विषयोंसें ज्ञात होना चाहिये कि कर्म और चेतनका संयोग कबसें है इन्होने इस आत्माको कैसे गिरफ्तार किया; कर्मबंधनके क्या २ निमित्त हैं उन्हे रोकनेमें कौन २सी सम्यक् क्रियाओको सेवन करना चाहिये यानी आश्रवको निरुद्ध कर संवर किस प्रकार करना चाहिये संवर होनेके पश्चात् सत्ता (खजाना) में रहे हुवे कर्मोंकी किस प्रकार निर्जरा

नष्ट) करना चाहिये इतमें विषयोंकों जब तक सम्यक् प्रकारसें न जाने, न श्रद्धे और आचरण न करें तव तक आत्माका निज स्वरूप प्रकट होना सर्वथा असाध्य है यह निर्विवाद पक्ष विद्वानोंकी बुद्धिमें प्रकट सिद्ध है इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यान करना चाहिये

गुणानुरागियों ! उपरोक्त ध्याता, ध्येय और ध्यान स्वरूपसें आपको स्वतः सिद्ध हो गया होगा कि वे कैसे दानवीर मुनिराज थे

इतनाही नही किन्तु कालाऽनुसार निरालंबन ध्यानकी भी सम्यग् विधि बतलाते थे इतने विवरणसें आपको यह निराबाध विज्ञात हो गया होगा कि वे किस प्रकार विशाल ज्ञानी व दानेश्वरी महात्मा थे मैं इस बातकों जाहिरा कह सकता हूं कि जो तटस्थ अनुभवी महात्मा है वे इस विषयको श्रवण कर अपने मुक्त कण्ठसें प्रशंसा किये बगेर हरगिज् न रह सकेंगे अहाहा धन्यहो! आपकी दान महिमा जगदाधार है सज्जनो ! अब मैं आपके शील प्रभावका किंचित्वर्णन पाठकोंकी सेवामे पेश करता हूं

॥ शीलका महा प्रभाव ॥

स्त्रीके समस्त विकारी अङ्गोपाङ्गीय सेवनके त्याग स्वभावकों शील कहते है

आप पूज्य गुरुवर्य आबाल ब्रह्मचारी थे यानी 'बाल्याऽवस्थासेंही सम्यक् प्रकारसें शील व्रत पालन करते थे वृद्धा स्त्रीकों अपने माता तुल्य, युवाकों बहिन सदृश और बालिकाकों अपनी पुत्रीवत् शान्त दृष्टिसें अवलोकन करते थे काम रससें पूरित स्त्रीकथासें तो आपकों स्वाभाविक ही घृणा थी चाहे अप्सरा भी अपने विकारी अवयवोंकों हाव भाव पूर्वक दिखलाकर वशीभूत करनेका क्यों न सहास रखती हो किन्तु वे हरगिज् चलायमान नहीं होसकते थे काम विकारके जितनेही निमित्त हैं उनसें आप सदैव सर्वतःतट-

स्थ रहते थे आप पूज्य ब्रह्मचारी निम्न लिखित नव वाड़ों (किला-नियम) कों बड़ेही पवित्रतासें पालन करते थे

॥ पवित्र नववड़ोका विचार ॥

(गाथा)

वसही कहानिसिज्जि दिय । कुड्डितर पुव्व कीलिए पणिए ॥
अइ मायाहार विभूषणाई ॥ नववंभचेर गुत्तिओ ॥ १ ॥

अर्थः—१ वस्ती २ कथा ३ निसिया ४ दृष्टि ५ कुड्यन्तर ६ पूर्व क्रीड़ित ७ परिणती ८ अतिमात्राऽहार ९ विभूषण ब्रह्मचर्यकी इन नौ वाड़ोंकों गोप कर रखना अर्थात् इन नौ विषयोंकों सर्वथा साग करना

१ वस्तीः—वे पूज्य ब्रह्मचारी ऐसे स्थानपर मुकाम नही करते थे कि जहाँ पशु, पंडक (नपुसक) और स्त्री निवास करती हो, कारणकी "मार्जर मूषकवत्" दोषकी प्राप्ति होनेका अनुमान है देखिये जैसे मार्जार (बिल्ली) मूषक (चूहा) कों देखते ही शीघ्र उसें ग्रहण करनेकों झपटती है तैसे ही तिर्यचोंकों संभोग करते हुवे देख मनोवृत्ति कामवश हो जाती है-इसही प्रकार स्त्रीके विकारी अवयव देखनेसें प्राणी कामातुर हो जाता है तथैव पुरुष, स्त्रीसें प्रबल कामाग्निकों धारण करनेवाले नपुसकके आचरणोंसें दिल चलविचल हो-जाता है; लिहाजा ऐसे कामोत्पादक स्थानकों वे महानुभाव सर्वथा साग करतेथे

२ कथाः—वे अविकारी ऋषीश्वर स्त्रीके प्रति हास्य कथा व काम कथा कभी नहीं करते अथवा अन्यके साथभी ऐसी कथाओंकों सर्वथा निवारण कर रक्खी थी, चूँके ऐसी प्रवृत्तिमें "नीबुवदनवत्" दोषकी सम्भावना हैः-जैसे प्राणीकों नीबू देखते ही वदन (मुख) में आम्ल रस व्याप्त हो जाता है यद्यपि उसे देखा मात्र ही है खाया नहीं है तदपि उसकी स्वाभाविक प्रकृती ऐसी ही है तसें ही स्त्रीकों सेवन नहीं की है किन्तु कथा मात्रसें ही उसके

हृदयमें विकार व्याप्त हो जाता है इस ही लिये वे बड़भागी इस विकारी विषयसें हमेशा पृथक् रहते थे

३ निसिद्याः—वे मुनीश्वर जिस स्थलपर स्त्री बेठी होती उस स्थान पर दो घटिका (अड़तालीश मिनिटस्) पर्यन्त नहीं विराजते क्यों की वहाँ पर "अग्नि घृतवत्" दोषका अनुमान है जैसे अग्नि पर घी रखनेसे तत्काल पिघल जाता है वैसे ही स्त्रीके स्थानकी उष्णता लगनेसे रुका हुवा कामज्वर विकशित हो जाता है अर्थात् जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो वह स्थल उसके शरीरकी गर्मीसे तप्त हो जाता है वह आतप लगनेसे मनुष्यको खयाल होता है की यहाँ पर अमुक स्त्री बेठी थी इस तरह शृंगारोंसे अलङ्कृत थी, इस २ प्रकार शारीरिक मनोज्ञ अवयवोंसे सुशोभित थी इत्यादि चिन्तनसें कामाग्नि उछल पड़ती है कारण वे सौभागी ऐसे स्थानका कदापी आश्रय नहीं करते थे

४ दृष्टिः—वे योगीश्वर स्त्रीके प्रति कभी चोनजर (विकार दृष्टि) नही करते थे मतलब की ऐसा करने पर "सूर्य नयनवत्" दोषकी प्राप्तिकी सम्भावना है जैसे सूर्यको देखनेसे शीघ्र ही नेत्रोंसे जल बहने लग जाता है इसही तरह स्त्रीसें चो नजर करने पर वह अपने कटाक्ष बाणोंसें ऐसा विव्हल करती है कि काम रस उसके हृदयमें बहनें लग जाता है इस वास्ते वे सागी आत्मार्थी ऐसे दुष्टाचरणसें निरतर जुदा रहते थे

५ कुड्यन्तरः—वे दृढ व्रत धारी ऐसे स्थानपर निवास नहीं करते कि जहा स्त्री पुरुषके शयनगृहसें केवल एक टट्टी (कच्ची भींत वा घास वगेरासे बुनी हुई टाटी) का ही व्यवधान हो; कारण की ऐसी व्यवस्थामे "मेघ मयूरवत्" दोष का शोका है जैसे मेघकी गर्जाहट सुनकर मयूर अति आनंदित होता हुवा उत्साह पूर्वक वचन कलाप करता है तेसे ही उस शयन गृहमें रहे हुवे स्त्री पुरुषके काम क्रिडा विषयिक वार्त्तालाप श्रवण कर काम रसमें झीलने लग जाता है और अपनी तीव्राऽभिलाषाद्वारा वैसे अनर्थोंमें मशगूल हो जाता है इस वजहसे वे आत्माऽनुयाई ऐसे आवास का ससर्ग तक नही करते थे

६ पूर्वक्रीडितः—उन निर्मल धर्मावतारको उस विषयके विचारमात्रकी

आवश्यकता नयी कारण की आप स्त्री संसर्गसे सर्वथा तटस्थ थे. तदपि इस बात़का खुलाशा करना जरूरी है:—ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकृत स्त्रीकी संजोग क्रीड़ाकों स्मरण नही करे यानी ऐसा न विचारे कि अहाहा ! मैं पहिले स्त्रीके अमुक अवयवसें इस प्रकार आनदित होता था, अमुक अवयवसें इस तरह रसाऽऽस्वादन करता था और अमुक अङ्गसे गाढ़ सुखमे लीन हो जाता था वग़ेरा २ गरज़की जितने ही अङ्गनाके साथ विकारी भाव है उन्हे स्मृतिपथसें सर्वथा निकन्दन कर दे; कारण की ऐसा न करनेसे "पंथी तक्रवत्" दोषका सदेह है जैसे:—

दो मुसाफिर अपने रोजगार निमित्त देशान्तर जा रहे थे रास्तेमें किसी एक ग्राममें एक वृध्दाके मकान पर ठहर गए, ग्रुष्म ऋतुके हेतु मार्गश्रमसें पीड़ित हो गए थे उन दोनोने शितलोपचारके निमित्त तक्र (छाच) पान करली कुछ टाइम ठहर कर अपने इष्ट शहरकों चले गए पीछेसें डोकरी क्या देखती है कि उस तक्रमें सर्प का गरल पड़ा हुवा था यह व्यवस्था देख उसके दिल मे सदेह हुवा कि अवश्य वे दोनो बटाउ मर गए होंगे

कितनाक काल बीत जानेपर वे मुसाफिर लौटते हुवे उसही के यहाँ ठहरे डोकरीने देखकर कहा अरे मेरे वीराओं ! क्या तुम अब तक जिन्दे हो ! यह अद्भुत वचन सुन उन दोनोने निज़ हकीकत जाननेकी विज्ञप्ति की उसने नाग गरलके सर्व हाल सुनाए सुनते ही वे मुसाफिर हिचकने लगे और वार २ यह कहने लगे कि अरे बापरे ! इसमें क्या विषधरका गरल था हमारे रोम २ में जहर व्याप्त हो जाता अरे भज्यो ! हम अवश्य मर जाते इस प्रकार असह्य दुःखके शब्द कहते २ धडाकसें दोनोके दम निकल पड़े, तैसे ही पूर्वके कामभोग याद करनेसे कामाग्नि तत्काल प्रज्वलित हो जाती है लिहाज़ा शीलवानकों ऐसे विकारी विषयोंकों देश निकाला दे देना चाहिये

७ परिणती—रसविकारः—वे शान्त गुणधारी अकारण कभी स्निग्ध भोजन नहीं करते थे; क्योंकि ऐसे खाद्यमें "घृत ज्वरवत्" दोषका भय है जैसें किसीकों बुखार चढ़ा हो उस समय यदि सरस भोजन दिया जाय तो ज्वर

वृद्धिगत हो जाता है इसही तरह मिष्टानादि स्निग्ध आहार करनेसें कामज्वर देदिप्य हो जाता है इस लिये वे धैर्यवन्त ऐसे विकारी भोजनसें सर्वथा पृथक् रहते थे

सज्जनो ! यहां पर कोई प्रश्न करता है कि यदि अहारमें ही यह सामर्थ्य है तो क्योंकर श्री स्थूलिभद्र स्वामीकों चलविचल न किये क्यों की वैश्यागृह के चातुर्मासमें आप हमेशा षट्रस भोजन करते थे

उत्तरमें विज्ञात हो कि नियम सार्वजनिक होता है किसी एक व्यक्तिके वास्ते नही हो सकता वे महानुभाव दिव्य ज्ञानको धारण करनेवाले एक जितेन्द्रीय वीर पुरुष थे जहाँतक प्राणी उच्च श्रेणीकों प्राप्त न हो तहाँ तक मन कों स्थिरकरनेके हेतु इन नवों वाडोकों पालन करना चाहिये; इससें यह न समझियेगा कि मन वशमें होनेके पश्चात् विकारी निमित्त सेवन कर सकता है; किन्तु वैराग्य रसमें मनोवृत्ती स्थिर होनेके बाद कदाचित् कारणवश या स्वाभाविक विकारी निमित्त समाप्त हो भी जॉय तो वे सर्व वैराग्याऽवस्थामें ही समिलित हो जॉयगे प्रायः तो वैराग्य रसमें झीलने पर विकारी निमित्तों की प्राप्ति ही असम्भवित है

८ अति मात्राऽहारः—वे संतोषी धर्म्मात्मा रुचिसें अधिक अहार नहीं करते थे किन्तु प्रायः उणोदरी ही किया करते थे जिसका कि खुलाशा हम तप प्रकरणमें करेंगे वजह कि "भाजन अमनवत्" दोषकी दहशत है जैसे सेर भरके वरतनमें सवासेर अन्न (नाज) भाल दिया जायतो उसमें नहीं ठहर सकता, वैसेही आधासेर अहार करनेवाला यदि पौन सेर कर लेतो उन्मत्तता अपने प्रबल स्वरूपको प्रकट कर देती है जिससे कामाग्नि उछलने लग जाती है इसही लिये वे दयालु मामूली आहार करते थे अर्थात् अधिक अहारसें सदैव आपको घृणा थी

९ विभूषणाः—वे परम वैरागी आत्मा अनुभवी शारीरिक शोभा कदापि नहीं करते थे कारण की "मृत्तिका रत्नवत्" दोषकी सम्भावना है जैसे रत्न जब तक मिट्टिसें लिपटा हुवा रहता है तब तक उसे ग्रहण करनेकी कोई इच्छा

नही करता और जब वह मसाले द्वारा स्वच्छ कर दिया जाता है तब हरएक उसें लेनेकी दिली इच्छा करते है तथैव जबतक शरीर व वस्त्रादि साधारण स्थितिमें रहे हुवे है तब तक कोई बुरी निगाह नहीं माल सकता नखुदकी इच्छा विकारी होनेकी संभावना है और यदि शरीर चकाचक है, अतर फुले लसें मर्दित है, बढ़िया वस्त्राद्यलङ्कारोंसें अलंकृत है तो उस हालतमें अन्य स्त्री वगेरा भी कटाक्ष बाण विक्षेप करती है और खुदका भी दिल चलायमान हो जानेका खोफ है इस लिये उन मोक्षाऽभिलाषी धर्म धुरंधरने इस दुष्ट विषय को नासिका मलवत् परित्याग कर दिया था

उपरोक्त नववाड़ोंसे आप समझ गए होंगे कि ब्रह्मचर्यके रक्षा निमित्त कैसे उत्तम मार्ग है, शील व्रत खण्डन होनेके अनेक निमित्त हैं किन्तु इन नव प्रबल निमित्तोंको जो नष्ट कर देता है वह प्रायः अवश्य दृढ शीलवन्त होसकता है यह स्वतः सिद्ध है कि कारण के विनाशाऽवस्थामें कार्योत्पन्न नहीं हो-सकता देखिये कहा भी हैः—"निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः" कारण के अभावमें कार्यका भी अभाव होता है यहाँपर वस्त्रादि नौ विषयोंको सेवन करना यह निमित्त है और मैथुन सेवन नैमित्तिक है वास्ते उन्हके दूर करनेसे मैथुन स्वतः नष्ट हो जायगा

हा अलबत्ता! इतना अवश्य है कि कामदेवको जीतना कुछ सहज नहीं है जिस वख्त वह खींचकर बाण मारता है बडे २ ज्ञानी, ध्यानी और महात्मा नाम धरानेवाले थर २ धूजने लग जाते है देखिये उसके बाणोंके अन्दर किस प्रकार शक्ति है

(श्लोक)

उन्मादनस्तापनश्च । शोषण स्तंभनस्तथा ॥
संमोहनश्चकामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

भावार्थः—उन्मत्तता, आतपता, शुष्कता, स्तब्धता और मोहित दशा; इस प्रकार कामदेवके पञ्च बाणोंसें प्राणी विह्वल दशाको प्राप्त हो जाता है

व्याख्याः—(१) उन्मत्तताः—जिस वख्त कामदेव अपने बाणको तान कर मारता हे उस वख्त प्राणी मदोन्मत्त हो जाता है इस वख्त माता, बहिन, पुत्री, स्व स्त्री, पर स्त्री और वेश्या वगेराका कुछ भी भान नही रहता है जाति मर्यादा, कुल मर्यादा और अपनी अमूल्य इज्जत आवरुसें भ्रष्ट हो जाता है अपने पवित्र गुरुवर्योंकी और लौकिक लज्जासें बिलकुल नही डरता जिसने अधोवस्त्र मस्तक पर पहन लिया वे बेशरम कभी नही शरमाते कहा हैः—

(शेर)

शरमको भी यहाँपर । शरम आय हे ॥
जो बेशरम हो । वे न शरमाय हैं ॥ १ ॥

(२) आतपताः—जिस समय प्रद्युम्न अपना बाण खींचकर मारता है उस समय आदमीके हृदयमें ज्वाला लग जाती है जिस प्रकार एकसो पाँच डिग्रीके बुखार वाला दुःखी होता है उससें कितने ही गुणा प्राणी कामज्वरसें पीडित हो जाता है

(३) शुष्कताः—जिस वख्त मदन अपने बाणको खीच कर मारता है उस वख्त मानवका शरीर सूक जाता है क्योंकि चिन्ता डाकिनी कलेजेमे बैठकर रक्त पीती है यानी उसें रात दिन कामिनीकी प्रबल इच्छा बनी रहती है किन्तु भाग्य हीनतासें स्त्री संसर्ग नही होता–अथवा कामदेवसें पीडित होनेके हेतु प्रियतमाको वारंवार सेवन करनेसें शरीर पिंजर हो जाता हे जिस प्रकार जलसें भरी हुई पुष्ट मसक पानीके निर्गमन होनेसें सुकड़ जाती है इसही प्रकार वीर्य क्षयसें शरीर पिंजर हो जाता है

(४) स्तब्धताः—जिस अवसरमें मन्मथ अपने बाणको ताक कर मारता है उस वख्त उसका शरीर सुन्न हो जाता है जैसे किसीको अचानक दुःख आ गिरे और वह दिग्मूढ हो जाता है इसही प्रकार उसको कुछ भी कार्य नहीं सूझ पड़ता एक स्त्री विलासकी वाञ्छा में ही संलग्न रहता हे

(५) मोहित दशाः—जिस वख्त अनङ्ग अपने बाणकों झपटकर मारता है उस वख्त प्राणी मोहसे विह्वल हो जाता है जैसे मदिरा (Wine) पान किया हुवा आदमी पागल हो जाता है इसही तरह विलासिनीमें गाढ मोहित हो जाता है और इस अवस्थामें स्त्री जिस तौर नाच नचावे उसही तरह नाचता है–धन्य हो ! पुरुषार्थ धारी हों तो ऐसे ही हो

उपरोक्त व्याख्यासे आपकों अच्छी तरह रोशन हो गया होगा कि कामदेवके कैसे तीक्ष्ण बाण हैं अन्य बाणके लग जानेसे तो जीवित रहनेका जरोसा है व शीघ्र आराम होनेका जी सम्जव है किन्तु इस असह्य डुर्वार बाणके लगनेसें आदमी मूर्छित हो जाता है और प्रायः इसके वशीजूत होकर इसकी आज्ञामें चलना पड़ता है अर्थात् डुराचारकों आचरण करना पड़ता है इन बाणोंके घाव सहन करते हुवे जी युध्दसे न हटनेवाले बहुत ही कम प्रतीत होते है इस डुनियामें कइ एक अतुल पराक्रमी विद्यमान है किन्तु इस जगह आते ही सबके हाथ पेर ठण्डे पड़ जाते है सज्जनो ! कामदेवके अजिमानकों गलन करनेवाले विरले ही वीर रत्न है देखिये किसी अनुजवी महात्माका कथन है

(श्लोक)

मत्तेजकुम्ज दलने जुविसन्तिशूराः ।
केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥
किन्तु ब्रवीमिबलिना पुरतः प्रसह्य ।
कंदर्पदर्प दलने विरला मनुष्याः ॥ १ ॥

जावार्थः—हे शूरवीरों ! इस विश्वमें कइ एक ऐसे बाहादुर (*brave*) है कि मदोन्मत्त हस्तिके कुंज स्थलकों विदारणकर डालते है, तथा कइ एक ऐसे पराक्रमी हैं कि प्रचण्ड सिंहकों टंगुमों पकड़ कर चीर डालते हैं किन्तु हम यह दावेके साथ कह सकते हैं कि डुर्जेय कामदेवके मदकों दलन करनेवाले विरले ही पुरुष होंगे

वस्तुतः कामदेव ऐसा ही घोर शत्रु है जब तक प्राणी इसके फॉससें पृथक् नहो पवीत्र शील व्रतकों हासिल नही कर सकता और इस महाव्रतके न होने पर प्राणी तप, जप, ज्ञान, ध्यानादि कुछ भी सम्यक् प्रकारसें करनेको समर्थ नही हो सकता देखिये:—

जिस प्रकार वगेर राजाकी रईयत नष्ट भ्रष्ट होजाती है और कोई भी यथावत् कार्य करनेकों समर्थ नही हो सकती इसही प्रकार वीर्य राजाके न होने सें देह प्रजा बरबाद हो जाती है और कोई कार्य करनेका हौसिला नही कर सकती शरीरमें प्रधान वस्तु वीर्य ही है इसहीके प्रभावसें यह वपु हृष्ट पुष्ट, दिव्य कान्तिवान् और निरोग रहता है और इसही के अतुल कृपासें स्मरण शक्ति (Memory) विचक्षण बुध्दि और दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है तथा इसहीके परम महरसें प्राणी अनंत शक्तिवान् होता है एवम् इसही के आधारसें भव्यात्मा अष्ट कर्मकों विध्वंश कर सिध्द् पदको प्राप्त करता है एक इसके न होनेसें सर्व आशाऐं निष्फल हो जातीं है

इस स्थल पर कोई प्रश्न करता है कि अगर वीर्यमें क्षिती होनेसें ही शरीर वेकार हो जाता हो तो आम गृहस्थों की यह दशा होना चाहिये क्योंकी अधिकांश गृहस्थ (व्याहे हुवे) लोग स्त्रीकों नित्य सेवन करते है फिर क्योंकर सर्वका शरीर जर्जरीभूत नहीं दिखाई देता? लिहाजा यह उद्देश खिलाफ है

उत्तरमें विदित हो कि दुनियाकी यह कहावत है कि "पहिलेके बुढे अबके जवान अब होंगे सो और नकाम" यानी पूर्वके वृध्दोंके मुताबिक भी अबके युवानोंमें सामर्थ्य नही है और आइन्दा होंगे वह इससें भी शक्ति विहीन होंगे इसका यही मतलब है कि पूर्वकालके लोग प्रथम तो यथोचित वय में शादी करते थे द्वितीय योग्य अवसरपर स्त्रीसेवन करते थे जिसकी संतान पराक्रमी और ज्ञानवान् होती थी इस वख्त अधिकांश बाल लग्न होनेसें अपरिपक्व वीर्यको फेंक दिया जाता है उससें वही नुकशान है कि जैसे कच्चे. बुखारको सतानेसे होता है आपको वैद्यक नियम विज्ञात होगा कि कितनीक

व्याधियोंको छोड़कर प्रत्येक बीमारीका यह नियम है कि यावत् वह परिपक्वावस्थामें न होजाय तावत् उसका माकुल इलाज नहीं किया जाता तद्वत् बाल्यावस्थामें स्त्री संसर्गका फल होता है विशेष यह भी है कि इस जमानेमे प्रायः नित्य भोग करते है, इन लोलुपियोंके बनिस्पत तो विचारे कुत्ते और कव्वे ही ठीक समझे जा सकते है कि जो अपनी मौसिम पर मैथुन सेवन करते है. इसही लिये इस वख्त ऐसे कामी पुरुषों की संताने बहुत कमजोर प्रतीत हो रही है तात्पर्य यह है कि अधिकांश नित्यभोगी गृहस्थ बलवान् होते है यह बात उपेक्षणीय है अब रहा यह की कितने लोग नित्य भोगी होने पर भी हृष्ट पुष्ट दिख पड़ते है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि वे मैथुन सेवनके पश्चात् ही कुछ ताक़तवर वस्तुएं सेवन करते है अथवा अपने खान-पानका पूर्णतः खाल रखते है इस लिये वे कुछ २ काम कर सकते है ऐसा होने पर भी यह अवश्य है कि नित्यभोगी जो हृष्ट पुष्ट दिख पड़ते है उनमेंसे अधिकतर बाह्य शक्ति मात्र ही धारण किये हुवे है अर्थात् अभ्यन्तर शक्तिसे बेशक वे वञ्चित है यह अनुभव सिद्ध है साराश यह है कि ब्रह्मचर्य न पालनेसे अवश्य ही हीन दशाकों प्राप्त होते है

प्रस्तुत प्रकरणमे कोई प्रश्न करता है कि यदि शीलपर ही सर्वाधार है तो क्योंकर मुनि जनोंमे पृथक् २ क्षुप्यता, उष्कान्ति, व्याधि, अस्मृति, बुद्धिहीनतादि दिख पड़ते है? चूंके मुनिराज तो सदैव अखण्ड शील व्रतको पालन करते है

जबाबमे मालुम हो कि कितनेक मुनिराजमे जो उपरोक्त आपत्तियें गिरती है उसका उपचरित कारण यह प्रतीत होता है कि उनके पथ्यका साधन योग्य नहीं रह सकता और भी अनेक परीसह सहन करना पड़ते है इससे उनका वीर्य विगड़कर मल, मूत्र, खकार और श्लेष्मादिके ज़रिये क्षय हो जाता है इससे उपरोक्त व्यवस्थाएं प्रतीत होती है; तदपि विशेषतः इतनी ज़ोरदार आपत्तियें नहीं आती कि जितनी गृहस्थकों होती है

हम इस दुनियामें प्रायः देखते है कि कामी पुरुषका शरीर शीघ्र ही जर्ज-

रीभूत हो कर बेकार हो जाता है और अखण्ड शील व्रत धारी अपने इच्छित कार्यको निराबाध कर सकता है इस वक्त मि० सेन्डो (राममूर्त्ति) जोकि एक अद्भुत पराक्रमी समझा जाता है वह शील व्रतका ही महा प्रभाव है

कइ एक कामी पुरुष यह कहते हैं कि संसारमें आकर जिसने स्त्री विलास न किया उसने अपना जन्म व्यर्थ गुमा दिया इस दुनियामें कामिनेसें बढ़कर कोई सुख नहीं है देखिये वह गजगामिनी; चन्द्रमुखी, कमलनयनी, स्वर्ण कलशोपमित पयोधरधारिणी गजशुंडावत् जङ्घा सुशोभित आदि अनेक अलङ्कारोसें अलङ्कृत है ऐसी सुन्दरीको भुजालताओंसें गाढ आलिङ्गन कर कौन ऐसा होगा कि जा अपूर्व सुखका अनुभव न करे अर्थात् आनद रसमें झीलनेकी वाँछा न करे! जिसकी युवाऽस्थाका यौवन झर रहा है वह अपने शरीरको यदि अन्य तपादि क्रियाओमें शोषण करे तो क्या उससें बढ़कर कोई मूर्ख शिरोमणि हो सकता है? इत्यादि अनेक आक्षेप कर वैराग्य भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं

मेरे प्यारे वैरागियों! क्या उपरोक्त कथन सत्य है? यदि ऐसा ही हो तो अनर्थोंसे वचन। प्राणियों को सर्वथा असम्भव हो जायगा मैं यह हरगीज़ क्यास नही कर सकता कि मेरे प्यारे विरागी महाशय इसें स्वीकार करें लीजिये ज़रा उन कामान्ध पुरुषों के लिये नेत्राञ्जन देखियेः—

मुमुक्षों! स्त्रीके समस्त शरीरमें तीन अङ्ग विशेष विकारी हैंः-१ मुख २ स्तन ३ जङ्घा स्थान इन तीनोसें आदमी पागल होकर इसही में मोक्षसा सुख मानता है इन तीन अङ्गोंके अन्दर किस २ प्रकार दुर्गन्धित मल भरा हुवा है यह सुन बुद्धिजन तत्काल तटस्थ हो जाते है देखिये किसी वैरागी महात्मा का कथन हैः—

(श्लोक)

स्तनौमास ग्रन्थीकनक कलशावित्युपमितौ ॥
मुखंश्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥

स्रवन्मूत्रंक्लिन्नं करिवर करस्पर्धिजघनं ॥
मुहोनिंद्यं रूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १ ॥

भावार्थः—स्त्रियों के स्तन मास के लोंदे है उन्हे सुवर्ण कलशकी उपमा सें उपमित करते है; मुख थूक और खकारादिका गृह है उसें चन्द्रमाके सदृश बतलाते है और टपकते हुवे मूत्रसें भीगी जङ्घाओंकों श्रेष्ट गजके शुण्डा समान कहते है देखिये स्त्रियोंका पुनः २ निंदनीय स्वरूप होनेपर भी कवियोंने कैसा बढ़ाया है क्या कवि कुशल तुम्हें इस प्रकार अघटित उपमा देते लज्जा प्राप्त नहीं होती ?

व्याख्याः—स्तन जो कि पुष्ट और उत्तुंग दिख पड़ते है उनमें केवलमांस भरा हुवा है यदि किसी प्राणीकों मासके लोंदे हाथोंमें देकर उन्हें मथन करनेके वास्ते कहा जाय तो क्या वह स्वीकार करेगा ? नहीं २ स्वीकार करना तो दूर रहो किन्तु स्पर्श तक न करेगा बस इसही तरह विवेकी पुरुष सड़े हुवे दुर्गंधित मासके लोंदे सदृश स्तनोंको मर्दन करनेकी कदापी इच्छा नहीं करते

मुख जो कि गोरी चमडीसें मढा हुवा दिव्य कान्तिकों झलकाता हुवा दिग्मुग्धोंकों फिदा कर लेता है वह केवल पीक और खकारसें भरा हुवा है अर्थात् सड़े हुवे वीर्य और विष्ठाके भागोंसे भरा हुवा है यदि किसी पुरुषकों इस प्रकार सड़े हुवे वीर्य और विष्टाके भागोंसे भरे हुवे पात्रकों ओष्टों द्वारा प्रेम पूर्वक आश्वादन करनेका कहा जाय तो क्या वह अङ्गीकार करेगा ? अङ्गीकार करना तो दूर ही रहो किन्तु ऐसा सुनने मात्रसें ही जीमें घबराहट होकर तत्काल वमन हो जाती है बस तो इसही प्रकार ज्ञानवान् पुरुष घृणोत्पादक (कमकमी दिलानेवाला) दुर्गंधित खकारादिसे भरे हुवे मुखकों कदापि चुंबन करनेकी वाँछा नहीं करते

जङ्घा स्थान जो कि गज शुण्डावत् प्रतीत होता है वह केवल मूत्र और लोहुसें भरा हुवा है किसी व्यक्तिकों यदि कहा जाय कि मूत्र, लोहु और

वीर्यादिसे जरा हुवा कीडे जिसमें बिलबिला रहे है ऐसे कुएमें स्नान करके अपने शरीरकों पवित्र करोंगे क्या ? नही २ स्नान करना तो दूर रहों किन्तु ऐसी दुर्गंधनीय बात तक सुननेकी इच्छा नहीं करते बस इस ही तरह बुध्दिवान् मल मूत्रादिसें जरे हुवे (जिसकों देखने मात्रसें कमकमी छूटती है) जच्छा स्थानकों सेवन करनेकी कदापि अभिलाषा नहीं करते"

उपरोक्त व्याख्यासें आपकों मालुम हो गया होगा कि स्त्रीके कैसे २ दुर्गन्धित स्थान है तो जी हाय हाय ! छी छी ! ! मूर्ख लोग जिसमें मुह देनेसे नही शर्माते इन्द्रियजीत पुरुषोंके तो दुर्जय कामदेव सदैव किंकर रहता है देखियेः—

एक समयका जिक्र है कि परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथ स्वामी किसी स्थान पर अपने कायोत्सर्गमें सन्निष्ठ थे इधरसे कामदेव और रति पर्यटन करते हुवे आ निकले-उनके आपुसमें इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुवेः—

(श्लोक)

कोऽयंनाथ जिनोभवेत्तववशी हूँहूँ प्रतापप्रिये ॥
हूँहूँतर्हिविमुञ्च कातरमते शौर्या वलेपक्रियाम् ॥
मोहोनेन विनिर्जित• प्रभुरसौतत्किङ्कराः केवयं ॥
इत्येव रतिकामजल्प विषयेपार्श्वप्रभुः पातुनः ॥ १ ॥

इस अपूर्व श्लोकका जावार्थ प्रश्नोत्तरमें ही दिखलाना समुचित समझता हूंः—

रतिः—हे नाथ ! यह सन्मुख खडे हुवे कौन है ?

कामदेवः—प्रिये ! ये जिन जगवान् हैं

रतिः—क्या ये आपके वशीभूत हैं

कामदेवः—हे प्रतापशालीप्रिये ! हूं हूं

रतिः—हे कायर पुरुष ! यदि हूं हूं करता है तो अपना शक्ति वाण क्यों नहीं छोड़ता

कामदेव—हे प्राणवल्लभे ! इन महात्माने विषरूप मोहकों सर्वथा साग कर दिया है इसलिये अपन तो इनके सदैव किङ्कर है महानुभावों ! इस प्रकार रति और कामदेवकी वार्त्तालाप विषय वाले श्री पार्श्व प्रभु सदैव हमारी रक्षा करो

इस श्लोकसें आपको सुविदित होगया होगा कि जिन महात्माओंने पुनः २ निन्दनीय स्त्री संसर्गकों सर्वथा परिसाग कर अखण्ड शील व्रत धारण किया है उनके सेवाकी इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र भी निरंतर वांछा करते है एक इस शील व्रतसें अनेकशः गुण प्रकट होते है जिसका वक्तव्य मेरी सामान्य लेखनीसें वाहर है तदपि यत्किञ्चिद् उधृत करता हूंः—

(श्लोक)

हरतिकुलकलङ्कंलुम्पतेपापपङ्कं।सुकृतमुपचिनोतिश्लाघ्यतामातनोति।
नमयतिसुरवर्गंहान्तिदुर्गोपसर्गंस्त्वयतिशुचिशीलंस्वर्गमोक्षौसलीलम्

भावार्थः—यह शीलव्रत कुलके समस्त कलङ्कोंको हरण कर लेता है तथा पापरूपी कीचड़कों विनाश कर देता है और सत् कर्मोंकों वर्द्धित करता है तथा प्रशंसा विश्व विस्तरित करता है एवं महा ऋद्धिवन्त देवताओं (इन्द्रादि समस्त) को नमन करा देता है तथा घोर उपसर्गोंको मार भगाता है और अन्तिममें जघन्यसें स्वर्गवास और उत्कृष्टसे अपवर्ग (मोक्ष) की विचित्र लीलाकों रचता है अर्थात् अनंत सुखकारी सिद्धि पदकों प्राप्त करवाता है

उपरोक्त समस्त व्याख्यासें आपकों सम्यक् प्रकारेण विज्ञात हो गया कि शीलव्रत एक कैसा उत्तम रत्न है इस व्रत रत्नकों आप परम वैरागी गणाऽधीश्वर अकथनीय कठिनता पूर्वक पालन करते थे धन्य हो! के अखण्ड शीलव्रतका महा प्रभाव विश्व प्रशंशनीय है प्यारे गुण यों! अब मै आपके दिव्य तपश्चर्याका पाठकोंको श्लाघनीय परिचय- ता हूं:—

॥ दिव्य तपस्या ॥

जिसके जरिये अष्ट कर्मों को तपाना यानी निर्जरना अर्थात् विनाश ा उसें तपस्या कहते है जैसे काष्टके अन्दर अग्नी डालनेसें जलबल खाक हो जाते है; इसही तरह तपस्यारूप अग्नीसें काष्टरूप कर्म नष्टताकों होते है अर्थात् निर्मूल हो जाते है अथवा इच्छारोधन करना उसें तप ते है

आप पूज्यगणाऽधीश निम्न लिखित द्वादश तपका सम्यग् आचरण ते थे:—

(गाथा युग्मम्)

अणसणमुणो अरिआ । वित्तीसंखेवण रसच्चाओ ।
कायकिलेसोसंलीण । आयवज्जो तवोहोई ॥ १ ॥
पायछित विणए । वेयावच्चं तहेवसज्झाओ ॥
झाण उसग्गोविअ । अभ्भितरो तवोहोई ॥ २ ॥

अर्थः—१ अनसन २ उणोदरी ३ वृत्ति संक्षेप ४ रसत्याग ५ कायक्लेश सलीनता ये ६ बाह्य तप होते हैं तथा १ प्रायश्चित २ विनय ३ वैयावच्च सझाय ५ ध्यान ६ उत्सर्ग ये ६ अभ्यन्तर तप होते हैं

इन बारह प्रकारके उग्र तपका आप पूज्य गुरुवर्य किस २ प्रकार आचारण करते थे उनका किञ्चित् खुलाशा पाठकोंके अभिमुख करता हूँः—

(१) अनशनः—अहारका सागकना उसें अनशन तप कहते है आप महा तपस्वीने उपवास, बेला, तेला, अठाई, पक्खमण, मास क्षमणादि पर्यन्त बहुतसी तपस्या कर पुद्गलको निर्विकारी बनाया जिस वख्त आप उपवासादि व्रत करते थे बडे ही संतोष पूर्वक अपने कालकों निर्गमन करते थे

वर्तमानमें कइ एक महानुभाव उपवासादि व्रत कर खानपानकी चेष्टा किया करते है यानी बाहरसें तो उपवासादि के प्रत्याख्यान (नियम) कर लेते है औ मन उनके बाज़ारमें हलवाईयों की डुकानो पर घूमा करते है और यह विचार किया करते है कि हे ईश्वर ! आजका दिन बड़ा लम्बा हो गया आज तो सूर्य भी कंपता २ चलता है इस प्रकार रात्रिमें भी घुनघुना हट करते है कि कब दिन ऊगे और रुष्ट भोजन महाराणाकों मनावें साथकी साथ उपवासके दिन यह भी चेष्टा करते है कि कल पारणेके लिये अमुक २ रसवती भोजनकी तैयारीके लिये आजही सर्व बन्दोबस्त कर लेना चाहिये नही तो पारणेमें विलम्ब हो जायगा इसादि अनेक विकल्प कर उपवासके फलकों नष्टभ्रष्ट कर देते हैं

सच है ! ऐसे उपवासादि व्रतसें कुछ भी फल नही हो सकता इधर जरा जैनेतर लोगोंकी तर्फ झुक कर देखते है तो एक विलक्षण ही गम्मत नजर आती है कहावत मशहूर है कि "जैनियोंका वास और कायाका नाश वैष्णवका वास और पैसोंका नाश "

विरले पुरुषोंको छोड़कर जैनेतर लोग जब एकादशी वगेरा का उपवास करते हैं तब लड्डु, पेड़े, कलाकन्द, पेठे और सिघाडेका हलवा वगेरा अनेक मिष्टान पदार्थोंका सेवन करते है तथा आम, केले, सन्तरा, अनार, जामन, तरबूज, खरबूज, ककड़ी वगेरा रसाल खाकर मौज उमाते है एवम्

किसमिस, पिस्ते, काजु, नेजे और बादामादि वस्तुओंको सेवन कर उग्र तपके फलकी आशा रखते है तथैव मलाईका बर्फ, कच्चा बर्फ और अमनिया ठण्डा (कच्चा) जल पानकर आनंद मानते है कइ एक लोग दिनभर भूखे मरकर रात्रीकों भोजन करते है और कइ एक ऐसा भी कथन करते है कि यदि फलहार (अन्नको छोडकर शेष मिष्टान, मेवा, फलादि) न करे तो वह उपवास गिनतीमें नही हो सकता अर्थात् उसमें हमारे मनोवांछित नही मिल सकते है

वहावहा क्या खुब ! एकादशीकी दादी द्वादशी सदश मौज उडाने पर भी यथेच्छा फलकी अभिलाषा करते है उफ ! मै भूला उपवासमें जो वे फलहार करते है वह ठिक है उस दिनके भोजनका नाम बेशक गुण निष्पन्न है सुनिये जरा ध्यान पूर्वक "फलंह्रियते इतिफलहारः" जिस भोजनसें सम्यग् इष्टता हरण हो अर्थात् नष्ट हो उसे फलहार कहते है अस्तु कुछ भी हो किसी पर कटाक्ष करना उचित नही मै तो सीर्फ मेरे प्यारे गुणग्राही तटस्थ पाठकोंकों इतना ही ध्यान दिलाना चहाता हूँ कि एसे व्रतसें अपनी इष्टता हरगीज़ नही हो सकती उनका व्रत करना गोया दिलको बहलाना है मुझे पूर्ण आशा है कि विद्वान् पाठक वर्ग अवश्य इस पर लक्ष देकर वास्तविक नियमको विचारेंगे

कइ एक प्राणी अपने यशकीर्तिके निमित्त, उपवास, बेला, तेला, अठाई, पक्षक्षमण, मासक्षमणादि करते है कि जिससें लोग मुझे खूब, पूजें, माने, मेरी सेवा, सत्कार करें और मेरी कीर्ति दुनियामें चो तर्फ फैल जाय यह भी प्रायः निष्फलरूप ही है

हमारे वे पूज्य महा तपस्वी उपवासादि व्रतके दिन कैसी ? शुभ भावनाए भाते थे जिसें सुनकर प्राणी वैराग्य रसमें झीलने लग जाते हैं सुनिये उस दिलचस्प अपूर्व भावनाका एक अमृत बिन्दु आपको भी आस्वादन कराते हैं:—

हे चेतन ! आजका दिन अहोभाग्य है आज तेरे अनंत पुण्याइका उदय है की उपवासादि व्रत उदय आया अनादि कालसें तेंने अनेक योनियोंमें अनेक शरीर धारण किये और नाना प्रकारके भोजनादि भोगकर उदर पूर-

णकी, यदि उसकी गिनती करने लगे तो कई मणासे कणासे तक भी नहीं ठहरती पानीका यदि हिसाब लगाया जाय तो समुद्रके समुद्र तक खाली कर दिये होगे मगर तुझ अबतक संतोष न हुवा; भवान्तरको छोडकर यदि इसही भवका हिसाब लगाना चाहें तो कुछ यथावत् पता नही लगता देख यह उदर कितना गहरा है सुबुह खाया शामको फिर खाली, शामको खाया सुबुह फिर खाली उपासका नाम मात्र सुनने सें दश२ कोश दूर भागता है तूं अन्नका कीडा सदैव अन्नमें ही प्रसन्न रहता है जिस प्रकार विष्ठाका कीडा विष्ठामे ही खुश रहता है कभी उसको उच्च स्थान पर पहुँचनेका कहो तो कभी नही मानता इसही प्रकार तुझे कभी व्रतका कहते है तो हृदय वज्रसा घाव पडता है हे आत्मा! तुझे इतना भी खयाल नही होता कि ऋषभदेवादि तीर्थंकर, पुण्डरीकादि गणधर श्रुत केवली, दिग्विजय आचार्य और अनेक मुनि महात्माओने कइ एकप्रकार तपाराधन कर अपनी देहका कल्याण किया है और अन्त में यावत् उग्र अनशन कर परम पदको हाँसिल किया है तुझे आज उपवासादिमे इतना कष्ट प्रतीत होता है यह केवल तेरी ढिटाई है तूं इस वक्त संतोष को अवलम्बन कर पूर्वजोंकी अनुमोदन करके आनंद रसमें झील, तुझको बार२ यह सौभाग्य प्राप्त नही हो सकेगा देख अखीर तूझे इन पौद्गलिक पदार्थोंसे जुदा हुए बगैर सिद्धि पद कभी नही मिल सकता तो क्योंकर अभ्याससे वंचित रहता है यह मानव भव, पुनः२ तुझको हरगीज़ प्राप्त नही हो सकता यह पौद्गलिक पदार्थ तेरी नही है क्योंकर इसमें रक्त हो रहा है अब तू इनसें तबियत हटा और संतोष समुद्रमें निमग्न हो इत्यादि नाना प्रकारसें भावना भाते हुवे अपने अमूल्य टाइमको निर्गमन करते थे

(२) उणोदरीः—क्षुदा, पिपासाऽऽपूरित भोजनसें न्यून करना उसे उणोदरी कहते है वे धर्मावतार प्रायः कइ बार इच्छित भोजनसें खास तोर पर (Specially) कम कर आहार, पानीसें तबियत हटाते थे और उत्तम२ भावना भाकर अपने मानवभवको सफल करते थे

(३) वृत्ति संक्षेपः—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसें रही हुई व्यवस्था को कम करना उसें वृत्तिसंक्षेप कहते है

आप जवोद्धारक १ द्रव्यसें तो जोगिक यानी खानपानकी वस्तुओंको संक्षेप करते तथैव और जोगिक यानी उपधी, (उपगरण–वस्त्रादि) वगेराका नियम करते थे २ क्षेत्रमें आज इतने घरसें ही आहार पानी लाना और न मिलने पर उपवास व्रतकर जाना तथा गमना गमन इतने क्षेत्र प्रमाणसें अधिक नहीं करना ३ कालसें अमुक समय पर ही गौचर्यादि लाना न मिलने पर क्षेत्रवत् ४ जावसें उठलते हुवे क्रोध, मान, माया, लोज, राग, द्वेषादिकों उपशान्त कर शनैः २ निराबाध कृपादेना इस प्रकार वृत्तिका संक्षेप करते हुवे यह जावना जाते थे कि:—

हे चेतन ! इस डुनियाके अन्दर मुख्य दो शत्रु है प्रथम राग द्वितीय द्वेष जिस्में जी राग बडा ही डुर्धर है इस ही घोर शत्रुने तुझे अनंत जव रुलाया गृहस्थाश्रमके अन्दर किसी समय पितासें, कजी मातासे, कजी जाई, बहिनसें, कजी जार्यासें कजी पुत्र, पुत्रीसें और कजी स्नेही मित्रादि अनेक सम्बन्धोमें मोहित कराकर आसक्त किया इसही लिये तूंने उत्कृष्ट सुख उसही मे स्वीकार किया और दिन प्रतिदिन प्रबलताको साथ देनेमें कटिबद्ध रहा इधर श्रमणपदमें स्वार्थी होकर गुरुसें प्रेम बढानेमें उत्कट इच्छुक हुवा तथा गुरु जाई, शिष्य, शिष्याओंकी व्यावहारिक सेवा जक्ति देख गाढ स्नेहमें चकचूर हुवा और मोक्षके सुखका अनुजवन यही मानने लगा अशनादि चतुर्विध जोजनके आस्वादनमें लिप्त रहा, कोमल स्पर्शीय वस्त्रादिकोंका सुख अपूर्व रूपसें मानने लगा, मकानादिकी छबियों पर बेचेनीसें वियोग किया अथात् प्रेमानंद मानने लगा इत्यादि अनेक जोगोपजोगीय पदार्थोंपर ऐसा गाढ ममत्व रहा कि जो वक्तव्यसें बाहार है हे अवधु ! तुझे यह आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, जैनधर्म और श्रमणपदादि उत्तमोत्तम योगवाईये वार २ नहीं मिल सकेगी जरा अपने हृदय पर हाथ धरकर विचार कर की तूं कौन है और ये पदार्थ क्या हैं ! हे आत्मा ! तूं अनत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यमय, अक्षय, अविनाशी, अव्याबाध, निर्विकार, निराकारादि समस्त उत्कृष्ट गुणोपेत है और ये जितनी पौद्गलिक पदार्थें है वे सर्व जमात्मक है क्या कोई ज्ञानी किसी मूर्खकी संगतीसें खुश होता है ? नहीं २ कदापि नही खुस होना तो दूर रहो किन्तु शब्द मात्र ही कर्णोंमें शूल सदश डुःखदाई होते है

तो हे चेतन ! ये जितनी ही जोगोपजोगीय पदार्थ हैं उससें राग प्रणती दूर कर चिदानंदमय हो जा. तेरे इस जवदृध्दि रागके निकंदन होनेसे द्वेष स्वतः ही नष्ट हो जायगा जैसें जड़के काट देनेसें वृक्ष स्तम्ज, शाखाएं, पत्र, फूल, फलादि स्वयं विनाश हो जाते हैं. इत्यादि शुज जावना द्वारा रागद्वेषके आश्रवको निरोधकर संचित रसकों पतला करते थे धन्य हों ! मुनि रत्न आप कृत पुण्य हो !

(४) रस त्यागः—रसवती पदार्थोंकों परित्याग करना उसें रस त्याग कहते है

आप निर्विकारी महानुभाव दूध, दही, घृत, तैल, मिष्टान और पक्वान्न इन षट् विगयकों कइवार त्याग कर देते थे और निरंतर एक दो विगयसें प्रायः विशेष सेवन नही करते थे किन्तु षट् विगय हमेशा छोड़नेकी उत्कृष्ट खप (कोशीस) करते थे

(५) काय क्लेशः—किसी तरह शरीरकों कष्ट देकर सहनशीलताकों बढ़ाना उसे काय क्लेश कहते हैं

आप पृथ्वीसम सहनशील नियमित समयपर लोच (बाललुंचन) करवा कर मनके चंचल वेगकों स्थिरीजूत करते थे आप जवतारकने ३६ वर्ष ४ माह और १४ दिवस अखण्ड चारित्र पाला इसमें रोगादि कष्टावस्थाओं में जी आपने मुण्डन (रासादि प्रयोगसे वाल निकलवाना) कजी न करवाया यह एक उत्कृष्ट चारित्रका परिचय है

आपके आतापना तपका अपूर्व गुण सुन प्राणी आश्चर्य समुद्रमें गोता मारने लग जाते है अधीर न होईयेगा लीजिये उस उत्तम गुणकों सुनकर अपने उत्सुक कर्ण युगलोंकों आनंदित कीजिये औ मुक्त कण्ठसें अनुमोदन कर अपनी कर्म राशीकों क्षय कीजिये

सर्व परिसहोंमें उष्ण परिसह बड़ा तेज है जिसका उपचार जी दुःसाध्य है

वैशाख जेष्ठमें सूर्य अपने प्रबल कोप द्वारा ऐसा प्रचण्ड आताप फैलाता हुवा घूमता है कि जिस तेजको देखनेसें प्राणीके नेत्रोंमेंसें जल वहने लग जाता है और उसमें स्पर्श करनेसें पेर जलने लगते है, शिर जुंजने लगता है, शरीरमें ज्वाला पैदा हो जाती है, हृदय फड़कने लगता है यहाँ तककि मनुष्यके प्रत्येक अवयवमें घबराहट होने लगजाती है उस वख्त यदि किसी पुरुषको कहा जायकि तुम आध घटा काउसग्ग कर खड़े रहो तो अव्वल तो उसका सहास ही नही हो सकता कदाचित् सख्त दिल होकर खड़ा भी रहे तो मिण्टोंमें मूर्छित हो धरणी वश होना पडता है ऐसे उग्र आतापको सहन करनेमें अगर वीररत्न हो तो आसपासमें यही एक महात्मा हो सकते है

सज्जनो ! आप दृढ हृदयी मरुस्थलके सुप्रसिद्ध ग्राम फलवर्धि इलाके योधपुरके पश्चिम भागीय उन्नत धोरे (धूलके देर) जो कि वैशाख जेष्ठमें अग्निसे भी जियादे गर्म हो जाते हैं जिसके सामने मामूली आदमी ठहरनेकों सर्वथा असमर्थ है ऐसे धगधगती हुई (झालोझाल) अग्नि सदृश उन धोरों पर मध्याह्नकालमें तीन २ चार २ घटे लेट जाया करते थे और कभी कायोत्सर्ग कर ध्यानाऽऽरूढ हो जाते थे किसी वख्त धर्मशालाके चादनी पर ही ऽसह्य उष्ण पाषाणादि पर पूर्ववत् आतापना लेते थे इस वख्त दशों दिशाओं की आताप अपनी प्रबल शक्तिद्वारा टक्कर मारकर पस्त हिम्मत करनेका सहास करती किन्तु उन वीर पुरुषके सामने उसकी सर्वाऽऽशाए निष्फलताकों प्राप्त होती थी अहाहा ! आपने इस प्रकार कठ्ठार आतापना ग्रहण कर अपनी देहका उध्धार किया मै इस वातकों स्फुट तौरसें कह सकता हूं कि जैन काम्युनिटी (जैन समाज) में आसपास वर्षोंमें आपके सदृश इस तौर पर उग्र तपस्वी न हुवाहोगा आप अपने शरीरकी कुछ भी परवाह नकर इस प्रकार तपाराधनमें कटिबद्ध रहे धन्य है! आपका साधुत्व विश्व आदर्शनीय हैं

(६) सलीनता:—अङ्गोपाङ्गकों सकुचित करनेमें सलग्नता हो उसें संलीनता कहते है

वे जितेन्द्रीय महानुभाव पञ्चेन्द्रीयके तेवीस विषयोंसें अनाकाङ्क्षित होकर

अपनी स्पर्शेन्द्रियादि पाँचोंका निग्रह करते थे अर्थात् उनकी विकारी दशाकों हटाकर उन्हें उच्चमाचरणोंमें संयोज्य करते थे

(७) प्रायश्चितः—किसी अतिचार या अनाचारकी आलोचना (शास्त्रानुसार दण्ड) लेना उसे प्रायश्चित कहते हैं

महानुभावों ! प्रायश्चितका लेना कुछ सहल नही है कारण कि अपने दोपोंको स्फुट करना बड़ा ही मुशिकल है वर्तमान जमानेकी गंधीली वायु इस प्रकार झपट मार रही है कि सैकड़ों मनुष्योंके खयाल विपरीत कर दोपोंकों जाहिर नही करने देती और दिलमें यह विकल्प पैदा करती है कि मै उत्तम कुलमें पैदा हुवा, मेरे घरानेकी कुलीनता जगज्जाहिर है मै राजा, महाराजा अथवा शेठ, साहूकार पदवी कों धारण करनेवाला इस प्रकार विपुल वैभवका भोगवनेवाला मै सर्वत्र सन्मानीय इज्जतकों धारण करनेवाला किस प्रकार अपने गुप्त पापोंकों प्रकट करू अथवा—

मै दृढ धर्मी कहलाने वाला, मै द्वादश व्रतोंकों अङ्गीकार करने वाला श्रावक होकर एवम विश्व प्रशंनीय पञ्च महा व्रतोंकों धारण करने वाला मुनिराज होकर किस प्रकार अपने गुप्त दोपोंकों जाहिर करूं मेरी शान्तता, मेरे शुध्द आचरण, मेरी यश, कीर्ति विश्व विस्तीर्ण हो रही है ऐसी अवस्थामें अपने छुपे हुवे पापोंकों हरगीज जाहिर नहीं करना चाहिये अगर लोग सुनेगे तो मुझे बेशरम, धर्मभ्रष्ट, आचार च्युत और पासथ्था (धर्म मार्गमें रहकर क्रियाभ्रष्ट द्रव्यलिङ्गी अतिचार अनाचार सेवन करने वाला) आदि दुःसह अनेक कलङ्कोसें कलङ्कित करेंगें इस प्रकार अनेक दुष्ट विचार कर अपने पोशीदे आजावोकों (पापोंकों) प्रकट नहीं करता है

जो प्राणी अपने अतिचार, अनाचारोंको गुप्त रखकर बगेर आलोचना मरण शरण हो जाता है वह "रूपी राजाके सदृश" अनेक भव रखड़ता है

मुझे इस स्थलपर इतना अवश्य कहने दीजिये की जमाना बहुत नाजुक है लिहाजा सर्वके समक्ष अपने अप्रकट दोपोंकों जाहिर करना सर्व साधारणक

वास्ते दुःसाध्य है ऐसी व्यवस्थामें ऐसे महानुभावोंके सन्मुख अपने अतिचार, अनाचारोंको प्रकट कर आलोचना ग्रहण करना चाहिये कि जो कमसें कम इतने गुणोंसे अवश्य सुशोभित हों

१ अपने पूर्ण विश्वासी हों
२ धर्मके दृढ श्रध्धावन्त हों
३ कर्मराजकी विचित्रताके सुविज्ञ हों
४ घृणाके अभावी हों
५ अनादर करनेमें सदैव पराङ्मुख हों
६ उचित आलोचना दाता हो
७ संतोष जनक उपदेश देकर आत्माको आनंद देनेवाले हों

इस प्रकार गुणशील उपकारी पुरुषका योग मिलनेपर भी जो प्राणी अपने गुप्त पापोंका प्रकटकर आलोयणा ग्रहण नही करते है वे भव २ में असह्य दुःखसें दुःखित होते है

धन्य है! उन आत्मार्थियोंको कि जो बिलकुल विचार न कर तत्काल अपने गुरु महाराजसें सजा अख्तियार कर अपनी आत्माकों निर्मल करते थे क्या ही उत्तम हो की वर्तमानमे भी भव्यजनको वैसा सौभाग्य प्राप्त होजाय

वर्तमानके लिहाजसें भी उपरोक्त कथनानुसार योग मिलनेपर यदि दण्ड अङ्गीकार कर लें तो भी कुछ प्रशंसनीय है और यदि पूर्व महानुभावोंकी तरह निमर होकर अपने दोषोंको पबलिकमें जाहिरकर आलोचना ग्रहण करें तो विश्व प्रशंसनीय व शतशः धन्यवादके पात्र है हमारे गुरुदेव जिनकी कि हम व्याख्या कर रहे है उनकी प्रणाली इस प्रकार थीः—

वे विवेकी गुरुवर्य अपने अनुपयोगतासें लगे हुवे दोषोंका तत्काल ही गुरुभावों द्वारा शास्त्राऽनुकूल प्रायश्चित ग्रहण कर पवित्र दशाकों अवधारण करते थे—मै इस स्थानपर यह बात अवश्य जाहिर करुगा कि चारित्र रत्न के एक उत्कृष्ट आराधक थे कि जिससें अतिचार या अनाचार उन पर हुमला करनेका सर्वथा सहास नही कर सकते थे तदपि छाद्मस्थिकाऽवस्थाके कारण उपरोक्त सम्बन्ध दर्शाया है

(८) विनयः—विशिष्ट रूपसें मोक्ष मार्गमें ले जावे उसें विनय कहते है

वे शान्त स्वरूप गुरुवर्य अपने गुरु महाराजका तथा रत्नादि मुनिवरोंका इस प्रकार विनय करते थे कि जैसें साक्षात् गौतमस्वामी वीर परमात्माका ही न करते हो तथैव सिध्दान्तोंका बहु मानकर अपनी आत्माकों विनय गुणमें रमण कराते थे

महानुभावों ! पवित्र आगमोका फरमान है कि "विणयमूलोधम्मो" यानी धर्मका मूल विनय ही है जब तक प्राणी मानरूपी अजगरके मुखसें बाहर न निकल आवे तहा तक विनय गुणकी असिध्दता है. कहा है "माणेविणय-विणासई" मानमें विनय नाश होता है और विनयसें विद्या यावत् मोक्षके अनत सुखोंसें वञ्चित रहना पड़ता है इस लिये:—

हे चेतन ! तुझे मान करना उचित नही क्योंकी अहंकारसें नम्रता नही हो सकती और नम्रताके वगैर विद्या नही पा सकता क्योंकी मुलायमता अगर होगी तो किसी प्रकार गुरु महाराजकों खुशकर ज्ञान संपादन कर सकता है और विद्याके विधुन समकित हाँसिल नही कर सकता चूंके अगर ज्ञानरूपी प्रकाश होगा तो मिथ्यात्वरूप अन्धकार नष्ट कर सकता है एवम् समकितके वगैर यथाख्यात चारित्र नही मिल सकता कारण की वीतराग देवके पवित्र वचनो पर दृढ़ श्रध्दा हुए वगैर चारित्र अङ्गीकार नही होसकता तथा चा-रित्रके विना मुक्ति नही हो सकती क्यो कि जिनेश्वर भगवान् ने जैसा फरमान किया है वैसा ही आचरण करे तब अष्ट कर्म विध्वंस कर परमद पासकता है ऐसे मुक्तिके शस्वत अनंत सुख तूँ वगैर इन रत्नोंके हाँसिल किये कौन युक्तिसें सम्प्राप्त कर सकता है ? कहनेका तात्पर्य यह है कि वगैर विनयादि गुणके जीव निर्वाण पदकों कदापि सपादन नही कर सकता है

पवित्र जैन सिध्दान्तोंमे श्री उत्तराध्ययनके प्रथमाध्ययनमें तथा दशवैका-लिकके नौमें अध्ययनादिमें किस प्रकार विनय गुणकी गुणाऽऽवली गाई गई है की जिसे सुनने मात्रसें प्राणीके रोम २ हर्ष रस सें भर जाते है तो अनुभवके आस्वादनका कथन ही क्या ? विनयाऽनुभवी महात्मा तो सदैव दिव्य आनंद लहरोंमे लहलहति है

मेरे प्यारे पटुताभिलाषियो ! शिष्य वर्गको भवतारक गुरु महाराजके साथ बैठनेमें, ऊठनेमे, चलनेमे, सोनेमें, खाने, पीनेमें, आवागमनमें और सामान्य सम्भाषणमें तथैव प्रश्नेक प्रार्थनामें एव पठनादि अवस्थाओंमें और उनके फरमानको शिरोधार करनादि अनेक क्रियाओंमें विनय सांचवकर अपने मानवजन्मको सफल करना सुखकारी है यह विषय बहुत गहरा व उच्च होनेपर भी गुरु महाराजके चरणोंका अवलम्बनकर "गुरू शिष्यका अपूर्व दृश्य" इस हेडिंगवाले विषयमें विनय पुष्पोंको उतमोत कर किश्चित् रूपण पाठकोंके अभिमुख प्रकाशित करता हूँ

(गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य)

अतीव मनोहर गुर्जर देशमें सिध्धपुरपट्टन नामक एक विशाल शहर है वहाँपर अनेक जिन मन्दिर उन्नत ध्वजा, कलश और तोरणादि करके सुशोभित है कितने ही जैन धर्मानुरागी श्रावक वर्ग निवास करते है यह शहर किसी जमानेमें साक्षात् इन्द्रपुरीसा मनोहर प्रतीत होता था

एक समयका जिक्र है कि अनेक पवित्र मुनि वर्गमें सुशोभित एक दिव्य ज्ञानधारी आचार्य महाराज निवास करते थे उनके बहुतसे शिष्य सुविनीत होनेपर भी एक विनयशील नामक विद्वान् शिष्य अत्यन्त नम्र गुणसें विभूषित था; जरा देखिये उसके विनयकी तर्फ लक्ष दीजियेः—

वह महानुभाव अपना आसन ऐसे स्थानपर रखता कि गुरु महाराजसें न तो अति निकट और न अति दूर था किन्तु मध्यस्थानमें गुरुवर्यकी दृष्टिमें निवास करता था

प्रातः कालमें ब्रह्म मुहूर्तके अन्दर जाग्रित होते ही प्रथम ही प्रथम गुरु महाराजकी विधि पूर्वक सुखशाता पूछ अपनी आवश्यक क्रियामें प्रवृत्त हो जाता पश्चात् ठीक प्रकाश होनेपर आदेशको पाकर गुरु महाराजके वस्त्रादिकों की जयणा युक्त प्रतिलेखन कर अपनी उपधीकी पडिलेहण करता तद्-

नन्तर गुरुमहाराजके समीपमें आकर नम्रता पूर्वक स्वाध्याय कियाकर सविधि वंदना नमस्कार करनेके पीछे यथाशक्ति प्रत्याख्यान अङ्गीकार करता जिस वख्त यह वंदना करता था शरीरके प्रत्येक अङ्गको इस प्रकार मोड़ता था कि मानो उसमेंसे साक्षाद् विनयरस झर रहा हो.

पश्चात् दो पात्रोंमें जल भरकर गुरु महाराजके साथ स्थण्डिल भूमि जाता नियमाऽनुसार इस कार्यसे निवृत्त होकर वापिस उपाश्रयमें प्रवेश होते ही गुरु महाराजके समीप इरियावही (गमनागमनकी आलोचना विधि) प्रतिक्रम कर आज्ञानुसार अपने आसनको ग्रहण करता हुवा स्वाध्यायमें स लग्न हो जाता.

अहारपानीके समय गुरु महाराजके निकट आकर दोनो कर जोड़ मस्तक नीचाकर यह प्रार्थना करता कि:—हे स्वामिन्! यदि आप सर्व कार्यसे निवृत्त हों अर्थात् कोई कार्यमें बाधा न पहुँचती हो तो भोजनार्थ पधारनेका अनुग्रह फरमाइये गोचरी हाजिर है समय आने पहुँचा सर्व मुनि मण्डल आपकी राह देख रहा है सुनतेही इन मधुर वचनोंके वे पूज्यआचार्य महाराज तत्काल उस स्थानसे उठकर गोचरी गृहमें पहुँचे सर्व मुनिराजोंने नमस्कार पूर्वक स्थानाऽऽपन्न किये सबसे आदिमें गुरुवर्यके रुचिकर भोजन उनके पात्रमे प्रक्षेप किया तदनन्तर नियमानुकूल सर्व मुनियोंको समर्पण किया अव्वलही अव्वल सर्व मुनिराजोंने गुरुमहाराजकी भावना भाई बाद परस्पर भावना भाकर गुरुवर्य की आज्ञानुसार सानद आहार पानी किया, पश्चात् सर्व महानुभाव अपने२ कार्यमें प्रवृत्त हुवे

मध्याह्नकालमें वह सुविनीत शिष्य पठनार्थ गुरु महाराजके सेवामें समुपस्थित हुवा यथा विधि वंदना नमस्कार कर प्रार्थना की कि हे भवतारक! यह आपका चरणोपासक सेवक हाजिर है अनुकम्पया वांचना प्रदान करनेका अनुग्रह फरमावें

सुनतेही इन कोमल वचनोंके उपगारी गुरु महाराजने [illegible] नेकी इजाजत बख्शीस की

इस अवसरमें जैसे चातक अपना मुख पसारकर मेघकी उत्कट इच्छा करता है इसही तरह वह शिष्य कभी गोऽऽधाऽऽसन (दोनों जानु खड़े हुवे) कभी उग्राऽऽसन (दोनो जानु पृथ्वी पर लगे हुवे) और कभी इन्द्राऽऽसन (वाया घुटना खड़ा हुवा) इत्यादि किसी भी विनय आसनको ग्रहणकर दस्त ब दस्त मस्तककों झुकाया हुवा यह भावना भाताथा कि कब गुरु महाराजके मुखकमलमें से अमृत वर्षा हो कि मैं उसें पानकर अपने मानव भवकों कृतार्थ करूं

इधर गुरु महाराज अपनी अवर्णीय उपकार बुद्धिसें यह विचार रहे थे कि मैं शीघ्र ही जिन आगमका सुधारस पानकराकर इस की तीव्र पिपासा कों शमन कर दूं—

अहाहा ! धन्य हो ! गुरु शिष्य हों तो ऐसेही हों ऐसेही परम दयालु गुरु महाराज व ऐसाही सुविनीत शिष्य यह वही मशल हुई कि मानो मोतियोंके हारमें रत्न जड़ना है इस स्थलपर यदि हम वीर परमात्मा व गौतमस्वामीकी घटना करें तो असघटित न होगी मैं इस वातकों दावेके साथ कह सकता हूँ कि ऐसे अनुमोदनीय सम्बन्धमें अवश्य ही साफल्यता हो सकती है

कृपालु गुरु महाराजने पढाना आरम्भ किया प्रत्येक विषयकों इस प्रकार समझाते थे कि उस शिष्यका आनंद मस्तक घूमने लग जाताथा इस वख्तका आनद अनुभवि लोगही जान सकते है -

पढते २ एक स्थलपर ऐसा प्रकरण आया कि जहांतक प्राणी मर्यादा न करले तहां तक चतुर्दश लोकके समस्त पदार्थोंकी आश्रव क्रियाका प्रायश्चित लगता है यह बात पढते ही गुरु मुखसें विशेष खुलासेके लिये बडे ही नम्रता पूर्वक दरियाफ्त करता है

तत्वाभिलाषियों ! उन दोनो महानुभावोंके इस प्रकार परस्पर प्रश्नोत्तर हुवे जरा ध्यान पूर्वक पढियेगा

शिष्यः—हे विशालज्ञानी ! जिनेश्वर कथित जितने ही विषय हैं वे

अक्षरशः सत्य है और उनपर मुझे पूर्ण श्रद्धा है तथैव आगमाऽनुयायी पूर्वाचार्योंके पवित्र वचनोंपर भी मुझे दृढ़ श्रद्धा है एवं आप भवोद्धारकके वचन मेरे सदैव शिरोधार हैं किन्तु अल्पज्ञता वश मुझे यह ठीक समझमें नहीं आता कि पदार्थोंके बगैर भोगोपभोग किये ही क्रियारूप प्रायश्चित अपना वज्र कैसे पटकता है क्या कृपाऽर्णव बगैर चोरी किये चोरको कभी सज़ा मिलनेकी संभावना हो सकती है? अनुकम्पया मुझ अज्ञानीके भ्रमको उन्मूल कर अपनी शीतल छायामें शरण दीजियेगा.

गुरुमहाराजः—भोसुविवेकी! तुमारा कथन यथार्थ है इसही प्रकार सम्यक् प्रश्न करने परही प्राणी बुद्धिवान हो सकता है. देखो यह दृष्टान्त अपने लक्षमें लक्षित करो.

किसी एक आलीसान मकानमें एक क्रोडपति अपने द्रव्यकी रक्षा करता हुवा सानंद निवास करता है इस अवस्थामें जबतक उसके मकानके चारों दरवज्जे खुले हुवे है तबतक चौरोंके आनेका धोका है या नहीं? शिष्यने कहा अवश्य है बसतो इसही प्रकार जबतक प्रत्याख्यान (नियम) नहीं है किसी न किसी दिन वे पदार्थ अवश्य भोगोपभोगमें आ जावेगी वास्ते उसकी क्रियाका आज़ाब (पाप) लगना मुनासिब है

शिष्यः—सुनते ही इस उत्तरके प्रार्थना करता है कि हे कृपावतार! चाहे चौरोंके आनेकी दहशत स्वतन्त्रता पूर्वक क्यों न विहार करे किन्तु जबतक चौर माल न चुरा जाँय उसें कोई प्रकारकी हानि नहीं हो सकती इसही तरह जब तक पदार्थोंको सेवन न की जाय उसें पाप लगना समुचित नहीं अहो स्वामी! क्याही आश्चर्यका प्रस्ताव है कि जिस पदार्थको कभी हाथसें स्पर्श नहीं, नेत्रोंसे देखी नहीं, कर्णोंसे सुनी नहीं ग्रन्थोंमें पढ़ी नहीं, स्वप्नमें अनुभवि नहीं उसके वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादिसें सर्वथा अनभिज्ञ होनेपर भी दोषका प्राप्त होना स्वीकृत श्रेणीमें कैसे सघटित हो सकेगा दयाकर कोई अन्य दृष्टान्त प्रदर्शित कीजियेगा जिससे यह अनुचर संतोष रस पानकर आनंदित हो जाय

गुरुमहाराजः—शिष्यके ऐसे मुलायम शब्द श्रवणकर दिलमें विचारते

हैं कि यह दृष्टान्त वेशक संतोष काबिल है किन्तु कालके प्रभावसें इस वख्त इसके समझमें नहीं आता अस्तु बिलफेल द्वितीय दृष्टान्त देकर इसें प्रमुदित करना चाहिये पश्चात् वह दृष्टान्त भी इसके मनोमन्दिरमें संस्थापित कर देंगे. यह सोच आप फरमाते हैं:-हे आज्ञाऽनुयायी ! तूं कोई प्रकारका खेद मत कर वह दृष्टान्त भी क्रमशः तेरे समझमें आजावेगा ले अभी यह द्वितीय दृष्टान्त ध्यान पूर्वक श्रवण कर

एक पुरुष अपने शरीर पर तैल मर्दन कर वस्त्र वर्जित बैठा हुवा है क्या उसके बदनमें रज संलग्न होगी ?

शिष्यः—कृपानिधे ! निसंदेह लगेगी.

गुरु महाराजः—क्या वह इच्छा करता है कि मुझे रज लगे ?

शिष्यः—दीनबंधो ! हरगीज नहीं

गुरु महाराजः—तो क्योंकर उसें वह रज लगी !

शिष्यः—हे नाथ ! तैलकी स्निग्धताका ही यह स्वभाव है कि स्वतः रज आलगती है

गुरुमहाराजः—अगर वह वस्त्र परिधान करले तो शरीरके रज लग सकती है ? या नहीं

शिष्यः—दयानिधे ! कदापि नहीं

गुरुमहाराजः—प्यारे विनयशील ! जैसे विना प्रयोगही तैलकी चिकट रजको आकर्षित कर लेती है इसही तरह कषायोंका स्वभाव सचिकण है इससे वगेर इच्छाही अव्रत (आश्रव) क्रियारूप रज आकर लिपट जाती है और व्रत (प्रत्याख्यान-नियम) रूप वस्त्र पहननेसे क्रियारूप रजका निरोध

हो जाता है हां ! इतना अवश्य है की संजोगके सदृश तीव्र बधन नहीं हो सकता. सुगुणी वत्स ! क्या कुछ समझा ?

शिष्य—हे धर्मावतार ! आपकी अतुल महरसें बखूबी समझ गया.

गुरुमहाराजः—देख अब पूर्व कथित वही दृष्टान्त तुझे हम यथावत् घ दित कर तेरे हृदयाऽङ्कित कर देते हैं

शिष्यः—हे दयासागर ! कृपाकर फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—जबतक दरवजे खुले थे शेठके दिलमें क्या था !

शिष्यः—स्वामिन् ! चिन्ता.

गुरुमहाराजः—अगर चौर द्रव्य ले जाते तो क्या होता ?

शिष्यः—करुणाऽऽलय ! विशेप चिन्ता.

गुरुमहाराजः—मालके न जानेपर केवल देसतसें ही रात्रीभर निद्रा न आती और हरदम बेचेनी बनी रहती है तथा द्रव्य ले जानेके बाद बहु काल तक विशेप बेचैनी रहती है इसही तरह वस्तुओंके सेवन करनेसे तं बंधके हेतु अधिक जब रखडना पडते है और आश्रवकी क्रियासें क्षिप्र छुटकारा होनेकी सम्भावना है

शिष्यः—हे तरणतारण ! आपकी विचक्षण बुद्धिके सन्मुख च... नी गश खाकर क्षिति तल हो जाता है धन्य है ! आपकी अनंत पुण्याई और शुक्रियादा है आपके निर्मल क्षयोपशमकों एवं कोटिशः धन्य है आ श्रमणाऽवतारकों कि इस प्रकार बाल जीवोंपर उपकारक कृतकृत्य कर रहे यह पृथ्वी आप सदृश मुनि रत्नोंमें ही रत्नवती कहलाती है हे जगदाधा आप हमेशां जयवन्ता वर्तो ताके यह वीर शासनरूपी मार्तण्ड अपने दि प्रकाशसें समस्त पृथ्वीतलकों प्रकाशित करता है इत्यादि अनेक स्तवना अपने जन्मकों कृतार्थ किया

तत्पश्चात् दोनो हस्त जोड यह विज्ञप्ति करता है कि हे दीननाथ! बहुते
मय हो गया है पिपासा पीडित कर रही होगी यदि आज्ञाहो तो जलपात्र
हाजिर करू? गुरुमहाराजने फरमाया "यथासुखं तथैवकुरु" यानी जैसा
ख हो वैसाही करो अर्थात् सानद लेआओ आज्ञा पाते ही तत्काल उस
थानसें ऊठकर निर्मल अचित्त जल जहाँ पर रख्खा है वहा पर पहूँचा और
उत्तम वस्त्रसें छानकर एक स्वच्छ पात्र जलसें आपूरित कर लिया अब वह व-
स्त्रसें ढका हुवा (उड़ता हुआ धूक या कोई जन्तु उसमें न गिर जाय इसलिये
वस्त्रसें आच्छादन कियाथा) जलपात्र हस्तकमलमें स्थापनकर गुरुमहाराजकी
सेवामें हाजिर हुवा और कुछ नीचा झुककर दोनो करकमल गुरुमहाराजके
अभिमुख करता हुवा यह प्रार्थना करता है कि दयानिधे! लीजिये जलपान
(वावरना) कीजिये गुरुवर्यने चटसें पात्र ग्रहण किया और जल वावरकर अपनी
प्यासको शान्त की; और वह पात्र वापिस शिष्यको बख्शीस कर दिया

तदनन्तर कुछ टाइम औ पढकर गुरुमहाराजसें प्रार्थनाकी कि हे करुणा-
रस भण्डार! पाठन समयने अपनी अन्तिमाऽवस्थाको ग्रहण कर लिया है
इसलिये दयाकर मुझे अपने आसनपर जानेकी आज्ञा बख्शीस करें गुरुमहा-
राजने फरमाया "अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबन्धकरेह" अर्थात् देवताओंको
भी वल्लभ ऐसे हे शिष्य! जैसा तुमें सुखहो अविलम्बतया सानद करो गुरु
आज्ञाको शिरोधार कर शिष्य अपने आसनको ग्रहण करता हुवा अन्य पठन
पाठनादि क्रियाओंमे संप्राप्त हुवा

थोडी ही देर बाद क्या देखता है कि गुरुमहाराज मात्रा (लघुशङ्का) के
करते जानेका विचार कर रहें है अङ्गिताकारसें मानसिक परिणामोंको समझ
कर कार्य अलग रख शीघ्रही टोपसीमें जल लेकर गुरुमहाराजके पीछे हो-
लिया मात्राग्रहमें पहूँचते ही मात्रिये (पालसिया) को पूजनीसें पूज जयणा
से रख दिया व पासमें ही टोपसी भी धरदी—गुरुमहाराज अपनी बाधाको
निवृत्त कर अपने स्थानपर पधार गये—शिष्य एक हस्तमें मात्रियां और द्वितीय
हस्तमें जलकी टोपसी लेकर बाहिर निकला और जहाँ पर निर्वद्य स्थान है
वहाँ पर दृष्टि परमार्जन कर उसे बिखेर दिया और जलसें पालसियां साफ

कर जयणा पूर्वक उसही स्थानपर रख दिया और गुरुमहाराजके सन्मुख इरियावही (पाप अलोचन क्रिया) कर पुनरपि अपने कार्यमें प्रवृत्त हुवा

अहाहा! सदुपयोगी शिष्य हो तो ऐसाही हो जिसे अङ्गुली निर्देश तक करने की आवश्यकता नहीं हुई तो वैखरी भाषा (जिन्हासें प्रकट तया बोलना) द्वारा कहनेका तो कथन ही क्या? जो बुद्धिमान व कुलवान है और जिसने गुरुकुल सेवन किया हुवा है वे बाह्य चेष्टाओंसें ही मानसिक परिणामोंका अनुमान कर लेते है नीतीकारने भी हृदयस्थ परिणाम जाननेके इसप्रकार लक्षण दिखाए हैः-

(श्लोक.)

आकारै रिङ्गितै र्गत्या । चेष्टया भाषणेन च ॥
नेत्र वक्त्रविकारेण । लक्ष्यते ऽन्तर्गतं मनः ॥ १ ॥

अर्थः—आकार, इङ्गित, गति, अङ्ग चेष्टा, वचन, चक्षुविकार, और मुख-विकार, इन सप्त लक्षणोंसे मानसिक परिणाम जाने जाते है

विवेचनः-१आकारः—अङ्गाऽऽकृती यानी जैसें दक्षीण हस्त पर मस्तक को नीचा झुकाया हुवा देखकर यह ज्ञात होना कि किसी चिन्तासमुद्रमें डूब रहे है उसें आकार कहते है

२ इङ्गितः—मनविकार यानी उपदेश अन्यको देना है और कहते अन्यकों हैं जैसें भाईने कोई वस्तु गुमा दी उसका उसें न कहते हुवे पुत्रसें कहते है कि तूँ बडा निरोपयोगी है घरका कुछ भी फिक्र नही कभी कुछ कभी कुछ नुकशान कर देता है ऐसे घरका निभाव किस तरह हो सकेगा इत्यादि उपदेश देकर भ्राताकों जताया बंधु भी यह समझ गए कि कहते इसकों हैं किन्तु नाराजगी मुझपर है इस प्रकार विदित होना उसे इङ्गित कहते हैः—

३ गतिः—चाल यानी किसीकों मंद चालसें चलते हुव यह पहिचानना कि इसके शरीरमें कुछ व्याधि है या शारीरिक शक्ति हीन हो रहा है उसे **गति** कहते है

४ चेष्टाः—अङ्ग विकार यानी जैसें अङ्गुलीसे ओष्ठोंकों मलते हुवे देखकर प्यासका मालुम होना उसें **चेष्टा** कहते है

५ भाषणः—वचन यानि शब्दश्रेणी अन्य है और अर्थ कुछ अन्य है यथा अहा ! तुमारे जुआका व्यसन बड़ाही प्रशंसनीय है सारा जगत तारीफ करता है धन्य है ! तुम्हे वारवार धन्य है ! इस प्रकारके कथनसे शब्दार्थाऽनु-सार तो श्लाघनीय ही प्रतीत होता है किन्तु इसमें व्यङ्ग निंदाका निकलता है गरज़की सामान्य शब्दोंमें से व्यङ्गर्थया ध्वन्यर्थ जानना उसे **भाषण** कहते है

६ नेत्रविकार—चक्षु विकार यानी जिस तरह नेत्रोंकों तेज (रक्त) देख यह जानना की इस वख्त कुपित हो रहे है इसें **नेत्र विकार** कहते है

७ वक्रविकारः—मुख विकार यानी किसी बातकों सुनकर मुख विगाड़ देना उससें यह जाहीर होना कि इस विषयसें इन्हे पूर्ण ग्लानी है इसें **वक्र विकार** कहते है

शायकालके प्रतिलेखनका समय आते ही अपने स्वा यायसें फारिक हो-कर गुरु महाराजकी व अपने वस्त्रोंकी पडिलेहणादि क्रिया प्रातःकालाऽनुसार की पश्चात् पमावश्यक सानद आराधन किये

प्रतिक्रमण करनेके पश्चात् गुरु सेवामें तत्पर होकर यह प्रार्थना करता है कि हे भवतारक ! यह चरणोपासक आपके पदपङ्कजोंकी सेवाकर अपने कायाकों पवित्र करनेकी तीव्र ऽभिलाषा कर रहा है अनुकम्पया आज्ञा ब-क्षीस करनेका अनुग्रह फरमावें सुनते ही इन मधुर वचनोंके गुरु महाराजने सानद आज्ञा बक्षीस की अब वह सुविनीत जिसके हृदयमें उमङ्ग लहोरों उछल रही है भक्तिमें तल्लीन हुवा

उसके हस्तकमल ऐसे मुलायम थे कि अकनूलकी रूई भी शर्माती थी, गुरु महाराजके चरणकमलोंकी इस ढगसे सेवा करता था कि उनका प्रत्येक अवयव खिल उठता था इस प्रकार सेवामें आसक्त होकर दिव्य द्रव्यानुयोगके गहन विषयकी वार्तालाप करता हुवा सुख पूर्वक काल निर्गमन करता है अखीरमें गुरु महाराजके पवित्र चरणोंमें मस्तक नमन कर दोनो हाथ जोड विज्ञप्ति करता है कि हे नाथ ! बहुत दिनोंसे यह दास एक आवश्यकीय विनंती करनेकी अभिलाषा कर रहा है किन्तु भाग्य हीनतामें ऐसा कोई सुअवसर न मिला कि जिससे मे अपनी इच्छा पूर्ण कर सका आज अनंत पुण्याईका उदय है कि मुझे वह सौभाग्य प्राप्त हुवा यादि आज्ञा हो तो निवेदन करूं गुरुमहाराजने फरमाया निशंकतया सानंद प्रकाशित करो हुकुम पातेही "तहत्तस्वामी" कहकर वह परहितैषी विनयशील प्रार्थना करता है:-

पूज्यपाद गुरुवर्य ! अपनी पवित्र समुदायमे कितनेक अविवेकी साधु साध्वी ज्ञानद्रव्य तथा साधारण द्रव्य अपनी जिम्मेदारीमें रखते प्रतीत हो रहे है और इसही वजहसें कितनेक सेठ साहूकारोंके यहा उनके नामके खाते पड़े हुवे है ऐसा भी सुना जाता है इस प्रकार प्रवृत्ती बिगड़ते हुवे वे खास परिग्रह धारी होजांयगे ऐसी सम्भावना है इसलिये हेभवोध्दारक ! इस दुर्गति दाता दुष्ट प्रणालीकों शीघ्र ही उन्मूल कीजियेगा

गुरुमहाराजः—हे विनयशील ! तेरी परोपकारी प्रशंसनीय बुध्दिके प्रति हम सहानुभूती प्रदर्शित करते हुवे यह सुचना करते है कि वे साधु, साध्वी किस प्रकार द्रव्यसें ससर्ग रखते है इमें स्फुटतया प्रकाशित कर

शिष्यः—हे दयार्णव ! आप सर्व वेत्ता है आपके सन्मुख विस्तीर्णरूपसें कथन करना मेरी नादानी है किन्तु तदपि आपकी आज्ञाकों शिरोधार करता हुवा सविनय किञ्चित प्रार्थना करता हूँः—

कइ एक ज्ञानके लिये जैसेंः—पाठशाला, लायब्रेरी, ग्रन्थ छपवना, ग्रन्थ लिखवाना, ग्रन्थ खरीदना वगेरा तथा साधारणके वास्ते उपदेश देकर रुपे इखट्ठे करवाते हैं उनका हिसाबादि सर्व अपनी निगरानीमें रखते हैं तथा उनकी

आज्ञा बगैर एक पाड भी इधर उधर नहीं हो सकती और कइ एक लोग जिस वख्त श्रावक श्राविकाओंको टीका देते हैं उस वख्त उनका जितना बचा हुवा द्रव्य हो उसे ज्ञान खाते या साधारण खातेमें किसी मौज़ीज सख्के यहाँ अमानत (Deposit) रखवा देते है उस द्रव्यको अपनी इच्छाऽनुकूल खर्च करवाते है उनके आज्ञा बगैर कोई भी किसी स्थानमें नहीं लगा सकता इस प्रकार सैकड़ों रूपै डिपाजिट रहे हुवे है जिसका यथावत् सिबूत पहूँचानेको मैं सदैव कटिबद्ध हूं हे नाथ ! सुज्ञेषुकिमधिकम्.

यह वज्र घावसा विषय श्रवणकर गुरुमहाराज अति दिलगीर हुवे और पृथक् २ स्थानोंमें निवास किय हुवे अपने समस्त साधु, साध्वीको इकत्रित होनेकी आज्ञा प्रकाशित की

शिष्यः—“प्रमाणवचन” कहकर प्रार्थना करता है कि हे स्वामिन्! सथारा पोरसी (शयनके टाइमकी क्रिया) का समय आन पहूँचा है

गुरुमहाराजः—हाँ सथारा पोरसी भणकर विश्राम करो

आज्ञा पाते ही शिष्य गुरुमहाराजके साथ सथारा पोरसी पढकर अपनी पथारी (Bedding) ऐसे स्थानपर की कि जो गुरुमहाराजसें ऊंची और समान न थी किन्तु नीचे स्थानपर शयन करता जहाँ कि गुरुवर्यको किसी प्रकार आशातना नही हो सके अब यह शिष्य अपने आसनपर बैठा हुवा यह राह देख रहा है कि गुरुमहाराज शीघ्रही शयन करें तो मै भी सो जाऊं गुरुमहाराज कुछ टाइमके बाद अपनी ध्यान क्रियासें निवृत्त होकर निद्रावश हो गए शिष्य गुरु महाराजको शयन किये देख शीघ्रही अपनी पथारी पर जाकर विश्रामित हुवा

द्वितीय दिन विनयशील शिष्यने हुकुम पाकर नियमाऽनुकूल सर्व स्थानो पर आमन्त्रण भेज दिय जिसके जरिये समुदायके कुलश्रमण, आर्या उस विराजपट्टन शहरमें समाप्त हुवे

इस अवस्थामें पूज्य उपकारी आचार्य महाराजने सकल शिष्य, शिष्याओंको मध्याह्नकालमें एक बजे हाजिर होनेका हुकुम बक्षीस किया सर्व लोगोंने शिरोधार कर नियमित समयपर चरण सरोजमें प्रवेश किया।

सज्जनो ! यह श्रमण सम्मेलन खानगी (Private) ही था चूंके गुप्त व्यवहार यह उपदेश करता है कि किसीके सत्कारमें त्रुटी न पहूचते हुवे यदि उसका भला हो जाय तो उत्तम है

प्रथम ही प्रथम विनयशीलने सर्व सम्मेलनको यह विज्ञप्ति की:—

आप सर्व महानुभाव दूर २ देशान्तरोसें अनेक कष्ट सहन कर गुरुसेवामें पधारे है इसका मैं शतसः धन्यवाद समर्पण करता हुवा यह निवेदन करता हूँ कि अपने परमोपकारी विशाल ज्ञानी प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुमहाराजने एक अनुपम लाभके निमित्त आप सर्व सहावानको उत्तम सौभाग्य प्राप्त करवाया है इससे आप अपना अहोभाग्य समझते हुवे आचार्यश्रीके पवित्र वचन श्रवण कर अपनी आत्माका कल्याण कीजियेगा तदनन्तर—

गुरुमहाराजः—अहो मेरे समस्त गुणानुपासको ! यह जिनेश्वर प्रभुका पवित्र वेश अनंत पुण्याईसें संप्राप्त हुवा है जो प्राणी निर्मलतासें पालन करता है वह अचिरात् मोक्ष पदके अनंत सुखोको अनुभव करता है और जो सद अपने महा व्रतोंमें दोष लगाकर पवित्र चारित्रको मलीन करता है वह आज्ञा विराधक भव २ में असह्य दुःखसें दग्ध होता है आप महानुभाव इतना फरमाकर शान्तरसमें विश्रामित हुवे

यह शब्द सुनते ही सर्व सम्मेलन चौंक पडा और दीनमुख होकर दोनो कर जोड़ मस्तक नमन करता हुवा यह प्रार्थना करता है:—

सम्मेलनः—हे दयासागर! हम अज्ञानियोंको आपका अल्पाक्षरी, बहूर्थीय सदुपदेश स्फुटतया समझमें नही आया, हमारा हृदय भीतरसें तड़फ रहा है कृपया खुलाशा तौर पर फरमाईयेगा

गुरु महाराजः—महानुभावों ! हमने यह श्रवण किया है कि पाठशालादि समस्त तथा दीक्षा अवसरमें ज्ञान खाते तथा साधारण खाते किसी साहूकारके यहाँ द्रव्य अमानत रखाते हो पश्चात् अपनी इच्छानुसार खर्च करवाते हो; यह सत्य है क्या ? इत्यादि विनयशील शिष्यने जो कुछ प्रार्थनाकीथी उसें खुलाशा तौर पर फरमान किया

सम्मेलनः—"दीन हीन होकर धूजता हुवा यह प्रार्थना करताहै" हे प्राणाऽऽधार ! धर्मावतार ! ! भवोध्धारक कृपावतार ! ! ! हम मुँह दिखलाने योग्य नही, हम वचन उच्चारण करने लायक नही, हमें चुल्लूभर पानीमें डूब मरना बहेतर है आप हमारे मनोगत भावको जाननेवाले तरण तारण नाथ है बस इतनेमें ही सर्व समझ लीजियेगा

गुरु महाराजः—अहो देवानुप्रिय ! तुमारे दीन वचनो पर मुझे बडी ही दया आती है लेओ जरा दो शब्द सुनकर अपनी आत्माकों पवित्र करो

इस दुनियामें मुख्य दो वस्तु ही महा अनर्थकारी है एक कनक द्वितीय कामनी जिसने इन दोनोंका संसर्ग मात्र छोड दिया है वे उत्तमोत्तम आचरण कर सकते है, वीर शासनका विजय करनेमें सामर्थ्य होसकते है तथा सांसारिक झगडोंसें तटस्थ होकर अपनी आत्माका कल्याण कर सकते है यद्यपि तुमलोग उसें अपने पासमें नही रखते न अपने खानपानमें लाते हो किन्तु उसका संसर्ग मात्रही जगत निन्दनीय व विश्व तिरसकरणीय है इसलिये मेरे प्यारे आत्मार्थियों ! इस दुष्ट रिवाजकों नासिका मलवत् त्यागकर पट्माख द्वार प्रत्याख्यान अङ्गीकार अपने मानव भवकों कृतार्थ करो

सम्मेलनः—"इस रिवाजकों आचरण करनेवाले समस्त साधु साध्वी" दोनो करजोड मस्तक नमन करते हुवे यह प्रार्थना करते हैं—हे दीनानाथ ! हम सर्व लोग आपकी पवित्र आज्ञाकों शिरोधार कर सदर्प प्रतिज्ञा अङ्गीकार करनेकों तत्पर हैं

गुरुमहाराजः—अपनी अगाध कृपाद्वारा इस प्रकार प्रत्याख्यान फरमाते हैं:—

(प्रत्याख्यान)

अरिहन्तसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहूसक्खियं, देवसक्खियं गुरुसक्खियं, अप्पसक्खियं धारणा प्रमाणे अन्नथणा भोगेणं, सहस्सागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसम्माहिवत्तियागारेणं वोसीरई.

सम्मेलनः—वोसिरामि-

गुरु महाराजः—महानुभावों ! इस प्रत्याख्यानकी भाणोंसें भी अधिक यत्ना करना इन षट् साखोमें से एक भी साख तौडनेवाला जीव अनेक भव भ्रमण करता है तो समस्त उल्लङ्घन करनेवालेका कथन ही क्या ? इसलिये दृढ श्रद्धायुक्त पालनकर अपने जीवनकों सार्थक करना

सम्मेलनः—हे करुणानिधे ! जो प्राणी अपने गुरुमहाराजसे विपरीत चलता है वह जिनेश्वरकी आज्ञाका विराधक समझा जाता है और इस भवमें डुराचारोंसे कलङ्कित होकर निन्दनीय श्रेणीमे शुमार किया जाता है तथा परभवमें दुर्गतिमे जाकर दुःसह दुःखोसे दग्ध होता है हे तीर्थस्वरूप ! आपकी अक्षरशः अनुज्ञा हमारे सदैव शिरोधार है आपसदृश भवोद्धारक गुरुमहाराजका शरण भवोभव होना यही आन्तरिक भावना है हेप्रकारण बन्धो ! ऐसे घोरातिघोर प्रायश्चितसें विमुक्त करना आपहीके हस्तगत है

गुरुमहाराजः—ज्ञानियोंका यह फरमान है कि त्रैलोक्यमें गुरुमहाराजके सदृश कोई उपकारी नहीं है इसलिये जहाँ तक मुमकीन हो तहा तक उनकी भक्तिमें लीन होना चाहिये ज्यों २ तुम लोगोंकी भक्ति बढती जायगी सों २ अपूर्व गुण प्रकट होते जायगे ज्ञान, तत्व और सकल श्रुता गुरु सेवसें ही प्राप्त हो सकती है तुमारे भद्रिकताकी तर्फ हम सहानुभूति दिखलाते है कि तुम लाग बडे ही सुयोग्यहो कि दुर्व्यवहा रों नासिका मलवत् स गकर गुरु आज्ञाको प्रेम पूर्वक शिरोधार किया

सम्मेलन'—हे गुणाधि ! हम तुच्छ बुद्धिधरों की जो आपने प्रशंसा की यह केवल आपके बड़प्पनका ही परिचय है; हम किसी प्रकार योग्य नही है किन्तु सच है ! गुणी पुरुष गुणके ही ग्राहक होते हैं

गुरुमहाराजः—प्यारे आत्मार्थियों ! गुरुदेव सदैव तुमारा कल्याण करें

इस प्रकार विश्व प्रशंसनीय विजयको प्राप्त हुवे और सर्व साधु, साध्वी आचार्य महाराजकी आज्ञानुसार पृथक २ क्षेत्रोंमें आनंद पूर्वक विहार कर गए

एक दिनका जिक्र है कि गुरुमहाराज गोचरीको पधारे उनके साथ वह विनयशील शीष्य जो आहारके पात्र लेकर पूज्य आचार्य महाराजके साथ हो गया मार्गमें इस तमीजके साथ चलता है कि नतो आगे, न बरोबर ओरन पीछे अर्थात् पीछे इस प्रकार चलता है कि जिससे किसी प्रकार आशातना न हो यहां तक कि उसके पेरोंकी उडी हुई रज भी गुरुमहाराजको स्पर्श नही कर सकती थी इस प्रकार क्रमशः श्रावकके घरपर पहुँचे

पूज्य आचार्य महाराजने ४२ दोष टालकर उचित अहार ग्रहण किया जिसकी पवित्र विधि ग्रन्थ गौरवके भयसें यहाँ पर उध्धृत करनेको मजबूर हैं केवल इतना ही निवेदन करते हैं कि जिस वख्त गृहस्थ वहेराताथा (आहार देताथा) उस वख्त शिष्य अपनी झोली (पात्र रखनेका वस्त्र) से पात्र निकालकर गुरुमहाराजको समर्पण करता वे अपनी इच्छाऽनुसार भोजन वहेर लेते शिष्यके पास पात्र होने पर भी वहेरती वख्त गुरु महाराजको अर्पण करना यह गुरु सत्कार है

इस प्रकार गौचरी लेकर अपने उपाश्रयमें पधार गए गोचरी करने वगेराकी शेष विधि पूर्ववत्

एक दिनका प्रस्ताव है कि उस विनयशील शिष्यको बुलाकर गुरुमहाराजने आज्ञा फरमाई कि हे वत्स ! पाँच सात साधुओंको लेकर पवित्र मालव देशमें विहार कर जाओ वहाँपर अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे श्री संघका उपकार करो और वीरशासनका उद्योतकर अपने श्रमण पदको सार्थक करो ।

इस हुकुमको सुनते ही शिष्य सविनय प्रार्थना करता है:—

शिष्यः—हे करुणारस भण्डार ! कौन ऐसा पुण्यहीन है कि जो अपने दिव्य उपकारी गुरुमहाराजसें विरह चहाता हो किन्तु आप नायकी आज्ञाको पालन करना यह मेरा मुख्य कर्तव्य है इसही लिये आपकी आज्ञानुसार विहार करनेको मै हाजिर हूँ

गुरुमहाराजः—मेरे प्यारे आज्ञानुयायी ! अमुक २ साधुओंको साथ लेकर कल विहार कर जाना

शिष्यः—आज्ञा प्रमाण.

द्वितीय दिन ठीक प्रातःकालमे ही तैयार होकर मय अन्य मुनियोंके गुरुचरणोंमें हाजिर हुवा सादर वंदना नमस्कार करनेके पश्चात् दोनो करजोड यह प्रार्थना करता है:—

हे मम प्राणाधार पूज्य गुरुमहाराज ! आज मुझे आपके चरणोंका विरह होता है जिस असह्य दुःखको में किसी कदर सहन नही कर सकता; हे स्वामिन् ! यह मनमोहन शान्त, छबीके मुझे कब दर्शन होंगे; हे प्रभो ! मुझे इन पावन चरण सरोजकी सेवा कब प्राप्त होगी हे नाथ ! मुझे इन पवित्र चरणोंका वारंवार शरण हो आपकी जिस प्रकार अनुपम कृपा है इससें दिन दुगुनी और रात चौगुनी बनानेका अनुग्रह फरमावे. हे दयासागर ! आपकी शुभ दृष्टिसें मेरा सदैव कल्याण है इत्यादि नानाविध भक्तिभाव प्रदर्शित किया

गुरुमहाराजः—प्यारे चरणोपासक ! यदि तूं हजार कोश भी दूर है और तेरा हृदय भक्तिरसमें भरा हुवा है तो तुझे यथावत् फल हासिल हो सकता है यथाः—

(दोहरा)

जलमे वशे कमोदनी । चंदा वशे अकाश ॥
जो जाहूके मन वशे । तो ताहूके पास ॥ १ ॥

पुनरपि आप पूज्य आचार्य महाराज फरमाते हैं:—ये जो तेरे साथ अन्य मुनिजन हैं इनकी जिस तरह हम प्रतिपालन करते हैं उसही तरह तुम विश्वासें रखना यह खास सूचना है उधर उन मुनियोंको यह फरमाते हैं:—प्यारे मुनियों! तुम इस विनयशीलकी उसही प्रकार सेवा करना कि जैसी मेरी करते हो और मुझे जिस पूज्य दृष्टिसें तुम अवलोकन करते हो इसही प्रकार इसें समझना आदि उपदेश देकर सबको यह फरमाया कि:—समय आन पहूँचा है सानद विहार कर जाओ गुरुदेव सदैव तुमारी विजय करे

सुनते ही इस पवित्र आशिर्वादके वे सर्व मुनिराज सहर्ष विहार कर गए.

ग्रमाऽनुग्राम अनेक क्षेत्रोंमें भव्य जीवोंका अनुपम उध्दार करते हुवे क्रमशः अवन्तिकापुरी (उज्जैन) में पदार्पण किया वर्षाकालिक चातुर्मास शाघ्र ही अपने अवस्थानमें प्राप्त होनेकी इच्छा कर रहाथा, इस अवशरमें वहांके निवासी धर्मानुरागी श्रावक, श्राविकाओंने चातुर्मासके लिये अनहद विनती की जिस पर आपने यह फरमाया कि अगर गुरुमहाराजकी आज्ञा होगी और हमारी क्षेत्र स्पर्शना बलवान् है तो हमें कोई उजर नहीं

जैन मुनिराजका इतना कथन ही गोया उनकी मानसिक कबूलात है जो कि वर्त्तमान वचनोंसें सम्यग् विज्ञात हो सकता है निश्चय कथन करना यह जैनागमका फरमान नहीं चूंके छद्मस्थ लोग भावि फलका निश्चित स्वरूप नहीं जान सकते

समस्त नाग्रिक जैन भक्तोंने पट्टन शहर जाकर गुरुमहाराजसें अनेकविध प्रार्थना कर चातुर्मासकी आज्ञा हासिल की

गुरुमहाराजने यह फरमाया कि यदि उसकी क्षेत्र स्पर्शना है और सर्व तरह सुभिता हो तो हम सहर्ष इजाज़त बक्षीस करते हैं संघ इस अनुज्ञाकों हाँसिलकर अपने स्थानपर वापिस लौट गया.

इधर उस विनयशील नामक मुनिराजने चातुर्मासके निमित्त अपने गुरु महाराजसें इस प्रकार प्रार्थना भेजी:—

हे करुणारस भण्डार ! वर्षाकालिक चातुर्मास दौड़ता हुवा निकट आ रहा है और यहांके श्री संघकी भक्ति लायकतारीफ के है तथा विनति भी जोरशोरसें कर रहे हैं एवम् शासनोद्योतकी भी पूर्ण संभावना है ईसलिये सविनय प्रार्थना है कि इस अवन्तिकापुरीमें चार मास निवास करनेकी आज्ञा बक्षीस फरमावें इस हमारी दीन प्रार्थना पर गोर फरमाकर जो कुछ मुनासिव समझे शीघ्रही सूचितकर आभारी बनाईयेगा ताके हमें आगामी व्यवस्थाका अनुभवहो.

इस विनयरससें भरी हुई प्रशंनीय प्रार्थनासें विज्ञात होकर उत्तरमें इस प्रकार सानद आज्ञा बक्षीस फरमाते हैः—

तुमारी विनयोद्योतक प्रार्थना संप्राप्त हुई उत्तरमें सूचित करते है कि अगर तुमे वहांपर सुख पूर्वक निवास करना सम्भव हो तथा पठन, पाठन तप जप, ध्यानादि निराबाध होसके और आबहवा अनुकूल एवम् शासनोद्योत उत्तम तौरसें होनेका पूर्ण विश्वासहो तो हम सानद आज्ञा बक्षीस करते हैं और सूचित करते है कि शासनाऽधीश्वर श्री वीर परमात्माके शासनकों तथा आसन्नोपकारी गुरुमहाराजके पवित्र नामकों देदिप्य करना यह खास सूचना है.

इस प्रकार आज्ञा पानेपर आप मुनि रत्नने चातुर्मास कर श्री संघ पर अगाध उपकार किया जो कि सदैव स्मरणीय है इसही तरह कितनेक वर्ष मालवदेशमें खूब परियटन कर विविध स्थलोंके श्री संघका अनुपम उद्धार करते हुवे क्रमशः मरुस्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (वीकानेर) में अपने पूज्य गुरुमहाराजकी सेवामें प्रवेश हुवे- गुरुभक्तों ! इस वख्तके समागमका आनंद अनुभवी लोग ही जान सकते है अब आप पूर्ववत् अपने सकल कृत्यमें संलग्न हुवे

वर्त्तमानके अधिकांश शिष्य वर्गका विनय गुण एक विचित्रही लीला प्रदर्शित कर रहा है जो कि पब्लिकमें जाहिर है तदापि प्रकरणवशात् इतना अवश्य कहूँगा कि आज्ञानुसार कार्य करनेका दावा रखनेवाले ऋजुप्राज्ञ यहीं तक गुरुमहाराजकी आज्ञाकों सहर्ष सादर शिरोधार करते हैं कि जहाँ-

तक उनके मनशाके मुताबिक वर्त्ताव कीजावे यदि किसी समय वास्तविक व हितकारी इस प्रकार आज्ञा वर्त्ताव कीजावे कि जो उनके रुचिसें प्रति-कूल है तो घड़ाकसें मूंह मोड अनेक कुयुक्तियों द्वारा अपनी अपूर्व भक्तिका अलौकिक दृश्य दिखलाते है

मेरे प्यारे गुरु भक्तों! आपकों इस छोटेसें "गुरु शिष्यका अपूर्व दृश्य" दृष्टान्तसे यह सम्यग् विदित होगया होगा कि वह विनयशील एक कैसा अपूर्व गुणधारी था आचार्य महाराजके अन्य अनेक शिष्य थे किन्तु यह सबमें अधिक भाग्यवान था इसही प्रकार शिष्य वर्गकों अपने भवोद्धारक गुरुमहाराजका विनय करके निज अपने मानव भवकों सफल करना चाहिये

जब तक हमारे उन पूज्य गुरुमहाराजने शिष्यावस्थामें निवास किया तब तक विनयशील शिष्यके अनुसार उत्तम विनयका आचरण करते थे नहीं य इतना ही नहीं किन्तु इससें भी कइ गुणे अधिक विनयरससें आपका हृदय अपूरित था और जब की आप गुरु पदकों सुशोभित करते थे तब पूर्वोक्त आचार्य महाराजके सदृश दयासागर थे अहाहा! आप गुरुदयालका विनय गुण विश्व प्रशंसनीय व अनुकरणीय है.

९ वैयावच्च:—किसी धर्मात्मा पुरुषकी सेवा करना अर्थात् शुश्रुषा करना उसें वैयावच्च कहते हैं

आप परम भक्त महानुभाव अपने गुरुमहाराजकी, मुनिरत्नोंकी ग्लानियोंकी तपस्वियोंकी और नूतन शिष्य वर्गादिकोंकी अहार, पानीसें, शरीर शुश्रुषासें तथा मलिलेहनादि क्रियाओंसें दत्तचित्त होकर इस प्रकार भक्ति करतेथे कि जिसका अनुकरण करनेसें प्राणी दृढ भक्तिवन्त हो सकता है

महानुभावो! शास्त्रकारोंने दस प्रकारकी वैयावच्च फरमाई है तद्यथा:—

(गाथा)

आयरिय उवाझाएथेर । तवस्सी गिलाणसेहाण॥
साहम्मी कुलगणसंघ । वैयावच्चं हवईदसहा ॥ १ ॥

भावार्थः—१ आचार्यः–जिससें धर्म प्राप्त हुवा हो उसकी सेवा करना २ उपाध्यायः–जिससें विद्या अभ्यास किया हो उसकी भक्ति करना ३ स्थविरः–ज्ञानवृध्द, पर्यायवृध्द और वयोवृद्ध इन तीनोंकी खिदमत करना ४ तपस्वीः–तपस्या करनेवाले महात्माकी सुश्रुषा करना ५ ग्लानः–बीमारोंकी वैयावच्च करना ६ सेहाणः–नवीन दीक्षित मुनिको यथोचित सेवा कर चारित्र रङ्गमें गाढ रङ्ग देना ७ स्वधर्मीः–अपन जिस प्रणालीसें जिस धर्मको पालन करते है उसही नियमाऽनुकूल धर्मको आचरण करनेवालेकी परिचर्या करना ८ कुलः–एक कुलका जैसें चन्द्रादि कुलवालेकी उपासना करना. ९ गणः–एक गणवाले जैसे कोटिक प्रमुख गणधारीकी भक्ति करना. १० संघः–समुदायकी सुश्रुषा करना.

उपरोक्त दश प्रकारकी वैयावच्चसें भी अनेक सेवाएं है किन्तु ये मुख्य और अवश्य आचरणीय है. वैयावच्चके ही अतुल प्रतापसें बाहुबल स्वामीको इस कदर भुजाबल प्राप्त हुवाथा कि भरत चक्रवर्त्तिको पाञ्चोंही युद्धोंमें परास्त किये

चक्रवर्तिके अतुल पराक्रमका एक छोटासा नमुना पाठकोंकी सेवामें दाखिल करता हूँ कि जिससें वैयावच्चका ठीक फल विदित हो जायगा

जब भरत चक्रवर्त्ति सर्वसें बलवान् म्लेच्छ देशको विजय कर वापिस लौटे तब समस्त सेना अपने दिलमें अभिमान करने लगी कि हम बड़े ही सूरवीर है कि ऐसे दुर्जय म्लेच्छ देशको सर कर लिया इस व्यवस्थाको जान भरत महाराजने विचारा कि चक्रवर्ति पदकी अनत पुण्याईको न समझ सर्व सेना अहंकारमें चकचूर होरही है इस लिये अपने पराक्रमका कुछ चमत्कार बतलाना चाहियेः—

त महाराज एक आसन पर बैठ दाहिने हाथमें पान लिये हुवे मुखके
करके अपनी समस्त फोजकों यह हुकुम फरमाते हैं:—

हो मेरी समस्त सेना! आज तुमे एक कौतुक दिखलाते हैं तुम एक
लम्बा शृङ्खला, लेआकर मेरी कनिष्ठा अङ्गुली (चट्टी अङ्गुली) में ठीक
कर बाधदो और समस्त चतुर्ङ्गी सेना अपनी सम्पूर्ण ताकत द्वारा खींचो

आज्ञा पाते ही ३२ हजार मुकुटबंद्ध राजा एक क्रोड पैदल ८४ लक्ष
८४ लक्ष घोडे ८४ लक्ष रथादि समस्त क्रमशः उस श्रृँखलामें जुडकर
ी अशेष शक्तिद्वारा आकर्षित की किन्तु वह अङ्गुली मनागपिनमुडी इस
रमें भरत महाराजने पाननोश करनेके लिये आहिस्तेसें जरा हाथकों
झुकाया कि समस्त सेना दडादड जमीन पर आगिरी इस अपूर्व पराक्र-
देख सम्पूर्ण सेना चमक उठी और उनका अहंकार जयनीत होकर
तलमें डूब गया कहनेका तात्पर्य यह है कि भरत चक्रवर्ति ऐसे बलवान्
पर भी बाहुबल स्वामीने पराजय किये यह वैयावृत्तका ही विशाल
ाव है

कइ एक साधु साध्वी लौकिक लज्जासे या स्वार्थमय होकर अपनी
पूर्व भक्तिका अलौकिक दृश्य दिखलाते हैं वह ढारपर नीपनरूप फलकों
नेवाली समझना चाहिये वे कृपावतार तो एक वार नहीं सो वार फिरकर
चित आहार पानीकी योगवाई करते तथा प्रति लेखनादि उनके मरजीके
नुकुल कर उन्हे प्रसन्न करते थे तथा शरीरकी शुश्रुषा (चापना दवाना)
ी इस प्रकार करते थे कि उनकी कलो २ खिल उठती थी इस प्रकार दि-
लोजानसें भक्ति करते थे कहां तक कहा जाय आपका वैयावच्च गुण सर्वा-
ऽऽदरणीय है

(१०) स्वाध्यायः—स्वकीय पठन पाठनादिकों स्वाध्याय कहते हैं
वे पूज्य गुरु महाराज पञ्च प्रकारीकी स्वाध्यायकर अपने कर्मपटलकों दूर
हटाते थे तद्यथाः—

(गाथा)

वायणा पुच्छणाचेव । तहायपरि अट्टणा ॥
अणुप्पेहा धम्मकहा । सझाओ होई पंचहा ॥ १ ॥

अर्थः—१ वाचना २ पृच्छना ३ परिवर्त्तना ४ अनुपेक्षा ५ धर्म कथा. इस तरह पाच मकारकी सझाय कही जाती है

विवेचनः—१ वाचनाः–किसी योग्य पाठक के पाससें पढना तथा स्वयं ग्रन्थ अवलोकन करना एवम् किसीकों उपकार बुध्दिमें पढाना. २ पृच्छनाः–किसी स्थलपर किसी विषयमें यदि संदेह होजाय तो गुरुमहाराजसें अथवा ज्ञान स्थविर वगेरासें पूछकर निर्णय करना. ३ परिवर्त्तनाः–पूर्वमें पढ़े हुवे ग्रन्थोंकी पुनरावृत्ति करना ४ अनुपेक्षाः–अर्थ चिन्तन करनाः ५ धर्म कथाः–अनेकविध धर्मोपदेश देकर अन्य प्राणियोंका उध्दार करना

वे अप्रमत्त गुरुवर्य उपरोक्त पञ्च प्रकारकी उत्तम स्वाध्यायकों सम्यग् आचरण कर अपनी आत्माका उध्दार करते हुवे अन्यात्मा पर अविस्मरणीय उपकार करते थे जिसकी प्रकरणवशात् बहुत कुछ महिमा ज्ञान विषयमें लिख आए है. आप स्वाधायके एक श्लाघनीय सुरसिक थे

(११) ध्यानः–मनके एकाग्र अवलम्बनकों अथवा सम्यक् चिन्तनकों **ध्यान** कहते हैं

आप योगीश्वर आर्त्त, रौद्र ध्यानकों हटाकर धर्म ध्यानकी दृढ आराधन करतेथे और यथाशक्ति शुक्ल ध्यानकी तीव्र खप करते थे ग्रन्थ गौरवके भयसें चारो ध्यानका खुलासा न करते केवल धर्म ध्यानकी ही व्याख्या रूबरू करता हूँः—

धर्म ध्यानके चार भेद होते हैं, तथाहीः—

(चौपाई)

आज्ञा विचय प्रथम दिलधार
द्वितीय अपाय विचय सुखकार ॥
विपाक विचय तीजा गुण धार
संस्थान विचयमें जय २ कार ॥ १ ॥

(१) आज्ञाविचयः—वीतराग देवकी आज्ञामें चिन्तन करना यथाः— हे आत्मन् ! देवादि देव तीर्थंकर प्रभुने षट् द्रव्य, नौतत्व, सप्तनय, चारनिक्षेप, सप्तभङ्गी, उत्सर्ग, अपवाद, सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप, चतुर्दश गुण स्थान और स्याद्वादि स्वरूप द्वारा धर्म कथन किया है यह यथार्थ है सदैव तेरे आदरणीय व अनुकरणीय है यह पवित्र धर्म तुझे इस भवमें, परभवमें और भवोभवमें सुखकारी, हीतकारी और आनदकारी होगा ऐसे शुभ विचारोंमें तन्मय होजाना वह प्रथम भेद कहा जाता है

(२) अपायविचयः—कर्मोंके कष्टका विचारना यथाः—हे आत्मन् ! इस संसारमें कर्मोंके वश तू मलीन गिना जाता है तूं स्फटिक रत्नसें भी अधिक उज्वल है कषायादिकोंके कारण ही मलीन हो रहा है जैसें जलका निर्मल स्वभाव है किन्तु कचरा वगेरा गिर जानेसें मलीन कहा जाता है तथैव तेरी दशा हो रही है इसलिये जरा सावधानीको अख्त्यार कर और निज निर्मल स्वरूपमें रमण कर जिससे अपूर्व आनदरस प्राप्त होगा ऐसे शुभ चिन्तनमें तल्लीन हो जाना वह द्वितीय भेद कहा जाता है

(३) विपाकविचयः—कर्म भोगका अनुभव करना जैसें:—हे जीव ! तूं जितना ही सुख दुःख, हर्ष, शोक वगेरा देख रहा है यह सब कर्मराजकी विचित्रता है सुख आये जीवीतव्य वाँछता है दुःख आए मरण इच्छता है यह तेरा स्वभाव नहीं है जिस वख्त वेदनी या कोई आपत्ती प्राप्त हो उस वख्त तुझे २ शान्तता पूर्वक भोगना चाहिये क्योंकी बगेर भोगे तेरा हरगीज छुट-

कारा नहीं हो सकता तो फिर हाय २ कर क्यों म्बल्ल कर्मबंध करता है कौन ऐसा मुर्ख है जो उतरते हुवे कर्जमें दुःख मानकर उसें बढानेकी अभिलाषा करे एवं सुखके प्राप्त होने पर जी हर्षित नही होना चाहिये यह केवल पुण्य प्रकृतीका फल है जिसें अनंती वार प्राप्त किया तोभी कुछ इष्ट सिध्दि हासिल नहीं हुई तो ऐसे सुखमें आनंद मनाना यह भी तेरी एक मोटी भूल है इसलिये दुःखमें ग्लानी व सुखमें खुशियाली नहीं होना चाहीये तूँ तो वैसे सुखको अङ्गीकार कर कि जो अक्षय, अविनाशी और सदैव अखण्ड रूप रहनेवाले हों ऐसा शुध्द उपयोग लगाना उसें तृतीय भेद कहते है.

(४) **संस्थानविचय**—क्षेत्र सम्बन्धी विचार करना तथाहीः—हे अवधु! सात नरकके सात राज जिसमें एकसें एकमें अधिक दुःख रहा हुवा है* जिसकों कि सुनने मात्रसें हृदय धड़ २ ने लगता है तथा १८ सो जोजन तिर्यग्लोकमें एवम् उर्ध्द लोकमें द्वादशश देवलोक, नौलोकान्तिक, नौग्रेविक, पांच अनुत्तर विमान, सिध्द शिला और सिध्दस्थानादि अनेक क्षेत्र है इन सर्व क्षेत्रोंके अन्दर नैरइये रूप, तिर्यंच, मनुष्य, देव और निगोद रूप सर्व चतुर्दश राज लोकमें अनती वार पर्यटन कर आया है किन्तु अब तक संतोष पैदा नहीं हुवा इस लिये अब ऐसी उत्तम करणी कर कि जिससें पौद्गलिक समस्त पदार्थोंसे सर्वथा जुदा होजाय और अनंत सुखमय निर्मल सिध्द स्थानमें संप्राप्त होकर निरंतर आनंदरसमें निमग्न हो जाय—ऐसा पवित्र विचार करना, वह चतुर्थ भेद कहा जाता है

इस प्रकार धर्म ध्यानको ध्याते हुवे पदस्थादि चार ध्यानोका भी प्रशंसनीय आराधन करते थे जिसका किञ्चित्स्वरूप इस स्थलपर उध्दृतकर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँः—

(१) **पदस्थः**—अरिहन्तादि पञ्च परमेष्टिके निर्मल गुणोंका विचार करना तथाहीः—

*देखिये चतुर्गतिके दृश्यमें और अनुभवकर आत्माको उत्तम मार्गपर आरोपरण कीजिये

श्री अरिहन्त देव; ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार दुष्ट घनघातिये कर्मोंको विनाश करनेवाले तथा केवलज्ञान, केवल दर्शन और यथाख्यात चारित्रको धारण करनेवाले एवम् चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी और अष्ट महा प्रातिहार्य विराजमान-महागोप, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, जगद्वैद्य, तीर्थङ्कर, जिनेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, विश्वपते, विश्वोत्तम, जगन्नाथ, जगद्बन्धु, जगतारण, अशरण शरण, भवभय हरण, शिवसुखकरण, तरणतारण, वीतराग, धर्मोपदेशक, धर्मरत्नादि अगण्य गुणगणा विभूषित तथाः—

श्री सिद्ध परमात्मा जन्म मरण दुःखरहित, निरञ्जन, निराकार ज्योतिस्वरुप चिदानन्द, निसङ्ग, निरिच्छा, निष्कषाय, निष्काम, अखण्ड, शास्वत और अनन्त सुखोंमें तन्मय एवम्ः—

श्री आचार्य भगवान् सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी जेष्ठ, धीर, वीर, प्रवचनाधार, प्रवचन प्रकाशक, सारण, वारण, चोयण, पड़िचोयण कुशल तीर्थङ्करोपम, बहुश्रुत क्रियाधार, समयज्ञ, रसज्ञ, तत्वज्ञ, गच्छस्तम्भ पदधारी, शासनोन्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, सूत्रार्थधारी, ज्ञानयोगी, अनुभवयोगी आदि अनेक दिव्य गुणोपेत तथाः—

श्री उपाध्यायजी महाराज ज्ञान, दर्शन, चारित्र निधान, श्री आचार्य धर्म राजधानीमु प्रधान, सकल नय निक्षेप प्रमाणगर्भित द्वादशङ्गीवक्ता, उर्योधी शिष्य वर्गके सुबोधक, भव्यात्माओंके अशेष संशय निवारक, शिक्षक, दीक्षक, परीक्षक, श्रुतवृद्ध, परम पात्र, निर्मलगात्र, अप्रमादी, धर्मधुरंधर, धर्मावतार और सिद्ध साधक आदि बहु गुणवरिष्ट एवम्ः—

पवित्र मुनि महाराज शान्त, दान्त, महन्त, संयमी, ज्ञानी, ध्यानी, परिसह जीपक, क्षमादि गुणमंडल अप्रतिबद्धविहारी, रत्नावली कनकावली, मुक्तावली, गुणरत्न, सम्वत्सर प्रमुख दुष्कर तपाराधक, जिनाज्ञाराधक, सदैव उपासनीय, क्षमाभण्डार, दयासागर, तेजस्वी, यशस्वी, अतुल प्रतापी, शसि समान सौम्य, सायरसम गम्भीर, भारण्डवत् अप्रमत्त, कल्पवृक्षवत् परोपकारी, पृथ्वीसम सहनशील, परमवैरागी, उर्नयत्यागी, सकल गुणरागी, शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ, तत्वज्ञादि समस्त गुणगणालङ्कृत ऐसे परमपूजनीय इस प्रकार

इन पाञ्चों नवोत्पादक पवित्र पदोंके अखिल गुणोंका आराधन करना वह **पदस्थ** नामक प्रथम ध्यान कहा जाता है.

(२) **पिण्डस्थः**—शरीरमे रहे हुवे चेतनके गुणोंका विचरना यथाः-पदस्थ ध्यानमें अरिहन्तादि पञ्चपरमेष्ठीके जितनेही अनुपम गुण फरमाए हैं वे सर्व मेरी आत्मामें विद्यमान हैं किन्तु दुष्ट कर्मोंके आवर्णसें ढके हुवे सर्व अदृश्य होरहे है; दुर्धार कर्मपटलसेंही मेरे अपूर्व निर्मल गुणोंका प्रतिभास नही होता; इसलिये उपरोक्त पञ्च परमेष्ठिने जिन २ त्रैलोक्य प्रशंसनीय सद्-मार्गोंको आचरण किये है उनका मैभी अनुकरण कर अपनी आत्मको पवित्र करूं ऐसा निर्मल विचार करना; वह **पिण्डस्थ** नामक द्वितीय ध्यान कहा जाता है

(३) **रूपस्थः**—किसी आकार विशेषमें रहे हुवे आत्माके गुणोंको विचारना यथाः—मै कर्म वश शरीर धारण करनेके हेतु कभी निगोदिया, कभी नेरइया, कभी, पृथ्वी, अप, तेज, वाउ और वनस्पती कभी बेन्द्री, तेन्द्री, चौरिन्द्रि, असन्नी और सन्नी पञ्चेन्द्री; कभी मनुष्य और कभी देवतादि अनेक नामोंसें पुकारा जाता हूँ किन्तु वस्तुतः मैं एक अमूर्त्त निर्मल, अभेद, शुध्दता रूप चिदानंद तत्वामृत, असङ्ग, अखण्डादि गुण सहित सिद्ध स्वरूप हूँ-इस प्रकार चिन्तन करना; वह तृतीय **रूपस्थ ध्यान** कहा जाता है

(४) **रूपातीतः**—अरूपी निर्मल आत्माका विचार करना जैसेंः—यह चेतन अनंत ज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अनंत चारित्रमयी, अनत अव्या-बाध सुखमयी, अनंत सुखविलासमयी, अनंत अगुरु लघुगुणमयी, अनत अक्षय स्थितिमयी, अनत वीर्यमयी, अनाद्यनंत नित्यानंद, अविनाशी, अवेदी, अनु-पाधि, अजर, अमर, अव्यय, अकलङ्क, अरोगी, अक्लेशी, अयोगी, अचल, अमल, सहजानंदी, सहज स्वरूपी, पूर्णानंदादि अनंत गुणनिधान सिध्द स्व-रूप है इस तरह केवल आत्मगुणोंमें रमण करना यह चतुर्थ **रूपातीत ध्यान** कहा जाता है

आप मुनीश्वर इस प्रकार उत्तमोत्तम ध्यानकर अपनी आत्मांका क-ल्याण करते थे

(१२) उत्सर्गः—किसी पदार्थके त्यागकों उत्सर्ग कहते हैं, उसके दो भेद होते है. प्रथम द्रव्योत्सर्ग और द्वितीय भावोत्सर्ग

प्रथम द्रव्योत्सर्गके चार भेद इस प्रकार है यथाहीः—

(१) गणोत्सर्गः—गच्छ (समुदाय)का त्यागकर जिन कल्पादि काठिन्य मार्ग अङ्गीकार करना

(२) देहोत्सर्गः—अनशनादि व्रत लेकर शरीरका त्याग करना अथवा काउसग्ग ध्यानकर शरीरकों छोड़ना

(३) उपध्युत्सर्गः—कल्प विशेष उपधीका अलग करना

(४) अशुद्धभत्त—पाणोत्सर्गः—सदोष अशनादि चतुर्विध आहारका त्याग करना

भावोत्सर्गके तीन भेद होते है तद्यथाः—

(१) कषायोत्सर्गः—क्रोध, मान, माया और लोभादि २५ कषायोंका दूर हटाना

(२) भवोत्सर्ग वा संसारोत्सर्गः—नरकादि भवके कारण भूत मिथ्यात्वादिको जुदा करना

(३) कर्मोत्सर्गः—ज्ञानावर्णादि अष्ट कर्मोंके हेतु भूत ज्ञान विरोधकादि विषयोंकों दूर करना

उपरोक्त द्रव्योत्सर्ग और भावोत्सर्गोमें सें वे पूज्य गुरुवर्य कइ एक सराहनीय आचरण कर अपने उत्कृष्ट श्रमण पदकों सार्थक करते थे और कइ एक की तीव्र खप करते हुवे अपने मानव भवकों कृतकृत्य करते थे

इन द्वादश भेदोंके अतिरिक्त आप तीर्थ स्वरूप प्रातःकालके प्रतिक्रमणमें नित्य षट् मासिक तप का चिन्तन करते हुवे यथा शक्ति तपस्या अङ्गीकार कर

अपने कर्मोंकी निर्जरा करते थे यद्यपि छमासिक तप प्रथम अनशन तपमें समावेश होसकता है किन्तु नित्य स्मरणीय होनेसें तथा समस्त बाल गोपालकों विशेष लाभप्रद समझ **चेतन सुमति के प्रश्नोत्तरमें** संघटित करके पृथग् उध्दृत करनेमें प्रयत्नशील होता हूं

(सर्वोपयोगी तप चिन्तन)

सुमतिः—हे चेतन महाराणा! राजग्रही नगरीके नालीन्दे पाडेमें शासनाऽधीश्वर **श्रीवीर परमात्माने** छमासी तपस्याकी आप भी उस पवित्र तपस्याकों आराधन करके अपना कल्याण कीजियेगा

चेतन—प्रियसुमते! मै षट् मासी तपस्याके शब्दतक सुनना नहीं चाहता, श्रवण करतेही मेरा हृदय तड़फता है मेरे सामने नाम तक मत ले

सच है! भोजनका वियोग बड़ाही दुःसह्य है चेतनने षट्मासी तप जब नामन्जूर किया तब उस सुमतिने विचारा कि जो अनादि कालसें कुमतिके साथ प्रेम कर आनंद मना रहे है उन्हें एकदम सुमार्गमें उपस्थित करना मुश्किल है इसलिये संतोष दे देकर सन्मार्गके अभिमुख करना उचित होगा; यह सोच पुनरपि चेतन राणाकों समझाती हैः—

सुमतिः—हे प्राणपते! एक दिन कम षट् मास कर सकते है?

चेतनः—महानुभावा! नहीं कर सकता

तथैव दो दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता तीन दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता चार दिन कम कर सकते है! नहीं कर सकता पाच दिन कम कर सकते हैं? नहीं कर सकता छ दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता सात दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता आठ दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता इसही प्रकार एकश दिन कम करते पन्द्रह दिन कम कर सकते हैं? नही कर सकता तथैव एकश दिन कम करते पचीस दिन कम कर सकते है? इसही तरह उनतीस दिन कम षट् मास तप कर सकते है? नहीं कर सकता

हे गुणनिधे! तीस दिन यानि एक मास कम ७ महिने अर्थात् पाच महिने तो स्वीकार कीजिये चूके वार २ यह सुअवसर नहीं मिल सकता। जरा उपयोग स्थिर कर विचार कीजियेगा इसमें आपका एकान्त कल्याण होनेवाला है

सज्जनो! मदोन्मत्त आत्माके कदाग्रहकों दूर करना दुःसाध्य है तदपि पुरुषार्थ बलवान् है अस्तु.

चेतनः—प्रिय पत्नि! पाँच महिनेकी तपस्या मैं हरगीज नही कर सकता सुनने मात्रसें मेरा शरीर धूजता है जिक्र तक करना ठीक है

इन शब्दोंकों श्रवणकर वह महानुभावा विचार करती है खेर और भी निम्न श्रेणीके तपका दरियाफ्त करना उचित है-यह सोच प्रेमपूर्वक कहती है:-

प्यारे अवधु! खेर यदि आप पाच मास नही कर सकते है तो कुछ परवाह नहीं किन्तु एक मास और एक दिन कम पटमास तप कर सकते है? अर्थात् एक दिन कम पाच मास कर सकते है? नही कर सकता तथैव एक२ दिन कम करते उन्नतीस दिन कम पाच मास कर सकते है? नहीं कर सकता

हे प्राणदेव! दो मास यानी साठ दिन कम ७ मास कर सकते है? अर्थात् चार मास तो अङ्गीकार कीजिये एक हिस्सा तो निकल गया केवल दो हिस्से ही शेष है घबराहटकों त्याग कर सन्तोष वृत्तिकों आदर कीजिये और मेरी प्रार्थनाकों कबूल करके अपने निज स्वरूपकों कृतार्थ कीजियेगा

पाठकवर्यो! कर्मरूप मदिराकों पान किया हुवा पागल चेतन बिलकुल अङ्गीकार नहीं करता केवल यह कहता है कि चातुर्मासिक तपस्या करनेकों मैं सर्वथा असमर्थ हूँ तू मौनकों अख्तियार कर ले तेरे इन "कर्णशूलवत्" शब्दकों मैं नहीं सह सकता विचारी सुमता दिलगीर होकर पुनः कहती है:-

हे प्राणाधार! दो महिने और एक दिन कम पट्मास अर्थात् एक दिन कम चार मास कर सकते हैं? तथैव एक२ दिन न्यून करते उन्नतीस दिन कम चार मास कर सकते हैं? नही कर सकता अस्तु तीन मास तो कबूल

कीजियेगा अब तो अर्धभागही रह गया है फ़िर आपकों ऐसी अपूर्व सकाम निर्ज़राका कब सौभाग्य प्राप्त होगा

चेतनः—प्रियसुमते! तेरा दुःखदाई कथन सर्वथा उपेक्षणीय है मैं किसी कदर अङ्गीकार नहीं कर सकता

सुमतिः—लाचार होकर हे मेरे सदुपयोगी चेतन राणा! तीन महिने और एक दिन कम पट्मास यानी एक दिन कम तीन मास कर सकते हैं? तथैव क्रमशः एक २ वासर कम करते हुये उनतीस दिन कम कर सकते है? नहीं कर सकता अस्तु चार माह कम पट्मास तप यानी दो मासका तप तो क़बूल करियेगा; स्वामिन्! पुनः २ यह मानव भव प्राप्त होनेवाला नहीं है समझना है तो समझ लीजिये; वर्ना फिर पस्ताना होगा

चेतनः—प्यारी सुमते! तुमारा अनाचरणीय कथन बिलकुल अमान्य है विचारी कुमति मुझे सदैव सुखकारिणी है

सुमतिः—"मजबूर होकर" हे मेरे प्राणवल्लभ! चार महिने और एक दिन कम अर्थात् एक दिन कम दो मास कर सकते है? इसही तरह एक २ अहन् कम करते उनतीस दिन पर्यन्त पूछकर अखीरमें विज्ञप्ति करती है कि अब तो मासों दिन कम हो गये केवल तीस दिनही की प्रार्थना है कृपा कर स्वीकारता फरमाईयेगा

चेतनः—प्राणवल्लभे! चाहे वह तुमारी निगाहमें ठीक हो हमतो सदैव खिलाफ (AGAINST) है तुम इस कथनको सर्वथा छोड़ दो

सुमतिः—प्राणपतेः—यदि आपकी मास क्षमणकी समर्थ्य नहीं है तो पाञ्च मास और एक दिन कम पट्मास यानी एक दिन कम मास क्षमण कर सकते है? इसही तरह एक २ दिन कम करते तेरह दिन तक पूछती हुई प्रार्थना करती है कि हे नाथ! मेरी चिरकालीय प्रार्थनाकों अब तो कृपाकर सफल कीजिये!

चेतनः—प्राणप्रिये! मै सुनताश थक गया कइ वार मौनका हुकुम वक्षीस किया किन्तु अव तक तूँ अपनी हटकों नही छोड़ती है

सुमतिः—दिलमें सोचकर "भला करते भो बुरा होता है" खेर कोई हर्ज नहीं पुनरपि सहासिक होकर-प्राणनाथ! चौतीसभत्त* कर सकते हैं? नहीं कर सकता वत्तीसभत्त कर सकते हैं? नहीं कर सकता तीसभत्त कर सकते हे? नहीं कर सकता; इसही प्रकार दो २ भत्त कम करते १० भत्त यानी अष्ट कर्म निकंदनके हेतु एक अठाई तो कीजियेगा! नहीं कर सकता तथैव दो २ भत्त कम करते अष्ट भत्त यानी ज्ञान, दर्शन, और चारित्रकों उज्वल करनेवाला एक तेला कर अपूर्व सुखका अनुभव कीजियेगा! नहीं कर सकता

पट्भत्त कर सकते है? नही कर सकता चार भत्त यानी उपवास व्रतकों तो अङ्गीकार कीजियेगा! नहीं कर सकता महा माङ्गलिक आचाम्ल (आयँबिल) कर सकते है? नहीं कर सकता तथैव नीविगय, एकल ठाणा, दात, एकासन कर सकेंगे? नहीं कर सकता वे आसन कर सकेंगे? नही कर सकता इसही तरह अवड्ढ, पुरिमड्ढ, साढपोरसी, पोरसी कर सकते है? देखिये अब तो केवल २ घटेकीही प्रार्थना है क्या अब भी स्वीकारनेमें हिचकायगें हे स्वामिन्! कृपया अब तो मेरी इछाको सफल कीजियेगा

चेतनः—प्रिय कान्ते! तीन वखतकी क्षुदा मुझसें सहन नहीं हो सकती

सुमतिः—दिलमें विचारकर SOME THING IS BETTER THAN NOTHING यानी विलकुल नहींसें तो कुछ होना अच्छा है ऐसा खयाल कर-दुःखपूर्वक रुदन करती हुईः—हे प्राणाधार! कुमतिकी निरतर प्रार्थना मन्जूर करते हो तो अब मेरी अन्तिम नौकारसीकी प्रार्थना तो कबूल कीजिये!

* चार भत्तका एक उपवास, छ भत्तका एक बेला, अठ्ठभत्तका एक तेला तथैव जितने उपवास हो उनके द्विगुने कर दोभत्त अधिक मिला देना यह भत्तका नियम है लिहाजा चौतीस भत्तके सोलह उपवास होते हैं तथा कहीं पर केवल द्विगुनेसेही भत्तका नियम प्रमाण किया गया हे ये दोनोंही नियम श्री भगवतीसूत्रमें फरमाय हैं.

चेतनः—प्रिये ! क्या रो कर मुझे मराती है मैं नौकारसी भी नहीं कर सकता चूंके मूझे सूर्योदयके प्रथम चाहपानी वगेर नही चलता, कभी कहता है मुझे चलम–सिगरेट पीये वगेर, कभी कहता अफयुम खाए वगेर दस्त नहीं लगता, कभी कहता माजुम, भङ्ग वगेरा सेवन किये विइन आफरा चड़ जाता है इत्यादि अनेक दुर्व्यसनोके वशीभूत हुवा इस प्रकार कथन करता है–वूं बभी ही पगला है अनेकवार रोकनेपर भी नही मानती **खबरदार** आइन्दा पूरा खयाल रखना वर्ना तेरे हकमें बुरा है

सुमतिः—मनमें विचार कर " **अव हाथ जोमीसें काम चलनेवाला नहीं, रोए राज कभी मिलना नहीं बहादुरीको धारण कर उपदेश देना उचित होगा.** " प्राण प्यारे ! क्या आपकों इनकार करते लज्जा नही आती ! घिसते २ सिलपर भी निशान हो जाता है किन्तु आपके वज्र हृदयपर कुछ भी असर न पहूँचा धन्य है ! आपके अनत ज्ञानादि चतुष्ठय गुणोंकों और धन्य है ! आपके शुद्धउपयोगकों तथा कृत पुण्य है ! आपकी प्रशंसनीय पवित्रताकों और मुबारिक है आपकी भवोध्दारक सत् सङ्गतकों एवम् शतशः धन्य है आपके चैतन्य लक्षणकों; क्या ही अच्छा होता कि यदि आप चैतनकेबजाय **जड़** नामसे मशहूर होते आप मेर इन शब्दोंपर बुरा नमानियेगा मैं सदैव आपका भला चाहनेवाली एक किङ्करा हूँ; इसलिय इस प्रकार जा बेजा शब्द कहती हूँ–अब भी आप मेरी प्रार्थनापर गौर फरमाइये और मेरी दिली आशाकों पूर्ण कर अपना कल्याण कीजयेगा

चेतनः—अत्यन्त आग्रहके हेतु दाक्षिण्यता वश होकर विचारता है "अस्तु इसका भी सन्मान रखना चाहिये कुछ दिन हजमाईस कर अवलोकन करना चाहिये यदि सानंद निर्वाह हो जायगा तो हमेंशांके वास्ते पाबदी कर लेंगे" ऐसा विचार कर–प्रिय सुमते ! अच्छा अब आजसे तुमारी प्रार्थनाऽनुसार **नौकारसी** करेंगे

सुमतिः—हे प्राणेश्वर ! आप मेरे स्वामी हैं, आप मेरे नाथ हैं; आपही प्राणाधार हैं यदि आप मेरी प्रार्थनाकों सफल न करें तो अन्य कौन करेगा इस प्रकार अनेकशः स्तुती की

अनादि कालसें कुमतिके वशीभूत हुवे चेतनकों उपकारिणी सुमति देवीने सन्मार्गमें प्रवृत्त किया

इसतरह कितनेक दिन सौ वर्ष नरकायुष तोडनेवाली नौकारसीका अभ्यास कराकर हज़ार वर्ष नरक आयुष्य तोडनेवाली पहरसी अङ्गीकार करवाई तथैव क्रमशः साढ पहरसी, पुरिमड्ढ, अवड्ढ, बेआसन, एकासन, एकल ठाणा, दात, नीविगय, आँयबिल और यावत् उपवास पर्यन्त उत्तम मार्गपर पहुँचा दिया अब अविस्मरणीय उपकारिणी सुमति कहती है:—

सुमतिः—प्राणवल्लभ! क्या आपकों आनंदरसका अनुभव हुवा

चेतनः—प्राणप्रिये! तेरा अवर्णीय उपकार हरगीज नहीं भूल सकता दुष्ट कुमतिने मुझे फँदमें फसाकर अनादि कालसें दुःसह दुःखसें दग्ध किया इस आनंद रसका आस्वादन पामर प्राणी नहीं पा सकते अनुभवी लोगही इस अपूर्व आनंदकों लूँट रहे हैं-इसही तरह बेला, तेला यावत् अठाई, पक्ष क्षमण, मासक्षमण, दोमास, चार मास और छ मास पर्यन्त तपस्या कर अपने निज स्वरूपमें तन्मय हुवा

एक दिनका जिक्र है कि चेतन सुमतिसें पूछता है:—

चेतनः—हे प्राणवल्लभे! बेला, तेला आदि इकठी तपस्या करनेवालेकों कुछ अधिक लाभ होता है या पृथक् २ दो उपावास, तीन उपवासादि करनेवालेकों और एक दमसें बेले, तेले वगरा करनेवालेकों सदृशही फल होता है

सुमतिः—प्राणेश्वर! यह तो अनुभवसें ही प्रकट सिद्ध है कि जुदा २ उपवास करनेसें इकत्रित करनेवालेकी विशेषतः इच्छानिरोध होसकती है ज्यों २ पौद्गलिक पदार्थोंसें इच्छा विशेष हटती जाती है त्यों २ आत्म अनुभव प्रकट होता जाता है इधर शास्त्रकारोंने इकठी तपस्याका पञ्चगुणा फल फरमाया है जिसे श्रवणकर उत्तम पुरुषोंके भाव एकदम उल्लसित होजाते हैं हेनाथ! उसही तपश्चर्याके **अनुपम महात्म्य**कों ध्यानपूर्वक श्रवण करनेका अनुग्रह कीजियेगा

॥ इकठी तपस्याका महा फल ॥

(नूतन प्रणाली)

नं०	॥ तपश्चर्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है
२	दो उपवास इकठे करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है
३	तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है
४	चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है.
५	पांच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है
६	छ उ० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
७	सात उ०इ० करे तो १५ हज़ार६२५ उपवासोंका फल होता है.
८	आठ उ०इ० करे तो ७८ हज़ार१२५ उपवासोंका फल होता है
९	नव उ०इ० करे तो ३ लक्ष ९० हज़ार ६२५ उ० फल होता है.
१०	दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फल होता है .. ....
११	ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फल होता है .. ....
१२	बारह उ० इ० करे तो ४ क्रोड ८८ लक्ष २८ हज़ार १२५ उ० फल होता है ...
१३	तेरह उ० इ० करे तो २४ क्रोड ४१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ० फल होता है ... .
१४	चौदह उ० इ० करे तो एक अर्ब २२ क्रोड ७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ० फ० . ..
१५	पन्दह उ० इ० करे तो ६ अर्ब १० क्रोड ३५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ० फ० ....

१६	सोलह उ० ३० करे तो ३० अर्ब ५१ क्रोड़ ७५ लक्ष ७० हजार १२५ उ० फल होता है .. ..
१७	सतरह उ० ३० करे तो १ खर्ब ५२ अर्ब ५० क्रोड ७० लक्ष ७० हजार ६२५ उ० फ० . ..
१८	अठारह उ० ३० करे तो ७ खर्ब ६२ अर्ब ७३ क्रोड ७४ लक्ष ५३ हजार १२५ उ० फ० . . .
१७	उन्नीस उ० ३० करे तो ३८ खर्ब १४ अर्ब ६७ क्रोड़ ७२ लक्ष ६५ हज़ार ६२५ उ० फ० .. . ..
२०	बीस उ० ३० करे तो १ नील ७० खर्ब ७३ अर्ब ४८ क्रोड १३ लक्ष ७८ हज़ार १२५ उ० फ०
२१	एकबीस उ० ३० कर तो ७ नील ५३ खर्ब ६७ अर्ब ४३ क्रोड १६ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ० फ० .
२२	बाईस उ० ३० करे तो ४७ नील ६८ खर्ब ३७ अर्ब १५ क्रोड ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ० ...
२३	तेवीस उ० ३० करे तो २ पद्म ३८ नील ४१ खर्ब ८५ अर्ब ७७ क्रोड १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०
२४	चौबीस उ० ३० करे तो ११ पद्म ७८ नील ७ खर्ब २८ अर्ब ७५ क्रोड ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ०
२५	पचवीस उ० ३० करे तो ५७ पद्म ६० नील ४६ खर्ब ४४ अर्ब ७७ क्रोड ५१ लक्ष ७० हजार ६२५ उ० फ०
२६	छवीस उ० ३० करे तो २ सङ्ख ७८ पद्म २ नील १२ खर्ब २२ अर्ब ८७ क्रोड़ ६७ लक्ष ५३ हजार १२५ उपवासोंका फल०
२७	सत्तावीस उ० ३० करे तो १४ सङ्ख ७० पद्म ११ नील ६१ खर्ब १७ अर्ब ३८ क्रोड ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
२८	अठावीस उ० ३० करे तो ७४ सङ्ख ५० पद्म ५८ नील ५ खर्ब ७६ अर्ब ७२ क्रोड ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल०
२७	उनतीस उ० ३० करे तो ३७२ सङ्ख ५२ पद्म ७० नील २७ खर्ब ८४ अर्ब ६१ क्रोड ७१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उप० फल०

३०	तीस उ० इ० करे तो एक हज़ार ८६२ सङ्ख ६४ पद्म ५१ नील ४९ खर्व २३ अर्ब ९ क्रोड़ ५७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ० फ०
३१	एकत्तीस उ० इ० करे तो ९ हज़ार ३१३ सङ्ख २२ पद्म ५७ नील ४६ खर्व १५ अर्ब ४७ क्रोड़ ८५ लक्ष १५ हज़ार ६२५ उ० फ०

(प्राचीन प्रणाली)

नं०	॥ तपस्या ॥
१	एक उपवास करे तो एकका ही फल होता है
२	दो उपवास इकठे करे तो पाँच उपवासोंका फल होता है
३	तीन उ० इ० करे तो २५ उपवासोंका फल होता है
४	चार उ० इ० करे तो १२५ उपवासोंका फल होता है
५	पांच उ० इ० करे तो ६२५ उपवासोंका फल होता है
६	छ उ० इ० करे तो ३ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
७	सात उ० इ० करे तो १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है
८	आठ उ० इ० करे तो ७८ हजार १२५ उपवासोंका फल होता है
९	नव उ० इ० करे तो ३ लक्ष ९० हजार ६२५ उप० फल होता है
१०	दस उ० इ० करे तो १९ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल०
११	ग्यारह उ० इ० करे तो ९७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
१२	बारह उ० इ० करे तो ४ क्रोड़ ८८ लक्ष २८ हज़ार १२५ उ० फ०
१३	तेरह उ० इ० करे तो २४ क्रोड़ ४१ लक्ष ४० हज़ार ६२५ उ० फ०
१४	चौदह उ० इ० करे तो १२२ क्रोड़ ७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उ० फ०
१५	पन्दरह उ० इ० करे तो ६१० क्रोड़ ३५ लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०

१६	सोलह उ० इ० करे तो ३ हजार कोड़ ५१ कोड़ ७५ लक्ष ७८ हज़ार १२५ उ० फल होता है . . . .
१७	सत्तरह उ० इ० करे तो १५ हजार कोड़ २५८ कोड़ ७८ लक्ष ९० हज़ार ६२५ उप० फल०
१८	अठारह उ० इ० करे तो ७६ हजार कोड़ २९३ कोड़ ९४ लक्ष ५३ हज़ार १२५ उप० फल० . . . . .
१९	उन्नीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष कोड़ ८१ हज़ार कोड़ ४६९ कोड़ ७२ लक्ष ६५ हजार ६२५ उ० फ०
२०	बीस उ० इ० करे तो १९ लक्ष कोड़ ७ हजार कोड़ ३४८ कोड़ ६३ लक्ष २८ हजार १२५ उ० फ०
२१	एकवीस उ० इ० करे तो ९५ लक्ष कोड़ ३६ हजार कोड़ ७४३ कोड़ १६ लक्ष ४० हजार ६२५ उ० फ०
२२	बावीस उ० इ० करे तो ४ कोड़ाकोड़ ७६ लक्ष कोड़ ८३ हज़ार कोड़ ७१५ कोड़ ८२ लक्ष ३ हजार १२५ उ० फ०
२३	तेवीस उ० इ० करे तो २३ कोड़ाकोड़ ८४ लक्ष कोड़ १८ हजार कोड़ ५७९ कोड़ १० लक्ष १५ हजार ६२५ उ० फ०
२४	चौवीस उ० इ० करे तो ११९ कोड़ाकोड़ २० लक्ष कोड़ ९२ हजार कोड़ ८९५ कोड़ ५० लक्ष ७८ हजार १२५ उ० फ० .
२५	पच्चीस उ० इ० करे तो ५९६ कोड़ाकोड़ ४ लक्ष कोड़ ६४ हजार कोड़ ४७७ कोड़ ५३ लक्ष ९० हजार ६२५ उप० फल०
२६	छब्बीस उ० इ० करे तो दो हजार ९८० कोड़ाकोड़ २३ लक्ष कोड़ २२ हजार कोड़ ३८७ कोड़ ६९ लक्ष ५३ हजार १२५ उप० फल०
२७	सत्तावीस उ० इ० करे तो १४ हजार ९०१ कोड़ाकोड़ १६ लक्ष कोड़ ११ हजार कोड़ ९३८ कोड़ ४७ लक्ष ६५ हजार ६२५ उप० फल०
२८	अठावीस उ० इ० करे तो ७४ हज़ार ५०५ कोड़ाकोड़ ८० लक्ष कोड़ ५९ हजार कोड़ ६९२ कोड़ ३८ लक्ष २८ हजार १२५ उप० फल०

२ए	जनतीस उ० इ० करे तो ३ लक्ष ७२ हजार ५२ए क्रोडाक्रोड दो लक्ष क्रोड़ एए हज़ार क्रोड़ ४६१ क्रोड ९१ लक्ष ४० हजार ६२५ उप० फल होता है .. ..
३०	तीस-उ० इ०-करे तो १७ लक्ष ६२ हजार ६४५ क्रोडाक्रोड़ १४ लक्ष क्रोड़ एर हज़ार क्रोड़ ३०ए क्रोड-५७ लक्ष ३ हज़ार १२५ उप० फल० .. ..
३१	इकतीस उ० इ० करे तो ९३ लक्ष १३ हज़ार २२५ क्रोडाक्रोड ७४ लक्ष क्रोड ८१ हज़ार क्रोड़ ७४७ क्राड़ ८५ लक्ष १५ हजार ६२५ उपवासोंका फल होता है . .

मेरे प्यारे गुणानुरागियों ! आपको उपरोक्त इकठी तपस्याके महा फलकों पढ़कर यह जलीव प्रकार सुविदित होगया होगा कि ऐसे अपूर्व रत्न खजानेको लूटना कौन न चाहता होगा ? हमारे आत्मार्थी नव्यात्मा अव श्य इस तर्फ ध्यान देकर महा निर्जरानूत दिव्य तपास्यका आचरणकर अपनी आत्माका कल्याण करेंगे ऐसा सुदृढ़ विश्वास है, देखिये इस प्रताप शाली दिव्य तपस्यासे इस प्रकार अनुपम गुणोंकी सुप्राप्ति होती है:—

(श्लोक)

यस्माद्विघ्न परंपरा विघटते दास्यं सुराःकुर्वते ।
कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः कल्याण मुत्सर्पति ॥
उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वसचयः कर्मणां ॥
स्वाधीन त्रिदिवं शिवच जवति श्लाघ्यं तपस्तन्न किम् ॥१॥

नावार्थः—जिस अतुल प्रतापी दिव्य तपद्वारा परंपरानुगत विघ्न एक-दमसें विनाश हो जाता है और विनय श्रेष्ठ देवता दासपना करने लग जाते

है तथा दुर्जय कामदेव तत्काल उपशान्त हो जाता है और चंचल इन्द्रीय समुदाय एकदम स्वाधीन हो जाती है एवम् महामङ्गल वर्तने लग जाता है तथैव विपुल वैभव संप्राप्त होता है इसही प्रकार घोर कर्म शत्रु तत्क्षण विध्वस हो जाते हैं अन्तिममें स्वतन्त्रता पूर्वक सामान्यतया उत्तम देवलोकके अपूर्व सुखोंको भोगता है और विशेषतया अचिरात् मोक्षपदको पाकर अनंत सुखोंका अनुभव करता है सज्जनो! क्या यह उग्र तप श्लाघनीय नहीं है? किन्तु अवश्यही त्रिजगत प्रशसनीय व अनुकरणीय है

हमारे वे महा तपस्वी पूज्य गुरु पुङ्गव इस प्रकार तपस्याका आचरण करते हुवे अपनी आत्मामें रमण करते थे अहाहा! आपकी तप महिमा जगत् प्रशसनीय व विश्व अनुसरणीय है. वैराग्य रसिको! अब मैं आपकी निर्मल भावनाका किञ्चिद् विवरण प्रदर्शित करनेका सहास करता हूं:—

॥ निर्मल भावना ॥

शुभ विचारोंद्वारा सत्तागत रहे हुवे आत्मगुणोंका आविर्भाव करना: उसे भावना कहते है

वे पूज्य गुरुवर्य विशाल विस्तीर्णरूपसे निम्नलिखित चार भावनाओंको भाते हुवे अपने कर्म वृन्दको विध्वस करते थे जिसका किञ्चित् स्वरूप पाठकोंकी सेवामें पश करता हूं—

॥ चौपाई ॥

प्रथम मैत्री निर्मल गुणधार।
प्रमोद हृदय विकशित सुखकार ॥
कारुण्य दया रस आतमसार।
माध्यस्थ भावना जय २ कार ॥१॥

प्यारे पाठकवरों! कितनेक महानुभावोंके हृदयमें ये अवश्य उमङ्गलहरें

उत्कंठित होंगी कि मैत्री माताके अन्दर ऐसा क्या प्रौढ दिव्य गुण है कि जिससें प्रथम पद विभूषित कर रही है; उत्तरमें इतनाही निवेदन काफी होगा कि यावत् क्षेत्र शुद्धि न होगी सर्व यत्न निष्फल है अर्थात् जब तक हृदय पवित्र गुण करके विभूषित न हो तब तक सिद्धयर्थ दुःसाध्य है इतनाही नही किन्तु सर्वथा असम्भव है और वही गुण इस मैत्री मातामें विद्यमान है; अतः यह प्रथम पदसें विभूषित होरही है अब मैं अपनिज मैत्री माताका दिव्य स्वरूप रोशन करता हूँ:—

॥ मैत्री भावना ॥

अशेष प्राणियोंके साथ मित्रता रखना उसें मैत्री भावना कहते हैं

यह प्रकट लोकोक्ति है कि "संप जहा जंप" अर्थात् सप है वहा अवश्य विजय है एक्यता (UNITY) एक ऐसी पवित्र वस्तु है कि जिसके जरिये प्राणी शीघ्रही अपनी इष्टता संप्राप्त कर सकता है इसही मैत्री महाराणीके प्रभावसें निर्बल भी सबलकों अपने कबजेमें कर सकता है जैसें छोटे२ तन्तुओंसें बुनी हुई रस्सी एक मदोन्मत हस्तिकों गिरफ्तार कर सकती है यह एक्यता का ही महा प्रभाव है

इधर एका (संप) एक ऐसा बलवान् है कि बादशाह तककों भी परास्त कर देता है शायद आपने तास (PLAYING CARDS) का खेल देखा होगा कि उसमें रहा हुवा एका कितना बलीष्ट होता है

दुरीपर तिरी गेरनेसें तिरीवाला जीत जाता है, तथैव तिरपर चौकी, चौकीपर पञ्जी; इसही प्रकार क्रमशः नौलीपर दशी गेरनेमें दशीवाला विजयकों प्राप्त होता है उपरोक्त नवों पत्रोंपर यदि बादशाहका गुलाम आजावे तो सर्वको शिकस्त देता है उसपर भी यदि बादशाहकी बेगम आजावे तो गुलाम तककों दबा देती है इसपर भी यदि खास बादशाह सलामत तसरीफ ले आवें तो दुरीसें दशीतक व गुलाम तथा बीबीकों भी जय कर लेते हैं मगर मेरे प्यारे पाठकों ! यदि एका महाराणा पदार्पण करे तो सर्वकों त-

त्कालमें पराजय कर देता है अर्थात् विजयको संपाप्त होता है कहनेका तात्पर्य यह है कि तासका तमासा भी हमें यह नसीहत करता है कि एकमें बढकर कोई पदार्थ नहीं इसकी उत्कृष्ट कोशीस करना प्रत्येक प्राणियोंका अव्वल धर्म है.

इस संप महाराणाके न होनेसें कुसप देवने भारतवर्षको बरबाद कर दिया अर्थात् सत्ताहीन बना दिया जिसमें भी जैन जातीकी दशा बडीही सोचनीय है इसपरभी हमारे कितनेक भव्य धर्म नेतागण परस्पर विरोध करके पवित्र जैन धर्मको उज्वल कर रहे हैं हम नहीं समज सकते कि वे हमारे पूज्य महात्मा कुसपदेवके प्रेम रसमें किस प्रकार निमग्न हो रहे है वे धर्म धुरंधर धर्मावतारादि अलङ्कारोसें अलङ्कृत होनेपर भी इस प्रकार अधम कृत्यमें कदम रखकर अपनी उच्चताका दृढ परिचय दे रहे हैं महानुभावों! हमारे वे माननीय महोदय उसही प्रकार दमक रहे हैं कि जैसें काक अपनी उज्वल दिव्य कान्तिसें विभूषित होता है धन्य है! हमारे कृपालुओं! आपको पुनः २ नमस्कार हैं!! आप सदृश नर रत्नों सें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है

इधर हमारे कितनेक शासन प्रेमी भव्यात्मा इस पवित्र जैन जातिकी इस प्रकार दुर्दशा देखकर खेदातुर होते हुवे अपने नेत्रोंमें अश्रुओंका अविरल धारा बहार रहे हैं और परम परमात्मामें यह दिली प्रार्थना कर रहे है कि इस जैन समाजका शीघ्रही उध्दार हो हमें एक वख्त फिर भी वह सौभाग्य संप्राप्त हो कि जैन शासन मारतण्ड अपने दिव्य प्रकाशसे इस पृथ्वी मण्डलको प्रकाशितकर, भव्यात्माके हृदयरूप कमलोंको विकाशित करता हुवा हमें दर्शन दे ताके हम अपने प्यासे नेत्रोंको शान्तरसमें निमग्न करें

आपको यह बखूबी रोशन है कि जब तक प्राणियोंका विचार परस्पर न मिलता है तब तक कोई कार्यकी सिध्दि नहीं हो सकती अथवा यों कहिये कि जब तक प्राणियोंका प्रेमरस एकमेक न हो जाय दिली आशाए नहीं फल सकती इस आनंदरसको संमिलित करना मैत्री माता के ही आधीन है

देखिये:—

जब तक कषाय अलग न होगा सपकीत बीज हरगीज नहीं ठहर सकता जैसे यह कहावत मशहूर है कि **"चीकटे घड़े न लागे ठांट"** रूपान्तरसे यह अनुभवमें लाइयेगा कि जैसे कोई मनुष्य बादामादि की चक्कियें जमाता है तो अव्वल थालमें घृत लगा देता है ताके उसमें बिलकुल न चिपट सके यहां तककी एक अंश भी उसमें नहीं रह सकता इसही तरह जब तक कषायरूपी चिकट हृदयरूपी थालमें लग रहा है तब तक **समकीतरूपी बरफी** कभी नहीं ठहर सकती. तात्पर्य यह है कि जब तक द्वेषाग्नि नष्ट न हो शान्तरस प्राप्त नहीं हो सकता समकितके जहाँ सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्यता ये पाँच लक्षण बताए गए है वहां पर आदि सोपान (सीढ़ी) **सम** रक्खा गया है **"सम"** अर्थात् चतुराष्ट लक्ष जीवा यानी पर समान परिणाम रखना इस पदको सिद्ध किये बगैर सम्यक्त्वका यथार्थ गुण प्रकट नहीं हो सकता भावार्थ यह है कि समकितको प्राप्त करानेवाली भी हमारी **मैत्री-माता** ही है

हमारे वे **पूज्य गणाधिपति** इस प्रकार मैत्री भावनाका आराधन करते हुवे अपने कर्मपटलको विध्वंस करते थे **तद्यथा:—**

हे आत्मन् ! अपने समुदायमें जितने साधु साध्वियें है उन सबसे मित्रता रखना चाहिये चूंके तूँ और ये सर्व एकही गुरु महाराजकी निश्राइमें रहने वाले हो अर्थात् एकही परमोपकारीके उपासक हो जिस प्रकार एक माताके गर्भसे उत्पन्न हुवे भाईयोंके गाढ स्नेह होता है इसही तरह तुझे भी प्रीतिभाव रखना चाहिये; इतनाही नहीं किन्तु समस्त **खरतर गच्छीय चतुर्विध संघ**के साथ सप रखना उचित है कारण की तूँ और ये सर्व एकही गच्छाधिपति **पूज्यपाद श्री जिनेश्वरसूरीश्वर**की आज्ञामें चलनेवाले हो अर्थात् उनके फरमान के मुआफिक क्रिया काण्ड करनेवाले हो इतने पर ही संतोष करना तुझे योग्य नहीं किन्तु **चौरासी गच्छवाले सकल मन्दीर आम्नायके अनुयाईयों**से एक्यता रखना चाहिये चूँके अपन सर्व **पूज्यपाद श्रीउद्योतनसूरीश्वर**के आज्ञानुयाई हैं तथा अपने षडावश्यकादि खास विधियोंमें कुछ भी तफावत नहीं है इतना ही नहीं किन्तु अनेक आचार विचार सदृश है इतने पर ही सब्र करना तुझे

लाज़िम नहीं किन्तु बाईस समुदाय व तेरह पंथवालोंमें भी प्रीतिभाव रखना उचित है चूंके वे भी श्वेताम्बर जैन-धर्मकी शाखाए हैं अपने व उनके कितने ही सबजेक्टस् (विषय) मिलते हुवे हैं इतनेपर ही आनंद मनाना योग्य नहीं किन्तु जैन-धर्मकी मूल दो शाखाओंमेंसें एक शाखा जो दीगम्बर जैन धर्मकी है उनसे भी मित्रता रखना चाहिये कारण की अपन सर्व एक ही चौवीस तीर्थङ्करोंके उपासक हैं इतनाही नहीं किन्तु कइ एक व्यवस्थाएं समान हैं कहनेका तात्पर्य है कि जैन पद सें जो २ महानुभाव विभूषित हो रहे हैं उन सर्वसें मित्रता रखकर अपना कल्याण करना चाहिये

प्यारे चेतन! इतनेमें ही हर्ष मनाकर आनंदित न होना किन्तु षट् दर्शनियों में भी मिलाप रखना चाहिये चूंके अपने व उनके बहुतसें तात्विक विषय (PHILOSOPHY) समान हैं यथा जैन धर्मका मूल सिध्दान्त **"अहिंसापरमोधर्म."** है इमें सबही धर्मवाले तसलीम करते हैं तथैव मृषावाद, स्तेय, मैथुन और परिग्रह धारण करना महा दुःखदाई है इन्हें भी सर्व दर्शनवाले सादर शिरोधार करते हैं इसलिये षट् दर्शनोंके साथ भी मित्रता रखना समुचित है

हे बन्धु! इतनेसें ही संतोषित मत हो जाना किन्तु मनुष्य मात्र (पुरुष, स्त्री और नपुँसक मात्र) सें स्नेह रखना चाहिये कारण की आत्मत्वेन उनके साथ स्वधर्मता है अर्थात् इनशानियत के कर्तव्य उनके व अपने बरोबर हैं तथैव देव, तिर्यच और नारकीके जीवोंसें निरन्तर बंधु भाव रखना चाहिये चूंके इन्द्रियत्वेन अपने स्वाधर्म्य हैं जिन पञ्चेन्द्रीयको अपनोने धारण कर रक्खी है वेही पञ्चेन्द्री उनके भी मौजुद है, अतः उनसे मित्रता रखना योग्य है

हे जीव! यहीं पर विश्रामित मत होना किन्तु विकलेन्द्री (बेन्द्री, तेन्द्री और चौरिन्द्री) सें भी भ्रातृभाव रखना चाहिये कारण की त्रसत्वेन अपनव वे सदृश धर्मी हैं त्रस संज्ञा उन्हे भी है व वही त्रस संज्ञा अपनेको भी है तथैव मस्त भूत प्राणियोंसें (पृथ्वी, अप्, तेज और वायु; वनस्पति) व सूक्ष्म पाँचो स्थावर अर्थात् सूक्ष्म निगोदियोंसें भी उचित है चूके शरीरत्वेन

तथा चेतन लक्षणत्वेन अपने व वे सर्व एक ही हैं अर्थात् औदारिक शरीर अपने भी है व उनके भी है तथाच जैसें चेतनके खास षट् लक्षण अपने हैं तैसेही उनके भी हैं इतना नहीं ही किन्तु कइ एक संज्ञादि विषय भी मिलते हुवे हैं लिहाजा उनसें मित्रता रखना समुचित है जीवके षट् लक्षण तद्यथा:-

(गाथा.)

नाणं च दंसणं चेव चरितं च तवो तहा ॥
वीरियं उव उगोय एवं जीवस्स लक्खणं ॥ १ ॥

अर्थः—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये ठ लक्षण जीवके होते हैं

हे मुझ चेतन ! मेरे समस्त कथनका रहस्य यह है कि चतुराशि लक्ष जीवा योनीसें मैत्री भाव रखकर तुझे आनंदित होना चाहिये

प्यारे पाठकवरों! इस प्रकार वे पूज्य महर्षि मैत्री भावनाका दिली आराधन करते हुवे अपने चारित्र रत्न कों दिन द्विगुना उज्वल करते थे इतना ही नहीं किन्तु कर्म पटलकों विध्वसकर अपने निर्मल आत्म गुणोंका आविर्भाव करते थे धन्य है! गुरुवर्य आपकृत पुण्य है सज्जनो! अब मै आपके प्रमोद भावनाका किञ्चिद् दृश्य दिखलाता हूँ:—

(प्रमोद भावना)

प्राणीमात्रकों यथावत् सुखी देखकर प्रमुदित (प्रसन्न) होना उसें **प्रमोदभावना** कहते हैं.

आप यह सहज ही समझ सकते हैं कि वगैर मैत्री माताकी सेवा किये प्रमोद मातश्वरीका आराधन होना मुश्किल है यह प्रकट विख्यात है कि

शत्रुकों देखकर कभी आनंद नहीं होता और मित्रको देखकर एकदम चित्त हरा भरा हो जाता है देखिये जब कभी कोई अपने शत्रुकी यश कीर्ति अथवा सत्कार सन्मानादि श्रवण करता है तब हृदयमें दुःख ज्वाला धग २ ने लगती है और यदि यही व्यवस्था अपने मित्रकी श्रवण करता है तब आत्मा एकदमसें शीतल हो जाती है अर्थात् समस्त अङ्ग आनदरससें आपूरित हो जाता है और हृदय मन्दिरमें उङ्ग लहरें उछलने लग जाती हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि मैत्री माताके अगाध कृपासें ही प्रमोद माताकी सेवाका सौभाग्य समाप्त हो सकता है इसही लिये यह द्वितीय पदकों विभूषित करती है -

प्यारे पाठकों ! जब तक प्रमोद माताकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक चिन्ता पिशाचनी हृदयगत आनंदको बरबाद करती है और अपना साम्राज्य जोर शोरसें प्रवर्त्ताती है इसके निवासमें शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीनो व्यवस्थाएँ ध्वस्त व्यस्त हो जाती हैं जिसके दुःखसें शरीर जर्जरीभूत हो जाता है वचन कलाप नष्ट भ्रष्टताकों संप्राप्त होता है मन महाराणा मामोल करने लग जाता है अर्थात् निरंतर अनेक संकल्प विकल्पोंसें आर्त्त रौद्र ध्यानमें भ्रमित हो जाता है इतना ही नहीं किन्तु जिन्दे रहने पर भी मृतक मनुष्यवत् दुःख प्राप्त होता है यानी चिन्तामें निवास करना गोया साक्षात् चितामें ही दग्ध होना है देखिये किसी महानुभावने ठीक कहा है:—

(दोहरा.)

चिन्ता डाकन मन वशी चुट २ लोही खाय ॥
रती विरती कर सचरे तोला २ जाय ॥ १ ॥

तथैव और भी कहा है:—

(दोहरा.)

चिन्ता चिताका एक रस इस्मे अन्तर एह ॥
चिता जलावे मृतक जन चिन्ता जीवित देह ॥ २ ॥

महा ऋद्धिवान् चक्रवर्ति, राजा, महाराजा, शेठ और साहूकार तथैव अशेष पदाधिकारियों को हिंसा करते, झूठ बोलते चोरी करते व्यभिचार सेवन करते तथा परिग्रहकी अत्युत् कण्ठा करते देखकर प्रथक २ इस प्रकार दयामय विचार करना—

उफ! कर्मकी गति विचित्र है ये इस प्रकार उत्तम पदवीसें विभूषित होने पर भी क्रिड़ा तथा कौतुकके लिये एव अपने पराक्रमको विख्यात करनेके हेतु विचारे निरापराधी शेर, सूर, चित्ते, रीछ ओर अजादि जानवरोंको प्राणोंसे रहित करके वज्र लेपसा कर्मोपार्जन करते हैं ये अपने दिलमें ज्ञानका भी पूरा २ गौरव रखते हैं किन्तु वस्तुतः वह ज्ञान नहीं नितान्त अज्ञान ही है ये भद्रिक लोग इतना भी नहीं समझते की पूर्व भवमें अनेक जीवोंको दुख दिया है इस ही लिये मेरी हजारों लोक मान्यता करते हुवे सेवा भक्तिकर रहे हैं और जिन जीवोने अन्य प्राणियोंको दुःख दिया है वे प्रकटतः दुःखी हो रहे हैं इसही तरह मुझे भी अवश्य दुःखी होना पडेगा

तथैव मृषावादियोंको मृषा द्वारा विश्वास घातादि अनर्थोंको सेवन करते देख यह विचारना कि अहो! इन लोगोंको तनिक भी लज्जा नहीं आती कि हम इस प्रकार असत्य भाषण कर विश्व विश्वासपात्र कैसें बनेगे अहा! सत्यवक्ता हरिश्चंद्र राजाने बारह वर्ष पर्यन्त किस प्रकार सकट सेहन किये थे किन्तु लेशमात्र भी दुःखातुर न हुवे और अपने अखण्ड सत्य व्रत पर कटि बद्ध रहे अहो! विचारे इन दीन असत्यवक्ताओंका जन्म कैसे सफल होगा

चौर लोगोंको चौरी करते देख अथवा चौरीके कटुक फलको कारागृह (जेलखाना) मे प्रत्यक्ष भोगते हुवे देख यह खयाल करना कि संसारमें अनेक जीव अनेक उपचारोंसें उदरपूरणा कर रहे हैं और ये निगम कर्मी बगेर परिश्रम ही आनंद करनेकी वाँछा करते हैं यह इनकी अज्ञाताका पूर्णोदय है मुझे बडी ही भाव दया आती है कि किसी प्रकार ये दुःखसें स्वतन्त्र हो जाँय उत्तम है.

वेश्या गमन करनेवाले व परस्त्रीके लम्पटियोंको देखकर यह भावना लानी कि हा! ये पामर प्राणी किस प्रकार दुष्टाचरणको सेवन कर रहे हैं

जिससें कुलकी, जातिकी और खानदानकी लज्जा भस्यानेकर रही है तथा राजा, महाराजा एवं देव, गुरु और धर्मसें लज्जा विहिन हो रहे है और जिससें मोक्ष मार्ग दूर जग रहा है यहा तककी इस जवमें मत्यक्ष जेलखानेकी हवा खाना पडती है और आगामी भवमें घोर नरकादिके असह्य दुःखसें दग्ध होना पमता है * तो जी ये व्यजिचारी लोग अपने विश्व निंदनीय कर्त्तव्यसे राज़ नहीं आते हे ईश्वर! इन विचारे कुइ प्राणियोंका किसी तरह शुद्धाचार होजाय तो अच्छा है

परिग्रहके अति लोजियोंको देखकर यह विचारना किः—अहा! दुनियाकी कैसी विचित्र लीला है बहुधा समस्त जगत आँख बंद कर चारों तर्फ पैसेके लोजसें मारा २ फिर रहा है सैकमापति यह चाहता है कि मै हजारपति होजाऊं तथैव हजारपति लक्षपति एवं लक्षपति क्रोमपति होनेकी इच्छा करता है किन्तु यह बिलकुल विचार नहीं करते कि चक्रवर्ति सदृश ऋद्धिवान् भी जब अपनी समस्त ऋद्धि छोडे परलोकको रवाना हुवे तो समुद्रमें बिन्दुवत् मेरी लक्ष्मीका क्या? अब तो मुझे अवश्य ही संतोष महाराणेका अवलम्बन करना चाहिये किन्तु बजाय इसके रात दिन दोमधाम मचा रहे है विचारे इन प्राणियोंको किसी मकार संतोष वृत्ति हो जाय तो अच्छा है ताके परमानंदमें निमग्न हों

मान्यवरों! हमारें चरित्र नायक पूज्यपाद गुरुवर्य इस मकार कारुण्य जावना जाते थेः—

हे आत्मन्! संसाररूपी विचित्र नाटकको जरा पलक उठाकर देख, कि ये विचारे विचित्र कर्मधारी पामर प्राणी किस कदर उलट पुलट काम करते हुवे कर्म फांसमें फसनेका उत्कट प्रयत्न कर रहे है, कइ प्राणी निरपराधी जीवोंको विनाशकर आत्मीय बलको धन्य मानते हैं तथा अपने कुलको उत्तम समझते है, कइ एक प्राणी मृषावाद द्वारा लोगोंको धोका बाज़ी देकर वञ्चित (ठगाई) करते हुवे अपनेको बुद्धि कुशलमान रहे है! कइ एक मनुष्य पर धन हरण-

* इसका विशेष खुलाशा देखनेकी अभिलाषा हो तो देखो हमारा बनाया हुवा सप्त व्यसन निषेधका चौथा व सप्तम व्यसन

करके अपनी ठकुराइका गौरव सपक्ष रहे है; कइ एक वेश्या और पर स्त्रीमें आनद मानते हुवे अपने जन्मको सफल गिन रहे है और कइ एक लक्ष्मी वर्धन करनेमें दत्तचित्त होकर अपने पुरुषार्थको कृतकृत्य मान रहे हैं इतना ही नहीं किन्तु अनेक अनर्थ दण्डोंको सेवन कर अपनेको धन्य२ समझ आनंद समुद्रमे निमग्न हो रहे है हे प्रभो ! इन विचारे अज्ञ प्राणियोंकी वर्त्तमानमें क्या गति हो रही है तथा भवान्तरोंमें किस प्रकार दुर्गतिके घोर दुःखोंको भोगकर अपने कठिन कालको व्यतीत करेंगे. हे ईश्वर ! इन विचारे प्राणियोंकी मति सुधर जाय तो उत्तम है अररररर ! ये विचारे गरीब भयकर दुःखोंको कैसे सहन करेंगे हे जगत्तारक ! किसी प्रकार इनका छुटकारा हो जाय तो श्रेयस्कर है

प्यारे दयानुरागियों ! इस तरह नाना विध भाव दया भाते थे और अपने हृदयको दया रससें आपूरित करते हुवे कर्म निर्जरा कर भव भ्रमणका विध्वंस करते थे धन्य है गुरुदयाल ! आप दयासागरको मुहुर्मुहु धन्य है सज्जनो ! अब मैं आपकी माध्यस्थ भावनाका संक्षिप्त विवेचन लिख दिखाता हूँ:—

(माध्यस्थ भावना)

मित्र और शत्रु पर समान परिणाम रखना अर्थात् इष्ट और अनिष्ट अशेष वस्तुओं पर समभाव रखना उसें **माध्यस्थ भावना** कहते है

प्यारे वैरागियों ! जब तक प्राणियोंके विभिन्नता रहती है तब तक अपनी इष्ट पदार्थों पर ही अटूट कृपा होती है किन्तु अनिष्ट पर क्रूर दृष्टिही बनी रहती है मगर जब कारुण्य माताकी सेवामें कटिबद्ध हो जाते है तब इष्टानिष्ट सर्व पर समान दयाभाव हो जाता है इसही कारुण्य मातेश्वरीके महत् कारणसें माध्यस्थ माताकी सेवा सप्राप्त हो सकती है अतः कारुण्यके पश्चात् सिद्ध स्थानपर पहूँचानेवाली माध्यस्थ भावना अपने दिव्य स्वरूपको प्रकाशित करती हुई स्वकीय निज स्वरूपमें रमण कर रही है

सज्जनों ! यह तो निसन्देह ही प्रकट है कि अनेक प्राणी अनेक कर्तव्योंमें

निपुण है यहां तककी जगतमें सर्वसें अति वल्लभ प्राण तकभी स्वामीके लिये न्योछावर कर देते हैं किन्तु सम रस यानी मा यस्थ वृति रखनेवाले विरले ही पुरुष दृष्टि गोचर है; देखिये एक विद्वान् वैरागीका कथन है:—

(श्लोक)

दृश्यन्ते बहवः कलासु कुशलास्ते च स्फुरत्कीर्तये ।
सर्वस्वं वितरन्ति ये तृणमिव कुड्रेऽपि प्रार्थिताः ॥
धीरास्तेऽपि च ये त्यजन्ति झटिति प्राणान्कृते स्वामिनो—
द्वित्रास्तेतुनरा मनः समरसं येषां सुहृद्वैरिणोः ॥१॥

भावार्थः—इस डुनियाके अन्दर बहुतसे ऐसे लोग हैं जो कि अनेक कलाओंमे कुशल है तथा कइ एक लोग दीन डुःखीके प्रार्थना पर अपने वैभवकों विस्तीर्ण कीर्तिके लिये तृणके सदृश खर्च करदेते है और कइ एक ऐसे बाहाडर लोग है कि अपने स्वामीके लिये तत्काल प्राण अर्पण कर देते है किन्तु प्यारे वैरागियों! मित्र और शत्रुमें समरस रखनेवाले दो तीन विरले ही पुरुष होंगे

जिज्ञासु सज्जनों! जो प्राणी माध्यस्थावस्थामें निवास करते है वे सदा सर्वदा अपनेकालकों निराबाध आनंदपूर्वक निर्गमन करते है इसलिये माध्यस्थ भावनमें विराजमान योगीश्वर अनेक दिव्य गुणोंसें विभूषित होते हैं उन्हमेंसें कितनेक गुण इस स्थल पर उध्धृत कर प्रदर्शित करता हूं:—

(श्लोक)

आक्रोशेन न दूयते न च चटु प्रोक्त्या समानंद्यते ।
दुर्गंधेन न बाध्यते न च सदा मोदेन संप्रीयते ॥
स्त्रीरूपेण न रज्यते न च मृत श्वानेन विद्वेष्यते ।
माध्यस्थ्येन विराजितो विजयते सोप्येष योगीश्वरः ॥१॥

भावार्थः—वेही महानुभाव सम्यग् ज्ञानी समझे जाते है कि जो कठोर वचनोसें कदापि दुःखो नहीं होते और खुसामदके शब्दोंसें कभी आनंदित नही होते तथा दुर्गंधमें हरगीज बाधित नहीं होते और सुगंधसें कभी प्रसन्न नही होते एवं कामिनीके दिव्य स्वरूपसें कदापि रंजित नहीं होते और मृतक श्वान (कुत्ता) सें हरगीज द्वेष नही करते इस प्रकार **माध्यस्थ स्वरूपमें विराजमान वे ही योगीश्वर** विजयकों संप्राप्त होते है

इतना ही नहीं किन्तु मित्र और शत्रु आदिसें रागद्वेषको दूर कर माध्यस्थ वृती रखते थे यथा किसी महात्माका ठीक कथन है:—

(श्लोक)

मित्रे नन्दति नैव नैव पिशुने वैरातुरो जायते ।
भोगे लुभ्यति नैव नैव तपसि क्लेशं समालम्बते ॥
रत्ने रज्यति नैव नैव दृपदि प्रद्वेषमापद्यते ।
येषां शुद्धहृदां सदैव हृदयं ते योगिनो योगिनः ॥ २ ॥

भावार्थः—वेही आत्मार्थी पुरुष कहे जाते है कि जो मित्रके अन्दर कभी आनंदित नही होते और चुगलखोरोंमें कभी वैरभाव नही रखते तथा भोगमें कदापि नही लुभाते और तपस्यामें क्लेशातुर नहीं होते एवं रत्नादि जवाहिरातों में हरगीज दील चस्पी नही लाते और कङ्करमें कदापि द्वेष नहीं लाते ऐसे जो शुद्ध हृदयवाले महानुभाव है उनके पवित्र हृदयमें उपरोक्त कोइ विषय संप्राप्त नही होसकता; वेही योगिराज योगीश्वर पदवीसें विभूषित होते है

महानुभावों ! उपरोक्त दो श्लोकोंसें आपको सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि माध्यस्थ वृत्तिवाले किस उच्च श्रेणीसे विभूषित होते है हमारे वे भाणाधार इस प्रकार माध्यस्थ भावनाको भावन करते थेः—तद्यथाः—

हे आत्मन् ! जब तक तूं इस वज्रलेप रागद्वेषसें पृथक् न होगा हरगीज़ सुखी नही हो सकता यथा शत्रु गृहके अन्दर रहे हुवे प्राणीकों अनेक जातिके रसवती जोजन खिलाए जॉय, उत्तमोत्तम वस्त्राजूषणोसें विभूषित किया जाय किन्तु कजी सुखी नही हो सकता चूके वह यह समझता है कि मुझे अवश्य ये छुष्ट छःखमें छःखी करेंगे तयैव तूं इन मूल दो शत्रुओंके वश पमा हुवा अनेक क्रियाकाएम करने पर जी हरगीज सुखी नहीं होसकता है इस लिये इन छुष्ट शत्रुओंकों पराजय करके अपने निज स्वरूपमें रमण कर

इस प्रकार माध्यस्थ जावना जाते हुवे घोर शत्रु रागद्वेषकों निर्बल कर निज आत्मीय स्वरूपकों प्रकट करनेमे एक अनुठेही प्रयत्नशील पुरुष ये धन्य है गुरु पुङ्गव ! आप सदृश नर रत्नोसें ही यह पृथ्वी रत्नवती कहलाती है पाठकवरों ! अब मैं आपके " अप्रतिबद्धताका विशाल प्रजाव " इस विषयका किञ्चिद्विवरण आप लोगोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें प्रयत्नशील होता हूँ

॥ अप्रतिबद्धता का विशाल प्रजाव ॥

प्रतिबन्ध रहित यानी परतन्त्रता रहित अर्थात् स्वतन्त्रतासें प्रत्येक कार्यमें कुशलतापूर्वक विहार (गमन) करना उसें 'अप्रतिबंद्धता" कहते हैं

सज्जनों ! यह तो मशहूर ही है कि " पराधीन स्वपने सुख नाहीं देख विचार करो मन मांही" जो प्राणी यावत् परतन्त्र रहता है तावत् इच्छित कार्य करनेकों सर्वथा असमर्थ है, मनशासें निरुद्ध किसी प्रतिबद्धतामें रहना सरासर महा दुःख चस्मदीद (दृष्टिगोचर) है

स्वतन्त्र महात्मा जन इच्छित समय पर अपने नित्य नियम करते हैं अर्थात् इच्छा हो जब जाग्रित होते है इच्छा हो जब शयन करते है, चलते है, ऊठते है, बैठते है, जोजन करते हैं, जलपान करते है, सज्झाय ध्यानादि निर्जरा करते हैं

और दयावश परोपकारमें संलग्न रहते है तथैव खासकर आत्मिक स्वरूपमें निमग्न रहते है कहनेका तातपर्य यह है कि सदा सर्वदा अपने इच्छित टाइमपर सकल कार्य करते रहते हैं

यहां पर कोई जिज्ञासु महात्माका प्रश्न है की स्वतन्त्रता ही यदि आनंदकारी है तो व्यावहारिक व धार्मिक दोनो ही व्यवस्थाएं नष्ट भ्रष्ट होकर सकल जीव निर्पति बेल (साण्ड) के मुआफिक घूमते फिरेंगे और नाना प्रकारके अनर्थ करने लगेंगे और इस अवस्थामें पुत्रकों पिताकी आवश्यकता तथा शिष्यकों गुरु महाराजकी जरूरत नहीं होगी अतः यह विकल्परूप दृढ नियम स्वीकृत श्रेणीमें कैसे संघटित हो सकेगा

प्यारे जिज्ञासु महाशय ! आपका यह कहना अवश्य ही विचारणीय है इतना ही नहीं किन्तु अनुमोदनीय भी है देखिये थोडे ही शब्दोंमे निवेदन कर देता हू:—

मै पहिले ही प्रकट कर चुका हूँ कि "**मतशास्त्र से विरुद्ध किसी प्रतिबद्धतामें रहना सरासर महा दुःख उत्पादक है**" इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञानियोंकी दृष्टिमें हितकारी उपादेय साधनोंके हेतु पर तन्त्रताका होना स्वतन्त्रताही में शुमार है हमने यहापर उसही परतन्त्रताका निराकरण किया है कि जिससें अनेक दुःख प्राप्त होते है विद्वज्जनेषु किमधिकम्

खासकर गृहस्थोंके जगञ्जाल अर्थात् दाक्षिण्यतासें पृथक् रहना चाहिए कारण की क्यों ? गृहस्थोंके प्रपञ्चोंमें खुशियाली मनाते हैं सोंही सों शुद्ध क्रियासें अधिकाधिक विमुख होना पडता है इतनाही नहीं किन्तु हमारे गुरु भाई व शिष्य वर्गसें भी रूस्वार कटाकटी उठाना पडती है अफसोस ! आजकल अधिकांश मुनिवर्ग गृहस्थोंकी किस प्रकार दाक्षिण्यता रख रहे है कि जिसें देख दृढ धर्मानुरागी धर्मरूपी मेदान पर खडे हुवे थरायर थर्रा रहे हैं आज इस निंदनीय दाक्षिण्यता (लिहाज़) ने इतना

जुलुम किया है कि कइवार हमारे पवित्र गुरुमहाराजकी निर्मल आज्ञाकों नष्ट भ्रष्ट कर खुशामदी और मालदार मनुष्योंके पीछे २ घुमाती है देखिये:—

किसी मुनिराजकों जब अपने रागायकी प्रार्थना आती है उस वख्त समयज्ञ गुरुवर्य कितना भी रोकटोंक क्यो न करें किन्तु वे गृहस्थोंके अनुयायी उसका सर्वथा उपेक्षणा कर यह प्रकट करते है कि हमारे अमुक श्रावक बगैर नहीं चल सकता उनका दिलता रखना ही पड़ेगा चाहे आप खुश होकर इजाज़त दे या नाराज होकर हमें तो जाना ही होगा. इत्यादि

हायहाय! कितना जुलम कितना अन्याय, कितना गज़ब

इस प्रकार निर्लज्ञ शब्दोको उच्चारण करते तनिक भी शरम नही आती - हम नहीं समज सकते कि इस प्रकार उष्टाचरण करते हुवे अपने मुनि पदकों किस प्रकार उच्च शिखा पर पहुँचा सकेंगे इस कुत्सित व्यवहारके दृढानुरागी महात्मा लोग तीर्थंकर व गुरुमहाराजकी आज्ञाका उल्लंघन करते हुवे गृहस्थके पीछे दौड़ पड़ते है वहा जानेपर कइ एक प्रकारके सदोषी वस्त्र, पात्र, शयनादि वस्तुएं उपयोगमें लाते हैं तथा आधाकर्मी आदि हलाहल जहरसे भरा हुवा आहारपानी खाकर दुर्गतिका निगड़ बंधन करते हैं—वहारे वाह कलिकाल तेरी बलिहारी है अहा! धन्य हो मुनिराजों!! आपको मुहुर्मुहु धन्य हो!!! आपने अपने नरभव रत्नका खूब ही सदुपयोग किया

अन्य मुनिराजोका तो कुछ आचरण ही और है वे महानुभाव धनवान् और गरीबकों समान समझ कर तथा खुसामदी और तज्ञिकों सदृश मानकर इसही सिध्धान्त पर निर्भर रहते है कि **"सुनना सबकी करना 'दीलकी"** इसही तरह हमारे चरित्र नायक गुरुवर्य गृहस्थकी दाक्षिण्यताकों सर्वथा हटाकर स्वतन्त्रता पूर्वक अहर्निश सानंद विहार करते थे इससें आपकों कइ एक ऐसे २ उत्तमोत्तम गुण प्राप्त हो गए थे कि जो हमारे लेख सामर्थ्यसें बाहिर हैं तदपि उसमेंका एक सुन्दर नमुना पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करता हूँ:—

॥ भविष्य वाणीका साक्षात् प्रभाव ॥

किसी एक समयका प्रस्ताव है कि रात्रीके पिछले प्रहरमे आप गुरुवर्य निर्भर निद्रामे शयन किए हुवे थे उस समय उत्तम गुणशाली स्वप्नमें देखते क्या हैं कि एक दिव्य श्वेत वर्णवाला गइयोंका गोकुल मनोहर वाटिकामें फिर रहा है उसमें कइ एक गइयोंके छोटे २ सुन्दर वछुडे प्रेम पूर्वक अपनी माताओंके शरीरमें लिपट रहे है इस गो समुदायमें कइ एक शान्त मुद्राधारी वृध्दा, कइ एक दिव्य कान्तिवाली तेजस्विनी युवा गइयें थी और कइ एक जगतजन प्रिय अति सुन्दर वछडियेंथी देखते ही देखते इस सुन्दर शोभाके गुरुवर्यके नेत्र खुल पडे अर्थात् एकदम जाग उठे जागृत होते ही बराबर आप दिल ही दिलमें विचारते है कि इस उत्तम स्वप्नका क्या रहस्य है थोडी ही देरमें आप ने अपने ज्ञान बलसें उचित अर्थ स्थिर कर अपनी नित्य क्रियामें प्रवृत्त हो गये

प्रातःकालमें जिस समय उद्योत श्रीजी (जिसका कि जिक्र हम प्रकरण वशात् ऊपर कर आए है) वंदनार्थ आये उस समय सविनय वन्दना व्यवहार करनेके पश्चात् आप गुरुवर्यने अपनी सेवामें स्थिरता करनेका हुकुम वक्षीस किया साध्वीजी आज्ञा पाते ही पूज्यपाद गुरुवर्यके सन्मुख दोनो कर-जोड मस्तक नमन कर बैठी हुई है इस अवस्थामें उन दोनोके परस्पर स्वप्न सम्बंधि जो २ वार्त्तालाप हुवा उसें प्रश्नोत्तरमें सगुम्फित कर पाठकोंकी सेवामें पेश करता हूँ:—

गुरुमहाराजः—उद्योत श्रीः ! हमें गत रात्रीमें एक बडा सुन्दर स्वप्न संप्राप्त हुवा

साध्वीजीः—स्वामिन ! कृपापूर्वक फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—ध्यान पूर्वक श्रवण करना

साध्वीजीः—जी साहब ! फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—हमने गत रात्रीके ब्रह्म मुहूर्तमें एक मनोहर श्वेत गईयोंका गोकुल देखा इत्यादि आपने बडे ही मधुर शब्दोंमें सविस्तार वह स्वप्न फरमाया

साध्वीजीः—"सम्पूर्ण विषयको सुनकर मनही मनमे "ॐ हाहा!" कैसा विचित्र सुन्दर स्वप्न है इसका गम्भीर आशय क्या होगा इस अभिलापामें"—हे करुणारस जलधार! अनुग्रह पूर्वक इसका फलितार्थ फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—भद्रे! तुमही अपनी बुद्धि अनुसार कह सुनाओ

साध्वीजीः—हे प्रतापशाली पूज्य गुरुवर्य! मै तुच्छ बुद्धिधारका आप समान अद्भुत ज्ञानवन्त मुनि रत्नके सामने कथनकों उतनी ही असमर्थ हूँ कि जिस तरह चक्रवर्तिके सन्मुख पामर प्राणी कथन करनेको अशक्य होता है आनंद रसमें झिलानेवाले हे पूज्य गुरुवर्य! आपही अपनी अमृत वाणी द्वारा उपदेश कर कृतकृत्य कीजियेगा यही हार्दिक प्रार्थना है

गुरुमहाराजः—"दया लाकर"—हे विनयशीले! दत्त चित्त होकर श्रवण करना

साध्वीजीः—तहत्त स्वामी फरमाईयेगा

गुरुमहाराजः—पुण्यवते! गुरुदेवकी अतुल कृपासें तुमारी शिष्या समुदाय विस्तीर्ण रूपमें प्रफुल्लितावस्था अवधारण करती हुई प्रकट होगी पवित्र वीर शासनरूपी मनमोहन बगीचेमें विनय रसमें भरी हुई सुदीक्षित साध्वियें विचरती हुई दृष्टिगोचर होंगी उनके अनेक आवाल ब्रह्मचारिणी छोटी २ सुमनोहर दीक्षित बाल शिष्याएं शोभाकी समाप्त होंगी तथैव गुणशालिनी सौभागिनी (सधवाएं) साध्वियें एव शान्तरस धारिणी कइ एक पुण्यात्मा वैधाए होंगी इस विध नाना प्रकारकी विचित्र साध्वियोंसें यह शासनरूपी सुन्दर बगीचा खिल उठेगा इत्यादि विस्तार फरमाया

पाठकवरों! वे महानुभावा शासनोद्योतकारी तथा अपने असीम उप कारी गुरुवर्यका उज्वल यशः विस्तीर्णकारी एवं अपनी पुण्याईका ...

समझ इस प्रकार आनंद सागरमें निमग्न हुई कि हर्ष नीरसे नेन गद २ उर आये इस समय अनदका पारावार नही था इस हर्षित अवस्थामें साध्वीजी दोनो कर जोड़ सविनय प्रार्थना करते हैं:—

साध्वीजी:—धर्म धुरंधर, धर्मावतार, भूत भविष्य और वर्त्तमा-मानके उचितवेत्ता हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर! आप हमेंशां जयवन्ता वर्त्तो, आपके मुखकमलमें अमृत रस सदैव निवास करो; आपका उत्तम गुणशाली स्वप्न शीघ्र ही फल फूलोंसे खिल उठो हे नाथ! आपका पवित्र नाम इस अखिल संसारमें चिरकाल स्थित रहो हे स्वामिन्! आपने जो कुछ फरमान किया है वह मेरे समस्त अङ्गोपाङ्गके अशेष अवयवोंमें भ्रमण कर गया है आपके फरमानानुसार यह उत्तम सौभाग्य अवश्य ही संप्राप्त होगा ऐसा मुझे सुदृढ विश्वास है हे पूज्य गुरुवर्य! मुझमें यह सामर्थ्य नहीं की आपके अगण्य गुणोंको प्रदर्शित कर सकू हे प्रभो! आप पर मुहु-मुहु धन्यवादकी अविरल वर्षा करती हुई चरण शरण रूपी आनंद सागरमें निमग्न होती हुँ.

इस प्रकार आनन्दित वार्त्तालाप होनेके पश्चात् विनय पूर्वक वंदना नमस्कार कर साध्वीजी अपने स्थान पर प्रस्थान कर गए.

सज्जनों! आपके अपूर्व स्वप्नके महत्फल रूपी भविष्य वाणी आज हम साक्षात् अनुभव कर रहे है कि आपके पवित्र समुदायमें उद्योतश्री-जीकी शिष्या सन्तान रोज २ सेंकडोकी संख्यामें विभूषित हो रही है वे महानुभावाएं पवित्र गुरु आज्ञासे विभूपित हुई २ शासनमें चारों ओर अपने ज्ञान द्वारा हजारों भव्यात्माओंका उद्धार किया कर रही है यह उनही महात्माका अतुल प्रताप है—इस छोटेसे दृष्टान्तसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आप पूज्य गुरुवर्य अवश्य ही एक विशाल ज्ञानी थे अहाहा धन्य है! गुरुवर्य आपकी प्रतापशालिनी वाणी पुनः २ धन्य है

वीर पुरुष महानुभावों! इतने पर ही संतोष न कीजियेगा किन्तु आप स्वतन्त्र विचारोंमे ऐसे दृढशील थे की चाहे कितने ही उपसर्ग क्यों न आक्रमण करें, कितने ही संकट क्यो न सहना पडे किन्तु लेश मात्र भी चलविचल नहीं होते थे महानुभावों! दृढताके ऊपर इस स्थलपर मुझे एक कुतुहली व्यावहारिक दृष्टान्त स्मरण होता है जो कि हमें दृढशील बनानेमें एक परमोपयोगी होगा वही रसिक कथा पाठकोंके अभिमुख करनेमें प्रयत्नशील होता हुवा दत्तचित्त होकर पढनेकी सूचना करता हूँः—

॥ कुतुहलमें गुणाकर ॥

किसी एक विशाल शहरमें एक प्रतिष्ठित साहूकार रहता था धन धान्यादिसें परिपूर्ण पूरित था किन्तु सन्तानकी अप्राप्तिके हेतु खिन्न चित्त रहा करता था दैवयोगसें उसके वृध्धावस्थामें एक पुत्र प्राप्त हुवा जन्म महोत्सवादि बडे ही समारोहसें किये

एक समय साहूकारने यह विचार किया कि बचेको मधुर रस-प्रायः हानिकारक होता है अतः इसें इस समय कतई रोक देना उचित है, होंशियार हो जानेके बाद कुछ हर्ज नही यह सोच उस बचेको ऐसा भय डाल दिया कि "बचे मीठा खानेसे मनुष्य मर जाता है अतः तू मीठा कभी सेवन मत करना" यह मेरी हित शिक्षा दृढता पूर्वक अङ्गीकार करना पुत्र उसही तरह आचरण करने लगा जब कभी कोई उसें कहे कि बचे यह मीठा खाले तब वह ठीक यही उत्तर देता है कि "मीठा खानेवाला मर जाता है" अतः मै हरगीज नही खाता सज्जनों! इस प्रकरणकों यही पर ठोंभ द्वितीय प्रस्तुत विषया भिन्न प्रकरणका विवेचन करता हूँ

सेठने यह विचारा कि मेरी वृध्धावस्था है इस लिये पुत्रका शीघ्र ही विवाह कर बेटे बहुका सौभाग्य अनुभव कर लेना चाहिये यह सोच बाल्यावस्थामें ही किसी एक प्रसिध्द नग्रमें आबरूदार धनाढ्य सेठके यहा विवाह कर दिया अब ये सर्व सानद निवास करते हैं

काल सर्व न्नक्षीकी उपाधीसे उपमित होनेके कारण उस पुत्रके मातापिताओंको न्नी अपने ताइनातमें किये अर्थात् वह सेठ और सेठानी दोनोंने न्नवान्तरमें कूंच किया पुत्रको मीठा खानेकी रोकटोक की थी उस असावधानावस्था हीमें रखकर प्रस्थान कर गए अस्तु अब यह बालक और इसकी स्त्री दोनो ही रह गए समयानुसार यह सेठ पदवीको प्राप्त कर अपने अनेक सेवकोंके साथ सुख पूर्वक निवास करता है

एक समयका प्रस्ताव है कि इस सेठकी स्त्री अपने पितृगृह (पीयर) को गई हुई थी इस वख्त इसें अपने घर लानेकी प्रबल इच्छा प्राप्त हुई अतः अनेकाडवरसें अपनी अपनी पत्निको लेनेके लिये श्वसुर गृह (सुसराल) को जा पहुँचा प्रिय वाचक वृन्दों! अब दामाद (जमाई) जीकी किस २ प्रकार आगत स्वागत होती है इस विचित्र लीलाको सावधान होकर पढियेगा

यह लोक प्रसिद्ध है कि दामादके लीये अनेक प्रयत्न कर मिष्टानादि विविध प्रकारके मनमोहन न्नोजन बनाये जाते है चाहे अमीर हो चाहे गरीब हो, इसही तरह यहा पर न्नी उन जमाइजीके लिये अनेक रसवती न्नोजनोंकी तैयारी की गई उसमे अति स्वादिष्ट **केरीपाक (आम्रमुरब्बा)** न्नी था

जिस समय वे न्नोजन करने आसन स्थित हुवे उसही वख्त सर्व न्नोजनकी दरियाफ्त की पत्नि भ्राता (शाला) ने सर्वके नाम कथन करते हुवे सर्व प्रकारके मिष्ट न्नोजनोंको मात्र मीठेके नामसें ही व्यपदेश किया सुनते ही पाहुणेजीने हुकुम फरमाया कि मीठा २ सर्व दूर कर दो शेष न्नोजन रहने दो

शालेने बहुत कुछ समझाया किन्तु अपने निज हठमें दृढीभूत होनेसें कुछ न्नी स्वीकार न किया तब उनके कथनानुसार सर्व मिष्टान निकाल लिया, किन्तु केरी पाक विशेष रस संयुक्त होनेसें उसका कितनाक रस थालमें ही लिपटा रह गया दामादजीने अनुक्रमसें न्नोजन करना शुरु किया **"होनहार सदैव बलीयशी है"** इस न्यायानुसार उसका हस्त कमल उस रसमें जा गीरा न्नोजनके प्रवृत्ति नियमानुसार अङ्गुलिया चाटने लगा रसास्वादन होते

ही अपूर्व आनंद वश होकर मन ही मनमें विचारता हुवा भोजन कर अपने मुकाम पर विश्रामित हुवा ।

रात्रीके समय अपने शयन गृह (सोनेका कमरा) में पहुँचा वार्त्तालाप करते २ सेठजीने अपनी पत्निसें पूछा कि आज भोजनमें चित्तको एकदम तृप्त करने वाली कौनसा रसवती पदार्थ थी मुझे वही अमृत भोजन इस ही वख्त लाकर समर्पण कर

पत्नि:—स्वामीनाथ ! वह माधुर्य रसा पूरित केरी पाक था जब आपको इतनी इच्छा है तो उस वख्त भाइ साहेबने बहुत मनुहार की थी तब आपने क्यों न स्वीकार किया अब मै वह पदार्थ इस वख्त कहासें लाऊ रजनी व्यतीत हो जाने पर आपकी इच्छा पूर्ण करनेका प्रयत्न करूगा

पति.—अरे प्रिये ! सचमुच ही मेरा पिता शत्रु था कि जिसने बाल्यावस्थासें ही मुझे ऐसे मनमोहन रसवती भोजनसें वञ्चित रक्खा प्रिय पत्नि ! यदि तू ला दे तो उत्तम है वरना मुझे वह स्थान बता दे मै अपनी इच्छाके प्रबल वेगको रोकनमें सर्वथा असमर्थ हूँ

पत्नि.—प्राणनाथ ! मै तो लज्जावश उस स्थान पर इस समय नहीं जा सकती देखीये भोजन गृह (रसोडा) में एक छींका लटकर रहा है उस पर एक मिट्टीकी स्वच्छ हन्डी केरी पाकसे आपूरित हो रही है उसमेंसें जितनी इच्छा हो पानकर अच्छी तरह तृप्त हो जाईयेगा किन्तु भोजन गृहके बाहिर ही मेरे मातपिता वगेरा शयन किये हुवे है उनका पूर्ण खयाल रखियेगा

सज्जनों ! इच्छा एक ऐसी चीज है कि जो आगे पीछे कुछ भी नहीं सोचने देती इस वख्त अर्द्ध रात्री अपने निज स्थान पर समारूढ हो रही है वह केरी पाककी प्रबल इच्छावाला एक लाठी लेकर भोजन गृहमें जा पहुचा है पाठकगणों ! देखिये ज़रा इस विचित्र घटनाको सावधानतया पढियेगा

— वहा पर देखते क्या है की माला बहुत ऊँचा है हस्त पहुँचनेका असंभ

लक्षण सम्मुख उपस्थित हो रहा है तब आपने करकमलस्थ लकड़ीसे हंमीके नीचे थुराक कर दिया अब मुंह पसारे हुवे रसपान कर रहे है जब की आप पूर्ण तृप्त हो गए तब हन्डीसें अपनी मातृ भाषामें कहने लगे **"हॉमीजी बस करो ने बस करो"** इस प्रकार दो तीन वार कहा किन्तु हण्मी क्या समझ सकती थी अतः उसकी रसधारा बदस्तूर प्रचलित रही अनेक वार कहने पर भी जब रस प्रवाह शमन न हुवा तब एकदम तमोगुणसें प्रज्वलित होते हुवे अपनी प्रबल शक्ति द्वारा हण्मी पर दण्ड प्रहार किया कि जिसमें हंमी छिन्न भिन्न हो गई और उसमेका समस्त रस उसकेशरीरपर आ लिपटा

इस समय शरद ऋतु अपनी प्रचण्ड शक्तिकों इस प्रकार विस्तीर्ण कर रही थी कि सात २ पुट स्फोटन कर हृदय विहूल दशाकों सम्प्राप्त करती थी इस अवस्थामें वे जमाईजी जिसके कि केरीपाकका रस चारों ओर लिपटा रहा है जाम्के कारण एक रूई गृहमें जालेटे अर्थात्त एक रूईके कोठेमें दपट कर सो गए. **यच्चावितन्नवत्येव"** इस न्यायके अनुसार कितनेक तस्कर रूई चुराने आ पहुँचे स्वरावश वहाँ २ गठम्रियें बाधकर कूंच हुवे उनमेंसें एक गठडीमें आप हजरत भी बंध गये थे किन्तु रूईकी गर्मीके कारण कुछ भी भान न हुवा

चोर लोग गठम्रिये लेकर ज्यों ही शहरके बाहिर हुवे की पोलिस आ पहुँची उन चोर लागोंने जहा की कसाईकी गम्हरियें चर रही थीं वहा गठम्रिये फेंक दी और अपनी २ जान लेकर भाग पड़े चौरोंकों भगे हुवे जान पोलिस वापिस लौट गई

प्रातःकालमें जिस वख्त कसाई भेड़ियोंको लेने आया उस वख्त क्या देखता है कि एक मनोहर श्वेत बालवाला सुन्दर भेड़िया लेट रहा है—महानुभावों ! यह वही भेड़िया है कि जिसका शरीर केरीपाकके रससें संलग्न हो रहा है तथा उस पर चोतर्फ श्वेत रूई लिपट रही है—देखते ही इस सुन्दर भेड़ियेके कसाईने तत्काल गोदमें उठाकर कूंच किया इस समय उन सेठजीकी निद्रा पृथक् होनेसें जागृतावस्थाकों संप्राप्त हुवे कसाईके सर्व चिन्ह देखकर

एकदम घबराते हुवे कहते है हे जाई ! जरा दया करना मै जेमिया नहीं हू किन्तु मनुष्य हूँ इस पामर जीवकी रक्षा करना इस कथनपर कसाईने गोर कर उसे मुक्त किया

अब यह दामादजी शर्मिन्दे होते हुवे तालावमें स्नान मज्जनकर स्त्रीके पास पहुँचे स्त्रीने पूछा हे स्वामिन् ! रात्रीजर कहा व्यतीत किया लज्जावश कुछ जी उत्तर नहीं देता है किन्तु पत्निके अत्यन्ता ग्रहसें अपनी गुजरी हुई नौबत सर्व कह सुनाई स्त्रीन बहुत कुछ उपहास किया अब ये दोनो दम्पति वहासे प्रस्थान कर अपने शहरमें संप्राप्त हुवे

महानुजावों ! इतनी तकलीफ होने पर जी इसने यह दृढ किया चाहे सो हो किन्तु केरीपाक नामक मीठा अवश्य खाना चाहिये इतना ही नहीं किन्तु अब यह इस कदर शोकीने हुवा कि अपने सुसरालसें मिव्वे जर २ केरीपाक मगवाता है और खूब आनद पूर्वक अपना काल निर्गमन करता है गुणानुरागियों ! ज़रा देखिये एक और जी कौतुक अनुजव कराता हूँ

कालान्तरसें उस साहूकारकी स्त्री पुनरपि उसके पितृहकों गई और उसही तरह पीछेसें यह लेनेकों गया तथा तथैव जोजन सामग्री तैयार हुई उसमें श्रीखण्ड (शीखरणी) नामक मिष्ठान जी विद्यमान था, यद्यपि यह मिष्ट पदार्थका प्रेमी हो गया था किन्तु सर्व मिष्टानोका तो अब तक जी अप्रेमी ही था अतः सर्व मीठा थालमेसें निकलवा दिया पूर्ववत् इसें श्रीखण्डका किञ्चित् स्वाद आया तब प्रथमावस्थावत् अपनी स्त्रीको केरीपाकके अनुसरि श्रीखण्ड लानेका कहा किन्तु त्रपावश उसकी इनकारी पर वह खुद रवाना हुवा इस वख्त जमाईजीके नेत्रोंमें कुछ रातिदा (रात्रीमे नहीं दिखना) आने लग गया था वास्ते उसका स्त्रीके कथनानुसार पगडीका एक पल्ला अपने सोनेके पलङ्गपादसें बाध दिया व दूसरा करकमलमें लेकर रवाना हुवा और क्रमश उसही स्थान पर जा पहुँचा

प्यारे पाठकों ! शयनगृह और जोजन गृहके अन्तर एक गली पड़ती

थी दैव योगसें उस गलीमें निकलती हुई एक भैंस पगड़ीके मध्य भागको निगल गई जब वह दामादजी श्रीखण्डमें पूर्ण तृप्त होकर वापिस लौटने लगे कि पगड़ीका टूटा पल्ला हाथमें आ गया दिलमें बड़ा भारी दुःख हुवा किन्तु किया क्या जाय विचारा लकड़ीका सहारा लेकर चलने लगा भोजन गृहसें बाहर निकलते ही पेरमें इस प्रकार ठोकर लगी कि सासूजीके छाती पर धाकसा जा गिरा

सासूजी एकदम चमक कर चिल्लाने लगी "दोड़जो रे दोड़जो चौर है २ चौर है" यह घबराहट्का शब्द श्रवण कर सर्व कुटुम्ब जाग उठा अब अंधेरे ही अंधरेमें जमाईजीको पकड़ कर उलटी मुसकीयें बाध एक स्तम्भसें जकड़ दिये अब ऊपरसें धड़ाधड़ मरण्ड प्रहार करने लगे जमाईजीके तो देवता कूंच हो गये अर्थात् होंस हवाल बिगड़ गए घोर दुःख पूर्वक चिल्लाने लगा "अरे मैं थांको जमाई हूँ, बापरे मत मारोरे, छोड़ोरे, मरूंरे, हाय २ मने माररे" आदि अनेक विलापात करने लगा लेकिन वहा कौन सुनता है वे तो अविच्छिन्न तया धमाधम मार रहे है इस दुपमावस्थामें जमाईजीकी खाटली हो गई अर्थात् हड्डी २ टूट गई

प्रातःकाल होते ही सब लोगोंने देखा और यह कहने लगे अहो! ये तो अपने जमाईजी है गजब हो गया अब क्या किया जाय सब लोगोंने मिल कर क्षमा माङ्गी प्यारे पाठकों! जमाईजी तो मरण तुल्य हो गए इधर एक तर्फ तो सबको दुःख होता है दूसरी तर्फ इतनी हंसी छूटती है कि उदरमें समाती नहीं मारे हंस २ कर लोटपोट हो रहे अस्तु

दामादजीका माकुल इलाज कर बाया गया पुण्योदयसें शारीरिक व्यथा दूर हुई स्वास्थ्य ठीक हो गया इस समय ये दोनो दम्पति पूर्ववत् अपने गृह पर संप्राप्त हुवे अब आप खास कर केरीपाक और श्रीखण्डको खूब सेवन करते हैं इतना ही नहीं किन्तु सर्व प्रकारके मिष्ट भोजन सेवन करते हुवे आनंदपूर्वक निवास करते हैं

प्यारे मुमुक्षुओं ! आपकों इस कौतुकी लघु दृष्टान्तसे यह सम्यक् परिज्ञात हो गया होगा कि वह साहूकारका लड़का उन मिष्ट पदार्थोंमें किस प्रकार आसक्त हुवा था कि जिससे अनेक प्रकारके कष्ट* गुजरने पर भी वह उन उत्तम भोजनोंके सेवनसे विमुख न हुवा

इसही प्रकार प्राणी मात्रकों सामायक, पौषध, प्रतिक्रमण, देशव्रत, महाव्रत, नौकारसी, एकाशन, निविगय, आँयबिल, उपवासादि तपस्या; पठन पाठन, देव दर्शन, गुरु दर्शन, स्वोपकार, परोपकार, ज्ञान, ध्यान और ये गाभ्यासादि क्रियाओंसें कदापि स्खलित नहीं होना चाहिये इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक उचित कार्योंमें ऐसा सुदृढ रहना चाहिये कि चाहे प्राण भी क्यों न चले जाय किन्तु स्वीकृत नियमसें स्वप्नमें भी च्युत न हों महान् पुरुषोंका यही विजयकर अटल सिद्धान्त है.

गुणशीलों ! इसही प्रकार हमारे वे पूज्यपाद अपने अप्रतिबद्ध विहारमें इस प्रकार सुदृढ थे कि इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र भी उन्हे चलविचल करनेमें सर्वथा असमर्थ थे

अहाहा ! धन्य हो मुनि पुङ्गव ! इस पञ्चम कालमें चतुर्थ कालका किञ्चित् रसास्वादन करने व करानेमें आप भी एक अनुठेही मुनि रत्न प्रतीत होते है आपका जगत प्रिय अप्रतिबद्ध विहार बुदिजन प्रशंनीय है इतना ही किन्तु विश्व अनुमोदनीय व अनुसरणीय भी है.

महानुभावों ! आपने अपने पवित्र मानव भवकों सार्थक करते हुवे अनेक भव्यात्माओंका अकथनीय उध्धार किया आपने मुनि पद धारण कर ज्ञान, दर्शन और चारित्रकों इस प्रकार उज्ज्वल किये कि जिसकी बराबरी विरले पुरुष ही कर सकते होंगे आपकी भव्य शान्त मुद्रा चिरकालीय क्रोधरूपी

* अनेक कष्टोंमेंसे एक दो इसमें उद्धृत भी कर दिये गए है शेष अन्यत्र स्थानसें जानना चाहियें

हलाहल विषको तत्काल नष्ट भ्रष्ट कर देतीथी आपका गाम्भीर्य गुण जगत जनकों बलात् आनंद सागरमें निमग्न कराता था इत्यादि सज्जन पाठकों! अनेक दिव्य गुण विभूषितये भवोद्धारक ३८ वर्ष ४ माह १४ दिवश निर्मल चारित्र पालन कर भूतलमें अपना मनमोहन पवित्र नाम चिरकालीय कर इस ससार (भव) से चलवसे

॥ भवान्तरमें उत्तम प्रस्थान ॥

वे धर्मावतार इस पृथ्वी मण्डलपर अपने प्रशस्त गुणोंका विशाल प्रभाव विस्तृत करते हुवे वीर सम्वत् २४१२ विक्रम सम्वत् १९४१ माघ कृष्ण शुभ चतुर्थी शनिश्चर वार वमुजिव तारीख २३ जान्युआरी सन् १८८६ के प्रात कालें शुभ योगमें मरुस्थलके विशाल शहर योधपुर राज्यान्तरगत सुप्रसिद्ध नगर फलवर्द्धि (फलोदी) में अपनी देहकों साग कर चतुर्विध आहार, वस्त्र, पात्र, और देहादि समस्त पदार्थोंका त्रिविध २ साग कर परलोक पधार गए.

अररररर! जिस प्रकार जगदाधार वीर परमात्माके मोक्षपधारने पर हमारा भवोद्धारक मारतण्ड अस्त हो गया जिससे चारों ओर अन्धकार छा गया था तथैव हमारे अत्यासन्नोपकारी पूज्य गणाधीश्वरके परलोक पधार जानेसें हमारा समुदायरूपी पृथ्वीतल घोर अन्धकारसें पूर्ण आच्छादित हो गया था इतना नहीं किन्तु जैन समाजके अधिकांश हिस्से रूपी भूमण्डलमें एकवार तो अन्धकारने अवश्य ही अपना विकराल रूप पसारा था इस असह्य दुःखावस्थामें गुणानुरागी लोग शोक सागरमें चारों ओर गोता मारने लग गए थे, आपकी वियोगावस्थाके खास समयमें अकथनीय दुःखका होना यह तो स्वभाविक ही सिद्ध है किन्तु आज भी जब हम अपने उन पूज्य प्राणाधारके वियोगावस्थाका दिलि चिन्तन करते हैं कि तत्काल ही हमारे नयन युगल गद २ भर आते हैं

और उनमेंसे अश्रुपातोंकी अविरल धाराए छूटने लगजाती है इसमें संदेह नहीं कि एक बार तो भक्त जनाको वैसा ही सदमा पहुँचा कि जैसा वीर परमात्माके लिये गौतम स्वामीको पहुचा था यह प्रसस्त प्रेमका ही प्रभाव समझा जा सकता है

हमें माण वियोगमें भी असीम दुःखके साथका साथ ही अथाह हर्ष भी प्राप्त हो रहा है कि पूज्य महर्षि अपने अनूठे जीवनको कृतार्थ कर पृथ्वी तलको पवित्र करते हुवे अनेक अपूर्व गुण रत्नोंका भरपुर भंडार लेकर भवान्तरमें पधार गए

यह तो स्वतः सिद्ध है अर्थात् दृढ अनुमान है कि ऐसे अद्वैत योगीश्वर जघन्यमें उत्तम वैमानिक पदसे विभूषित हुवे होंगे तथा उत्कृष्टतः महा विदेहमें परम परमात्मा अर्हन् देवके चरण शरण हो गए होंगे और वहा उनकी निश्राईसे अपने आत्म गुणोंमें रमण करते हुवे शीघ्र ही निष्टितार्थ पद (सिद्ध पद-मोक्ष) को समाप्त कर अजर, अमर, अविनाशी निरंजन निराकार ज्योति स्वरूपमें रमण करते हुवे अनंतकाल पर्यन्त अनंत दिव्य सुखोंमें झीलते रहेंगे.

महानुभावो ! मैंने आन्तरिक भक्ति वश होकर अपने अल्प बुध्यानुसार स्वकीय आत्म लाभार्थ तथा अन्य भव्यात्माओंके हितार्थ ऐसे पूज्य गुणशाली गुरु महाराजके " संक्षिप्त जीवन चरित्र " की रचना कर अपने मानव भवको कृतार्थ किया

हे विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर ! आपके दिव्य अगण्य गुण इस प्रकार विस्तृत है कि जिसका पारा वार नहीं मैं अल्पज्ञ तो क्या किन्तु सरस्वती भी यदि अनेक प्रौढ महा पारा पार पाना चाहे तो सर्वथा असमर्थ है. यथाहीः—

(श्लोक)

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धु पात्रे ।
सुर तरुवर शाखा लेखनी पत्र मुर्व्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं ।
तदपि तव गुणाना मीश पारं न याति ॥१॥

भावार्थः—हे स्वामिन्! यदि अथाह समुद्र-रूपी पात्र-रत्नाकर उसमें, सुमेरु पर्वत जितना कज्जलका ढेर किया जाय और पृथिविके बरोबर पत्र पर कल्प वृक्षकी प्रधान शाखा लेखनी ग्रहण यदि सरस्वती अपनी प्रबल शक्ति द्वारा समस्त कालय लिखती हो रहै किन्तु तदपि आपके अगण्य दिव्य गुणोंका पार नहीं पा सकती है अर्थात् आपके अद्वैत गुण अपरंपार हैं.

प्यारे सज्जनों! हमें यह सुदृढ विश्वास है कि हमारे साहित्यानुरागी पाठक श्रेष्ठ ऐसे उत्तम योगीश्वरके इस संक्षिप्त जीवन चरित्रको पढकर मनन पूर्वक गुण ग्रहण करेंगे और उनके अनुसार आचरण करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण करेंगे

प्यारे पाठक वरो! यह चरित्र पूर्ण करनेके साथ ही साथ मैं यह शुभ भावना भाता हूं कि आप नाथका पवित्र नाम इसपृथ्वी तलमें सदैव जयवन्ता वर्त्तो

॥ शुभम् भूयात् ॥

ज्ञान रसिकों! अब मैं आपके प्रभावशाली जयन्तीका किञ्चिद्विवरण पाठकोंके अभिमुख करता हूँ आशा है कि आप सज्जन गण प्रेम पूर्वक पढ़ेंगे

॥ प्रभावशाली गुरु जयन्ती ॥

निर्वाण कल्याणक (काल प्राप्तक शुभ दिवस) वा जन्म कल्याणकके शुभ मिति पर प्रतिवर्ष अनेक प्रयोगोसें दिव्य गुणोंकी प्रभावना करते हुवे शासनके उद्योतके साथही साथ आप खुद तपादि विशिष्ट गुणोंकों अवधारण करे तथा अन्य भव्य प्राणियोंको नानाविध व्रत प्रत्याख्यान करवा कर. उन के मानव भवकों कृतार्थ करावें एवम् आराधन करनेवालेकी अनुमोदना करते हुवे यह पवित्र दिवस महोत्सव पूर्वक निर्गमन करे उसे **"जयन्ती"** कहते है

प्यारे पाठकवरों! हमारे महान् अन्तराय कर्मके प्रबल उदयसें यह अपूर्व सौभाग्य आपके भवान्तर पधारनेके सत्ताइस वर्षोके पश्चात् हमे संप्राप्त हुवा अर्थात् वीर सम्वत् २४४० विक्रम सम्वत् १९७० में आपके काल प्राप्तके निज स्थान (**फलोदी**) पर प्रथम जयन्तीका सुअवसर संप्राप्त हुवा

द्वितीय जयन्ति महोत्सव वीर सम्वत् २४४१ वि स १९७१ में बडे ही समरोहके साथ सुप्रसिद्ध शहर **विक्रमपुर (बीकानेर)** में हुवा

तृतीय जयन्तीका पवित्र सौभाग्य वीर सं २४४२ वि स १९७२ में राजपूतानेके केन्द्रस्थान सुप्रसिद्ध **अजमेर** में बडेही समारोहके साथ संप्राप्त हुवा इसमें संदेह नही की यह दृश्य एक अवश्य ही दर्शनीय था

तीनो ही जयन्तियों मे यथोचित पूजन प्रभावना, रथ यात्रादि उत्सव बडे ही समारोहके साथ हुवे तथा, उपवास, आंबिल, एकाशन्, रात्री भोजन त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, सामयक पौषध, प्रतिक्रमणादि नानाविध प्रत्याख्यान सेंकडों भव्यात्माओंने अवधारण कर अपने मानव भवकों कृतार्थ किये

यह प्रभावशाली जयन्ती दिन बदिन तरक्कीको संप्राप्त हो रही है प्रथम जयन्तीसें द्वितीय अधिक उत्सवके साथ आराधन की गई तथा द्वितीयसें तृतीय विशेष महोत्सवके साथ आराधन कर अपना मानव भव पवित्र किया

गुरुदेवसे अहर्निश सविनय यही प्रार्थना है कि उन पूज्यपाद गणाधीश्वरकी जयन्ती प्रति वर्ष विशाल दिव्य स्वरूपमें वृद्धिगत होती रहे

वाचक वृन्दों! अब मैं चरित्रनायक पूज्यपद गणाधीश्वर **श्रीमान् सुखसागरजी महाराज साहब शासनाधीश्वर परम परमात्मा श्री महावीर स्वामीकी शुद्ध परंपरामें** किस प्रकार संलग्न हैं इसे प्रकाशित करनेके हेतु **शुद्ध गुर्वावली** संक्षिप्त रूपेण प्रदर्शित करता हूँ इसके साथही साथ पूज्य गुरुवर्यकी शीतल छायामें निवास करनेवाला **सुन्दर समुदायका** भी किञ्चित् परिचय देनेमें प्रयत्नशील होता हूं

॥ मोहन गुर्वावली ॥

जगत्पूज्य, जगद्गुरु, जगन्नाथ, जगदाधार, परम प्रभु, सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, पूर्ण ब्रह्म, त्रिकाल स्मरणीय चतुर्विंशतितम तीर्थंकर, अर्हदेव **"श्रीमन् महावीर परमात्मा"** हुवे

तत्पदे चतुर्ज्ञानधारी, चतुर्दश पूर्ववेत्ता, द्वादशाङ्गी रचयिता, सम्यक्त्व रङ्ग रङ्गिता, आत्म भावन परायणादि गुणैर्विभूषित **"श्री गौतमस्वामी"** किन्तु उनके समस्त शिष्य केवल ज्ञान पाकर मोक्ष गये अतः उनकी परंपरा नही चली इसही लिये वीर परमात्माके फरमानानुसार आपके पद पर **श्री सौधर्मस्वामी"** हुवे ॥ २ ॥

तत्पट्टे **"श्री जम्बुस्वामी"** हुवे—आपके मोक्ष पधारनेके पश्चात् १ मन-पर्यवज्ञान २ परमावधि ज्ञान ३ पुलाकलब्धि ४ आहारका शरीर ५ क्षपक श्रेणी ६ उपशम श्रेणी ७ जिनकल्प मार्ग ८ परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात चारित्र ९ केवल ज्ञान १० सिद्धिमार्ग ये दश वस्तुए विच्छेद हुई॥३॥

तत्पट्टे **"श्री प्रभवस्वामी"** ४। तत्पट्टे दशवैकालिक कर्त्ता **"श्री**

शर्कंभन्नवसूरो " ५॥ तत्पट्टे "**श्री यशो भद्रसूरि**" ६ । तत्पट्टे श्री सम्भूतिविजयजी ७ । तत्पट्टे उपसर्गहर स्तोत्र, आवश्यक निर्युक्ति, कल्प सूत्रादि अनेक ग्रन्थ कर्त्ता चतुर्दश पूर्वधारी द्वितीय लघु भ्राता "**श्री भद्रबाहूस्वामी**" हुवे ८ । तत्पट्टे कोशा वैश्या प्रतिबोधक प्रचण्डशील व्रतपालक "**श्री सुस्थितसूरि**" ९ । तत्पट्टे श्री आर्य महा गिरी १० । तत्पट्टे द्वितीय लघु भ्राता श्री आर्यसुहस्तिसूरि हुवे ॥ ११ ॥

तत्पट्टे क्रोमवार सूरि मन्त्रका जाप करनेवाले श्री **स्थितसूरि** हुवे जैन समदायमें आप महानुभावसें कौटिक गच्छ सुप्रसिद्ध हुवा ॥ १२ ॥

तत्पट्टे श्री इन्द्रदिनसूरि १३ तत्पट्टे श्री दिन्नसूरि १४ तत्पट्टे जाति स्मरण ज्ञानवान् श्री सिंहगिरीजी १५ ॥

मध्यमें श्री वृद्धवादीसूरिके एक असाधारण न्यायाचार्य **श्री सिद्धसेन दिवाकर** हुवे आप श्रीने सुमनोहर मालव देशमें उज्जयनी नगरीके अन्दर महाकाल नामक मन्दिरमें प्रभाविक **श्री कल्याणमन्दिर** स्तोत्रकी रचना की और उसके द्वारा **शिवलिङ्ग को स्फोटनकर परम परमात्मा श्री पार्श्वनाथस्वामीका दिव्य बिम्ब प्रकट किया** तथा राजा विक्रमकों सदुपदेश देकर पवित्र जैन धर्मी बनाया—आप पूज्यने अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर जैन समाज पर परमोपकार किया है

तत्पट्टे बाल्यावस्थासे ही जाति स्मरण अवधारण करनेवाले **श्री वज्रस्वामी** हुवे अपके पश्चात् दशम पूर्व और चतुर्थ संहननादि विच्छेद हुवे आप बुद्धि विचक्षणासें वज्र शाखा प्रचलित हुई १६ । तत्पट्टे श्री वज्रसेनाचार्य १७ तत्पट्टे **श्री चन्द्रसूरि** हुवे आप प्रभावशालीमें चन्द्रकुल स्थापित हुआ १८

तत्पट्टे श्री समतभद्रसूरि १९ तत्पट्टे श्री देवसूरि २० तत्पट्टे श्री प्रद्योतन-

सूरी २१ तत्पट्टे शान्तिस्तव कर्त्ता श्रीमान् देवसूरि २२ तत्पट्टे भक्तामरादि कर्त्ता श्रीमानतुङ्गसूरि २३ तत्पट्टे श्री वीरसूरि २४ ॥

इसके अन्तरमें लोहितसूरिके प्रखर विद्वान शिष्य **परम पूज्य श्रीमान देवर्द्धिगणि क्षमाक्षमण हुवे** आप विशाल ज्ञानीने **वल्लभी नगरीमें** समस्त आचार्यादिकोंको इकत्रितकर वीर निर्वाणके ९८० वर्ष पश्चात् **सर्व शास्त्र लेख प्रवृत्तिमें प्रचलित किये**—आप पूज्यका यह महानुपकार अखिल जैन समाजकों चिर स्मरणीय है

तत्पट्टे जयदेवसूरि २५ तत्पट्टे श्री देवानंदसूरि २६ तत्पट्टे श्री विक्रमसूरि २७ तत्पट्टे श्री नरसिंहसूरि २८ तत्पट्टे श्री समुद्रसूरि २९ तत्पट्टे श्रीमान देव-सूरि ३० तत्पट्टे श्री विबुधप्रभसूरि ३१ तत्पट्टे श्री जयानंदसूरि ३२ तत्पट्टे श्री रविप्रभसूरि ३३ तत्पट्टे श्री यशोभद्रसूरी ३४ तत्पट्टे श्री विमलचन्द्रसूरि ३५ तत्पट्टे **श्री देवसूरि** आपसें **सुविहितपक्ष** प्रसिद्ध हुवा ३६ तत्पट्टे श्री नेमिचन्द्रसूरि ३७ ॥

तत्पट्टे **श्री उद्योतनसूरीश्वर** हुवे आपने **चौरासी गच्छोंकी स्थापना** कर श्री वीर शासनका अनुपम उद्योत किया देखिये:—

आप महानुभावकों एक अद्वैत विद्वान् समझकर अन्यत्रवासी मुनिराजो के ८३ शिष्य आपकी सेवामे पठनार्थ हाजिर हुवे अब ये सर्व छात्र सज्जन आगमोंका अभ्यास भलीव प्रकार करते हैं क्रमशः मालव देशके श्री संघके साथ पवित्र **तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी**की यात्रा कर अपने मानव भ-वकों कृतार्थ किया, **ऋषभ जिनेश्वर**को वंदना नमस्कारकर वापिस लौटते समय **सिद्धवड़**के नीचे रात्रीमें स्थित रहे मध्य रजनीमें आप क्या देखते है कि रोहणी नक्षत्रके विमानमें बृहस्पति प्रवेशकर रहा है यह शुभ अवसर देख आपने फरमाया कि इस वक्त ऐसा उत्तम योग है कि जिसके मस्तक पर हस्त स्थापन किया जाय वह वर्मी ही प्रसिद्धताकों अवधारण करेंगा यह

सुवचन सुनके ८३ ही शिष्योंने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप हमारे विद्यागुरु हैं हम आपहीके सेवक हैं कृपया हमारे पर ही हस्त स्थापन कीजियेगा तब सूरीश्वरजीने फरमाया वासक्षेप लेआओ उन शिष्योंने तत्कालही काष्ट व कन्डेका चूर्ण कर हाजिर किया गुरुमहाराजने उस चूर्णकों मंत्र कर उन ८३ योंके मस्तकपर प्रक्षेप किया पश्चात् आपश्रीने अपनी अल्पायुष्य जान प्रातःकालमें ही अनशनकर स्वर्गवास पधार गए तदनन्तर आपके वासक्षेपीय शिष्य क्रमशः आचार्य पद पाकर विचरने लगे इस प्रकार आपके निज शिष्य श्रीवर्धमान सूरीश्वर सहित ८३ मिलाकर चौरासी गच्छ प्रचलित हुये आपश्री उद्योतन सूरीश्वर चौरासीही महा प्रभावशाली आचार्योंके सद्गुरु थे ३८ ॥

तत्पट्टे श्री वर्द्धमानसूरि हुवे आपने अपनी शक्ति द्वारा धरणेन्द्रकों आराधन किया और श्री सिमन्दिरस्वामिके पास भेजकर सूरि मन्त्र शुद्ध करवाया. ॥ ३९ ॥

तत्पट्टे महा प्रभावशाली खरतर पद विरुदधारी जैन गगन मार्त्तण्ड श्री जिनेश्वरसूरि हुवे. आपका कितनाक निबन्ध यहा-पर उद्धृत करता हूं:

एक समय आप अपने भ्राता बुद्धिसागरजी सहित मरुस्थलसे विहार कर गुर्जर देश (गुजरात) अणहिलपुर पट्टणमें पधारे वहा पर दुर्लभ राजा का पुरोहित शिवशर्म्मा ब्राह्मण जो कि आपका पूर्व मातुल (मामा) था उसें एक शब्दों में ही चमत्कार दिखलाकर उसके घर सानंद निवास करते रहे

आपका शुभागमन सुनवहाके चैत्यवासी (शिथिलाचारी) घबरा उठे उन्होंने यह सोचा कि ये बड़े भारी ज्ञानवान् और क्रियावान् हैं इन्हे किसी तरह निकलवा देना चाहिये वर्ना अपनी बड़ी दुर्दशा होगी यह विचार दुर्लभ राजाकों जा भिमाया कि महाराज ! आपके पुरोहितके वहा चौर लोग

दिल्लीसें आकर रहे हुवे हैं उन्हे निकलवाना चाहिये सुनते ही राजाने तत्काल उस पुरोहितकों बुलाकर पूछा कि तुमारे घरमे चौर है ऐसा सुना जाता है उसने उत्तर दिया स्वामिन् कहनेवाले ही चौर है वेतो परम संवेगी, परम त्यागी, ध्यानी योगीश्वर है यह सुन राजाने उनके शुध्दाचार विलोकनार्थ उन महात्माकों बड़े ही सत्कारके साथ पदार्पण करवाया गुरुमहाराजने राज सभामें पधारते ही रजोहरणसें भूमि प्रमार्जन कर इर्यापथिक प्रतिक्रमी और अपनी कम्बली बिछाकर विराज गए

राजा इस श्लाघनीय आचारकों देखकर आनदित होता हुवा कहने लगा कि अहाहा ! सद्गुरु इसही प्रकारके होते है चैत्यवासियोंके पतिताचार देख आप पूज्यपादकों प्रार्थना की कि हे जगत्पूज्य ! सद्गुरुका आचारोपदेश करियेगा गुरुमहाराजने फरमाया राजन् ! मै अपने मुखसे क्या कहूं तुमारे सरस्वती भण्डारमें सर्व मतके स्वरुप प्रकाशक ग्रन्थ विद्यमान है अतः यदि तुमारी इच्छा है तो निर्मल जलसे स्नान की हुई कुमारी कन्या द्वारा मङ्गवाना समुचित होगा राजाने उसही तरह कुमारीकों सरस्वती भण्डारमे भेजी अनायास दशवैकालिक सूत्र ही उपलब्ध हुवा मान्यवरों ! बगैर बतलाए हुवे ही अचानक साधु आचारका ग्रन्थ मिलना यह भी आपका एक सुप्रभाविक चमत्कार है

राज सभामें ग्रन्थ आते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि यह इन चैत्यवासियोंके हाथमें देकर इनहीसे बचाया जाय अब वे लोग बॉच रहे है किन्तु साधुओके सदाचारवाले पत्रके पत्र छोडने लगे यह विलक्षण घटना देख गुरुमहाराजने फरमाया राजन् ! तुमारी सभामे दिनकों ही चौर निवास करते है इत्यादि सुन राजाने कहा आपही बाचियेगा गुरुमहाराजने फरमाया इस अवसरमें मेरा बांचना उचित नहीं तुमारे निष्पक्षपाती विद्वान् ब्राह्मणोसे ही बचाओ

ब्राह्मणोने यथार्थ बाचकर सभाकों श्रवण कराया सकल समाज सहित

सुनतेही राजाने अति प्रसन्न होकर कहा "अतिखराएते" ये बड़े खरे है (विशुद्ध दृढ हैं) इसही वख्तसें अर्थात् वीर सम्वत् १५५० विक्रम सं. १०८० में दुर्लभ महाराजाकी महा सभामें पराजय हुवे चैत्यवासियोंकों "कुंवला" नामसें व्यपदेश हुवा और परम पूज्य गुरुवर्य श्रीमान् जिनेश्वरसूरिश्वरकों खरतर विरुद महा पदसें विभूषित किये ॥४०॥

तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि आपने दिल्ली शहरमें बहुतसे श्रीमालियोंकों व कइएक राजवर्गीयोंकों प्रतिबोध देकर शासनकी प्रभावनाकी जिन राजवर्गियोंकों आपने श्रावक बनाये उनका महतियान् गौत्र स्थापन किया इस अवसरमें पद्मावती देवी प्रकट होकर प्रार्थना करने लगी कि हे पूज्य गुरुवर्य! "जिनचन्द्र" यह नाम बड़ाही प्रभावशाली है अतः आपकी शुभ परम्परामें चौथे पट्ट पर अवश्य देते रहियेगा ॥ ४१ ॥

तत्पट्टे आप महानुभावके लघु भ्राता महा प्रभावशाली श्री अभयदेवसूरीश्वर हुवे आपने शासन देवीकी प्रार्थनासें प्रभाविक जयतिहुअण स्तोत्रकी अपूर्व रचना कर स्तम्भनक महा तीर्थ प्रकट किया तथा नौ अङ्गोकी अपूर्व संस्कृत टीका कर जैन समाजपर अविस्मरणीय उपकार किया आपने प्राकृत और संस्कृतके अनेक ग्रंथोंकी रचना की है ॥४२॥

तत्पट्टे श्री जिन वल्लभसूरि हुवे आपने संघ पट्टादि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की अनुमान दश हजार बागड़ियोको प्रतिबोध देकर श्रावक बनाए चित्रकूट नगरमे चामुण्डा देवीकों प्रतिबोध दिया आपके सदुपदेशसें अनेक जिन भुवनोसें यह पृथ्वी विभूषित हुई इस प्रकार प्रभाविक समझ शासन देवीने पूज्य गुरुवर्यसे यह प्रार्थना की कि अबसे आपकी पट्ट परपरासे आचार्यके नामके पूर्व प्रभावशाली "जिन" शब्द अन्वित करते रहियेगा

आप कृपावतारसें **"मधुकर खरतर शाखा"** प्रचलित हुई **यह प्रथम गच्छ भेद हुवा.** ॥ ४३ ॥

तत्पट्टे चौरासी गच्छ शृँगारहार जंगम युगप्रधान भट्टारक दादासाहेब **श्री जिनदत्तसूरिश्वर हुवे.** उन प्रतापशाली वीर पुरुषका संक्षेपतः विवरण, इस स्थल पर उध्धृत करनेका प्रयत्न करता हूँः—

धंधुका नगर निवासी हुवम्म गोत्रीय वाछगमन्त्री पिताके कुलमें वाहम देवी मातेश्वरीके रत्न कुक्षीसें वीर सं १६०७ विक्रम स० ११३७में **सोमचन्द** नामक सुपुत्र समुत्पन्न हुवे आपने परम वैराग्यतासे वीर सं० १६११ वि०स० ११४१ में धर्मदेव उपाध्यायजीके पास दीक्षा अङ्गीकार की।

एक समय सारङ्गपुर नगरमें आप गुरुवर्यने कुअरपाल उपाध्यायजीको अनशन करवाया जिसके प्रतापसें वे देव पदको समाप्त हुवे आचार्य पदवीके प्रथम ही उस देवने प्रकट होकर कहा कि सोमचन्द्रको आचार्य पदवी प्राप्त होगी उसके तीन मुहूर्त्त हैं प्रथम मुहूर्त्तमें मृत्युका योग है द्वितीयमें गच्छ भेद है और तृतीय अति श्रेष्ठ है यह कहकर अदृश्य हो गया. **"यद्भाविलभवत्येव"** इस न्यायसे भ्रमवश द्वितीय मुहूर्त्तमें ही वीर सं० १६३९ वि० स० ११६९ में चित्रकुट नगरमें श्री देवभद्राचार्यजीने सूरि मन्त्र देकर आप श्रीको **आचार्य पदसें** विभूषित किये और **"श्री जिनदत्तसूरीश्वर"** इस नामसे अलङ्कृत किये आप प्रतापशालीको द्वितीय मुहूर्त्तमें आचार्य पद संप्राप्त होनेसे देववचनानुसार वीर सं० १६७४ वि० सं० १२०४ जिन शेखराचार्यसें **रुद्रपल्लीय खरतर शाखा** प्रचलित हुई **यह द्वितीय गच्छ भेद हुवा** आप पूज्यपाद गुरुवर्यने अनेक प्रभावशाली कार्य किये जिनमें कितनेक नमुने इस स्थान पर उध्धृत करनेका प्रयत्न करता हूः—

एक समय आप पूज्य सूरीश्वरने अपने मन्त्र शक्ति द्वारा चित्रकूट नगरमें

देवगृहके वज्र स्तम्भमें रहा हुवा अनेक मन्त्रों की आम्नायका पुस्तक तथा उज्जयनीयमें महाकाल मन्दिरके स्तम्भमें रहा हुवा श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका **विद्याग्रन्थ** ग्रहण किया

एक दिनका प्रस्ताव है कि आप उज्जैनमे व्याख्यान वाँच रहे थे उस समय श्राविकाओंका रूपकर चोषठ **योगिनियें** छलनेके लिये आई इन्हे श्रावकोसे उपयोग किये हुवे ६४ पट्टो पर आप गुरुवर्यने मन्त्र द्वारा खीलदी उस वख्त उन्होंने अति प्रसन्न होकर **सप्त वरदान** दिये तथा सातोंही उनके प्रयोग दिखलाए–तद्यथा:—

॥ सप्त वरदान ॥

(१) प्रत्येक ग्राममें खरतर गछीय श्रावक दीप्तिमान् होंगे
(२) खरतर श्रावक प्रायः निर्धनन होंगे
(३) संघमे कुमरण नही होगा
(४) अखण्ड शील व्रत पालन करनेवाली साध्वी ऋतुमति नहोगी (Monthly cource)
(५) खरतर संघको शाकिन्यादि नही छलेंगी
(६) जिनदत्तसूरीश्वरका नाम स्मरण करनेसें विद्युत (विजली) वगेराका पतनादि उपसर्ग न होगा
(७) खरतर श्रावक सिंधु देशमें जानेसें धनाढ्य होंगें

॥ सप्त वरदानके सप्त प्रयोग ॥

(१) सिंधु देशमें जानेसें गछ नायककों पंज नदी साधना चाहिये
(२) सूरि पद धारककों नित्य दोसो वार सूरि मन्त्रका जाप करना चाहिये
(३) मुनिराजकों नित्य दो हजार नमस्कार मन्त्रका जाप करना चाहिये
(४) खरतर श्रावकको दोनो काल सप्त स्मरणका पाठ करना चाहिये

(५) श्रावककों प्रति दिवस तीन खिचड़ी (एक मनके पर एक नमस्कार और एक उपसर्ग हर स्तोत्र) की माला गिनना चाहिये.

(६) खरतर श्रावककों एक मासमें दो आचाम्ल करना चाहिये.

(७) खरतर मुनिकों सति सामर्थ नित्य एकाशन करना चाहिये..

सातो वरदानोंके फलितार्थ उपरोक्त सप्त प्रयोग बतलाकर प्रस्थान करते समय यह कहकर रवाना हुई कि दिल्ली, अजमेर, भरुअच, उज्जैन, मुलतान, उच्चनगर और लाहोर इन सप्त नगरोंमें पूर्ण शक्ति रहित खरतर गच्छनायककों रात्री निवास नही करना चाहिये

एक समय अजमेर नगरमें पाक्षिक प्रतिक्रमणमें बिजली वार २ ऊबकती हुई बाधा पहुँचा रही थी उसही वक्त गुरुदेवने जलपात्रसें उसें दबा दी प्रतिक्रमणके बाद पात्र उठाया विद्युतने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि आपका नाम जपनेवाले पर मै कदापि न गिरूगी

एक समय आप वृध्द नगरमें पधारे जैन शासनकी प्रभावनाकों नही सहने वाले ब्राह्मणोंने मृतक गौ जिन मंदिरमे पटककर हल्ला मचाया कि जैनियोंके देव हिंसक होते है इत्यादि श्रावकोंके आग्रहसे गुरुदेवनें व्यन्तरद्वारा उसे जीवित कर दी जिससे वह गौ शिव मूर्त्तिके ऊपर जा गिरी यह विशाल प्रभाव देख ब्राह्मणोंकी बड़ी भारी हंसी हुई इससें वे लज्जित होकर गुरुदेवसें प्रार्थना करने लगे कि आजसे आपकी परंपरावाले कोई भी आचार्य आवेंगे उन्हे परम महोत्सवसें हम नगर प्रवेश करावेगें इत्यादि जैन धर्मकी विशाल प्रभावना हुई

एक समय भरुअच नगरमें आप पूज्य गुरुवर्यने मास भक्षण बन्द करवाकर मुगल पुत्रकों व्यन्तर द्वारा ७ मास जीवित रक्खा

एक दिनका प्रस्ताव है कि नागदेव (अंबड़) श्रावकने गिरनार पर्वतपर

अष्टमतपकर अंबिकादेवीकों आराधनकी और यह पूछा कि हे देवी! इस वख्त भरतक्षेत्रमें **युग प्रधान** कौन हैं मैं उन्हें अपना गुरु करना चाहता हूँ देवीने तत्काल उसके हस्त पर एक श्लोक लिख दिया और कहा कि इसें जो पढ़ देवही **युग प्रधान** समझना—

वह श्लोक अनेक आचार्यों कों बताया किन्तु कोइ भी न वाच सका अखीर परिभ्रमण करता हुवा पाटण नगरमें गुरु दयालके पास आन पहुँचा गुरु महाराजने उसके हाथ पर वासक्षेप करके शिष्यकों वाचनेकी आज्ञा बक्षीस की अतुल प्रतापी गुरुवर्यके आज्ञानुसार उसने उस श्लोककों बांचकर स्पष्टार्थ तत्काल प्रदर्शित किया यह सुन वह श्रावक परं श्रद्धावान् हुवा इस प्रकार आप परम पूज्य युग प्रधान निर्मल पदसें विभूषित हुवे वह अनुपम श्लोक यह है -

(श्लोक)

दासानुदासाइव सर्वदेवा यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरुः सजीयाद्युगप्रधानो जिनदत्तसूरि. ॥ १ ॥

एक वख्त आप श्री व्याख्यान बाँच रहेथे उस समय आपके एक परम भक्त श्रावकने अपनी जहाजेंकों समुद्रमें डूबती हुई जान आप गुरुदेवका स्मरण किया–तत्काल ही आपने अपने दीर्घोपयोगसें जान पक्षीका रूप बनाकर उसकी ससस्त जहाजें तिरा दी–यह श्रवण कर समस्त जन समाजने जैन शासनकी महती प्रभावना की–**आपश्री बहुरूपी विद्याके पूर्ण अनुभवि थे.**

एक वख्त आप गुरु देव मुलतान नगरमें बड़ेही उत्सवसें प्रवेश हुवे उस समय पट्टननगर निवासी **खरतर विरोधी अंबड़ श्रावकने** कहा कि हमारे अणहिलपुर पत्तनमें इस प्रकार पधारें तो आप चमत्कारी समझे जाय

वरना "मिट्टीके नक्कारे और घरके बजानेवाले—खूब कूटते रहो" गुरुमहाराजने फरमाया हम तो बेशक उसही तरह आवेंगे-किन्तु उस समय तूं निर्धनावस्थामें नमक तैल लेकर सन्मुख मिलेगा.

ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे बड़े महोत्सवसें पत्तन नगरमे प्रवेश हुवे सन्मुख वही निर्धन अजय आया देखते ही गुरुमहाराजने फरमाया कि क्यों अंबड़ अहंकारका फल तूझे मिल गया ? यह सुन अंबड़ शर्मिन्दा हुवा अब क्रोधवश होता हुवा कपट धारी खरतर श्रावक बनकर उन पूज्यका सन्मान करने लगा और बड़ाही भक्त बना

एक दिन उस द्वेषी अंबड़ने जहर मिलाकर गुरुवर्यको मीठा जल वहरा दिया आप पूज्यने उसमें विष जान शीघ्रही भणशाली गौत्रीय आभू नामक श्रावकसें विषा पहार मुद्रिका मङ्गवाकर निर्विष बनाया यह घटना सुन सब लोगोने अंबड़की बड़ीही कदर्थना की क्रमसे वह काल करके व्यन्तर हुवा वहापर भी द्वेषवश गुरुवर्यका रजोहरण (ओघा) हरणकर लिया इस वख्त गुरुमहाराज कुछ खिन्न चित्त हुवे इस पर आभू श्रावकने उस व्यन्तरको कहाकि गुरुदेवको प्रसन्न करो मै मेरा समस्त कुटुम्ब तुमको अर्पण करूंगा इस वख्त गुरुदेवने अपने ज्ञान बलद्वारा रजोहरण ग्रहणकर-सकल कुटुम्बकी रक्षा की, व्यन्तर इस व्यवस्थाको देखकर भग गया

एक वख्त विक्रमपुर (उज्जैन) में मरकीका उपद्रव (हेज़ा) जोरशोरसें चल रहा था उस समय गुरुमहाराजका वहा पदार्पण हो गया आपने जैनियोंका रोग उपशान्त किया तब माहेश्वरियोने प्रार्थना की कि हे पूज्य गुरुवर्य ! हमारे पर भी कृपा कीजियेगा हम आपके श्रावक बन जावेंगे जो श्रावक न होगा वह अपने पुत्र पुत्रियोंका चौथा भाग आपके चरण कमलोंमें भेट करेगा. यह सुन गुरुदेवने उनका उपसर्ग निवारण किया इस समय बहुतसे माहेश्वरी श्रावक हुवे जो न हुवे उन्होने अपने पुत्र पुत्रियोंको चढ़ाया

धन्य है गुरुदयाल ! आपने पांचसौ पुत्र व सातसौ पुत्रियोंको दीक्षा देकर उनकी आत्माका कल्याण किया.

इसही तरह बहुतसे नगरोंमें नाहटा, राखेचा, जणशाली, नवलखा, डागा, लूणिया वगेरा गोत्र स्थापन किये करीब एक लक्ष तीस हजार जन समाजको प्रतिबोध देकर श्रद्धावन्त जैन श्रावक बनाये.

आपने हाथी शाहलुणियाको मुलतान नगरमें महा मङ्गलकारी "अजितशान्ति जिन स्तोत्र" अणहिल्लपुर पट्टणमें बोथरा गोत्रीय श्रावकको "उवसग्गहरं स्तोत्र" प्रदान किया

आपने पञ्च नदी पर पच पीरोंको साधन किये; आप पूज्यने संदेह दोहलावली, तजयत्र, मपरीत, सिंघमवहर स्तोत्र वगेरा अनेक ग्रन्थकी रचना कर संघ परमहदुपकार किया

आप परम पूज्य गुरुवर्य आषाढ शुक्ला एकादशी वीर सं १६८१ वि सं. १२११ अजमेर नगरमें अनशन करके प्रथम सौधर्म देव लोकमें पधारे आप पूज्यपाद वडे दादासाहेबके नामसे प्रख्यात हुवे ॥ ४४ ॥

तत्पट्टे मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे–आप श्रीमाल गोत्रमें शाह रासलदे पिता और देल्हणदेवी मातासे वीर सं. १६६७ वि.सं ११९७ के भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको अवतरित हुवे. अजमेर नगरमें वीर स० १६७२ वि. सं १२०३ का फाल्गुन कृष्णा ९ को श्री जिनदत्तसूरीश्वरसे दीक्षा अङ्गीकार की तथा इन्हीं प्रतापशालीने आपको वीर सं १६८१ वि सं १२११ वैशाख शुक्ल ६ को आचार्य पदवी प्रदान की

एक समय आप श्री संघके आग्रहसे दिल्ली नगरमें पधारे वहा सघ पर अनहद उपकार किया एक दिन आपने अपना आयुष्य निकट समझ कर

मदनपाल श्रावकको कहा कि मेरे मस्तकमें मणि है वह अग्नी संस्कारके समय उड़ेगी वास्ते एक निर्मल दुग्धका कटोरा पास रखना उसमें आगिरेगी यह बात एक बुद्धिवान् योगीने भी सुन ली थी इस तरह फरमाकर आपमहानुभाव वीर सं० १६७३ वि० सं० १२२३ भाद्रपद कृष्ण १४ को अनशन कर देव लोक पधार गए

सर्व श्रावक लोग मिलकर गुरुमहाराजकी मण्डी माणक चोक तक ले आए और वहा विश्राम लिया बाद मण्डी वहासे न उठ सकी बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सर्व निष्फल गए चमत्कार समस्त शहरमें फैल गया तब बादशाह भी वहा आया और हुकुम दिया कि यह देव बड़ाही प्रभावशाली है इनका स्थान यही पर होना चाहिये. सुनते ही सर्व श्रावकोंने गुरुमहाराजकी देहका अग्नी संस्कार वही पर किया अब इस समय वह मणि फड़ाका करती हुई उड़ी किन्तु वे सेठजी तो दुग्धका कटोरा लाना भूल गए और वह योगी जिसनेकी सुन रक्खा था एक तर्फ दुग्धका कटोरा लेकर खड़ा था उसके कटोरेमें धड़ाकसे आगिरी योगी लेकर अपने मकानपर चला गया बाद में सेठको विज्ञात हुवा उस समय सकल संघने उसें उपालम्भ दिया अस्तु आप प्रभावशालीका अब तक दिल्लीके बीचो बाजार स्थान मौजूद है बादशाह वगेराने बहु मान किया अब तक भी आप द्वितीय दादा साहबके नामसें मशहूर है ॥ ४५ ॥

तत्पट्टे श्री जिनपतिसूरि हुवे एक दिन आसापुरमें श्रीमाली हाजीशाहने जिन मन्दिर बनवाया उसकी प्रतिष्ठा आपके हाथसे हुई प्रतिष्ठाके समय उस मणिके ग्रहण करनेवाले योगीने प्रतिमाजीको भीतर प्रवेश करवाते समय स्तम्भित कर दिये. आपने गुरुदेव श्री जिनचन्द्रसूरीश्वरको स्मरण किये गुरुमहाराजने प्रकट होकर उन्हे वासक्षेप प्रदान किया उससें जिनपतिसूरिने प्रातःकालमें प्रतिमाजी पर वह वासक्षेप प्रक्षेप किया कि प्रतिमाजी शीघ्रही उठकर अपने आसनारूढ़ हो गये यह चमत्कार जान उस योगीने वह मणि वापिस समर्पण कर दी आदि अनेक प्रभावशाली कार्य किये ॥४६॥

तत्पट्टे श्री जिनेश्वरसूरि हुवे आपके वक्तमें श्री जिनसेनसूरिसें वीर स० १८०१ वि० सं० १३३१ में लघु खरतर शाखा प्रचलित हुई यह तृतीय गच्छ भेद हुवा ॥ ४७॥ तत्पट्टे श्री जिनप्रबोधसूरि ॥ ४८ ॥ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि हुवे. आपने चार राजाओंको प्रतिबोध दिया तबसें आप कलिकाल केवली पदसें विभूषित हुवे इसही समयसें खरतर गच्छ राजगच्छके नामसें प्रसिद्ध हुवा आप एक विशाल प्रभावशाली आचार्य थे ॥ ४९॥

तत्पट्टे प्रत्यक्ष प्रतापी श्री जिनकुशलसूरीश्वर हुवे. सिवाणे नगरमें छाजेड़ गोत्रावतंसी मन्त्रि जील्हागर पिताके कुलमें जयतश्री माताके रत्न कुक्षीसें वीर स० १८०० वि० सं० १३३० में अवतरित हुवे वीर सं० १८१७ वि० सं० १३४७ में इस असार संसारको त्यागकर भवोद्धारक निर्मल चारित्र ग्रहण किया वीर सं० १८४७ वि० स० १३७७ जेष्ठ कृष्णा ११ को शुभ मुहूर्तमें श्री राजेन्द्राचार्यजीसें आचार्य पद संप्राप्त की पाटण निवासी शाह तेजपालने तथा दहेली निवासी महतीयाण गोत्रीय विजयसेन श्रावकने बहु द्रव्य खर्चकर नंदी महोत्सव किया

वीर स० १८५० वि० सं० १३८० में शाह तेजपाल श्रावकके संघमें पवित्र तीर्थेश्वर श्री सिद्धाचलजीकी जियारत करके खरतर वोसी में सत्ताइस अङ्गुल प्रमाण श्री आदिनाथ प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की भीमपल्लिनगरे भुवनपालका बनाया हुवा बहत्तर देव कुलसें मण्डित वीर चैत्य, जसलमेर नगरे जश धवलका निर्माण कराया हुवा चिन्तामणि पार्श्वनाथ चैत्य, जालोर नगरे श्री पार्श्व जिन चैत्यादि अनेक जिन बिंबोंकी प्रतिष्ठा करवाई.

आगरा श्री संघके अत्यन्ताग्रहसे श्री शत्रुंजय तीर्थराजकी यात्रा करके भाद्रपद कृष्ण ७ को पाटण नगरको पवित्र किया आप पूज्य प्रभावशालीके बारहसो मुनिराज तथा एकसो पांच साध्वियोंके संप्र-

दाय हुई. आप पूज्य गुरुवर्यने विनयप्रभादि सुशिष्योंकों उपाध्याय पदवी प्रदान की इन्ही विनयप्रभोपाध्यायने अपने निर्धन भ्राता "सोमा" के लिये सिद्धार्थिय मन्त्र गर्भित गौतम रासकी रचनाकर उसका दरिद्र दूर किया. इस प्रकार इन पूज्य प्रभावशाली कुशलसूरीश्वरने अपने विशाल ज्ञानद्वारा जिन शासनका अनुपम प्रभावनाकर अनेक श्रावक बनाये

आप अपने पवित्र जीवनकों सार्थककर देरावर नगरमें अष्ट दिवसका अनशन कर वीर सं० १८५९ वि० स० १३८९ फाल्गुन कृष्ण अमावश्याके दिन स्वर्गवास पधार गए अपने देव गति जानेके पश्चात् पूर्णिमा सोमवार कों प्रथम दर्शन दिये अतः यह दिवस विशेष आराधनीय है आप प्रता-पशाली तृतीय दादा साहवके नामसें मशहूर हुवे. ॥ ५० ॥

तत्पट्टे श्री जिनपद्मसूरि ५१ तत्पट्टे श्री जिनलब्धसूरि ५२ तत्पट्टे श्री जि-नचन्द्रसूरि ५३ तत्पट्टे श्री जिनोदयसूरि हुवे. आपके वक्तमें वीर स० १८९२ वि० सं० १४२२ में वेगड़ खरतर शाखा प्रचलित हुई. यह चतुर्थ गछ भेद हुवा ५४ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि ५५ तत्पट्टे श्री जिनभद्रसूरि आपके वक्त श्री जिनवर्ध्धनसूरिसें पिप्पलिया खरतर शाखा जारी हुई. यह पञ्चम गछ भेद हुवा. ५६ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ५७ तत्पट्टे श्री जिनसमुद्रसूरि ५८ तत्पट्टे श्री जिनहंससूरि आपके समय मरुस्थल देशप आचार्य शान्तिसागरजीसें आचार्य खरतर शाखा प्रकट हुई. यह प-ष्टम गछ भेद हुवा. ५९ तत्पट्टे श्री जिनमाणिक्यसूरि हुवे ॥ ६० ॥

तत्पट्टे अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरीश्वर हुवे. मरुस्थल देशकें वडलु ग्राममें रिहड गौत्रके अन्दर श्री वन्त पिताके कुलमें, सिरीया देवी माताने वीर सं० २०६५ वि० सं० १५९५ में जन्म दिया और वीर सं० २०७४ वि० सं० १६०४ में आपने दीक्षा ग्रहण की तथा वीर सं० २०८२ वि०स० १६१२ भाद्रपद शुक्ला नौमीकों जेसलमेरमें आचार्य पदवीसें विभूषित हुवे

एक समयका प्रस्ताव है कि आप संवेग रङ्गसें रङ्गे हुवे जैन शासनकी अनेक विध प्रभावना कर रहे थे कि मन्त्री कर्मचन्द्रने बादशाहके रूबरू आपकी बड़ी भारी तारीफ की इससें पतशाह दर्शनार्थ प्राप्त हुवा आप गुरुवर्यने लाहोर नगरमें पधारकर अकब्बर बादशाहकों **"अहिंसा परमोधर्म"** का प्रभावशाली उपदेश दिया इस समय उसें महदुपदेशका इतना असर पहूँचा कि **महा पर्वाधिराज श्री पर्यूषण पर्वमें** आठों ही दिन सकल देशमें कोई भी हिंसा न कर सके यह फरमान पत्र समर्पण किया तथा अति प्रसन्न होकर गुरुमहाराजकों "युगप्रधान" पदसें भूषित किये

एक वख्तका जिक्र है कि अकब्बर बादशाहने अपने पूज्य समक्ष यह आर्ज किया कि छत्र चामारादि राज चिन्हे स्वीकार कीजियेगा चूके आप राजगुरु (हमारे गुरु) पदसें सुशोभित है–गुरुवर्य्यने प्रत्युत्तरमें फरमाया कि हम फकीर (साधु) हें हमें ये चीजें उतनी ही अशोभनीक है कि जैसें चक्रवर्तीके **सुवर्ण कण्ठमें हड्डियोंको माला.** इस लिये बादशाह! श्रमण भव कलङ्ककारी भवोभव दुखहारी इस परिग्रहमयी वस्तुओंका संसर्ग तक करना अधमाचार समझते हैं–आपके इन साहसिक वचनोंको सुनकर बादशाहकों खामोसी अखत्यार करना पडी

बादशाहने श्री संघ सहित आपके शिष्य **श्री जिनसिंहसूरिकों** अत्याग्रह द्वारा दाक्षिण्यताके मुजालम डाल सर्व राज चिन्होसें अलङ्कृत कर दिये–आप श्रीको मजबूर होकर यह प्रवृत्ति अङ्गीकार करना पडी–इस वख्त सर्व वस्तुए श्रावक वर्गके ही स्वाधीन रहती थीं आपश्रीका इसमें लेश मात्र भी संसर्ग नहीं था–बस यहांसें **श्री पूज्यपन** (सपरिग्रह श्रमणलिङ्ग) प्रवृत हुवा—

तदनन्तर शनैः २ परिग्रहका संसर्ग बढता गया कभी कम कभी ज़ियादे किन्तु हीन दशाका साम्राज्य विशाल विस्तीर्ण रूपमें फैल गया–आज हमें श्री पूज्य व यतियोंकी हालत (कतिपय महा भागोंको छोडकर) देख कर

शोक सागरमें वलता डुवना पड़ता है—हमारा यह कथन औचित्य पंक्तिसें बाहिर न होगा की ये लोग सद्गृहस्थोंकी सभ्य श्रेणीसें असंख्य योजन दूर हैं मेरे उन धर्म प्रेमियोंसें यह निवेदन है कि हृदयको शान्तकर पुनरपि अपना उद्धार कीजियेगा ताके वीर शासनका अनुपम उद्योत हो और आपकी आत्माओंका भी कल्याण हो-किम् विशेषम्.

आपने बादशाहके अत्यन्ताग्रहसें श्री जिनसिंहसूरिको अपने हाथसें आचार्य पदवी प्रदान की कर्मचन्द्र मन्त्रीने इस वक्त याचकोंको बहुत सादान दिया आप गुरुदेवने पच नदीके पाँच पीरोंको तथा मानभद्र, यक्षखभ और क्षेत्रपालादि देवोंको साधन किये.

एक वक्त सलेमपतसाहने किसी एक खास कारणसें यह हुकुम दिया कि मेरे समस्त देशोंमें सर्व दर्शनीयोंको स्त्रीधारक बना दो उस वक्त बहुतसें यतिवर्य (संयमी मुनिराज) अपने शील रक्षार्थ इधर उधर भागने लगे कइ एक समुद्र पार हो गए कई एक भूमि गृहमें उतर गए इत्यादि नाना प्रकारके संकट सहन कर रहे थे कि इधर परोपकारी आप पूज्येश्वर सुनते ही इस अहवालके शीघ्र ही आगरेमें पधारे और अनेक चमत्कार दिखलाकर उस अनाचरिणी आज्ञाको खारिज करवाई आर सब ब्रह्मचारी जीवोंको सुखी किये.

इस प्रकार जैनशासनकी अथाह प्रभावनाकर वीर सं० २१४० वि० सं० १६७० में स्वर्गवास पधारे इनके समयमें वीर स० २०७१ वि० सं० १६२१ में भाव हर्ष उपाध्यायसें भाव हर्षीय खरतर शाखा प्रचलित हुई यह सप्तम गच्छ भेद हुवा ॥ ६१ ॥

तत्पट्टे श्री जिनसिंहसूरि ६२ तत्पट्टे श्री जिनराजसूरि हुवे आपकेवक्तमें वीर सं० २१५६ वि० स० १६८६ में आचार्य श्री जिनसागरसूरिसें लघु आचर्यीय खरतर शाखा अष्टम गच्छ भेद हुवा.

तथैव आपके काल प्राप्तके एक वर्ष बाद यानो वीर सं० २१७० वि० सं० १७०० में पण्डित तरङ्गविमलोसें रङ्गविजय खरतर शाखा प्रवृत्त हुई. यह नौमा गच्छ भेद हुवा. इसही शाखामेंसें सारोपाध्यायसें श्री सारीय खरतर शाखा भिन्न हुई. यह दशम गच्छ भेद, हुवा. प्रथम तो वृहत् खरतर मूल गच्छ और दश शाखाएं एवं सर्व ग्यारह भेद हुवे. ॥ ६३ ॥

तत्पट्टे श्री जिनरत्नसूरि ६४ तत्पट्टे श्री जिनचन्द्रसूरि ६५ तत्पट्टे श्री जिनसौख्यसूरि ६६ तत्पट्टे श्री जिनभक्तिसूरीश्वर हुवे आप गुरुवर्य बडेही प्रभावशाली थे अनेक विध जैन शासनका उद्योत किया अखीर वीरात् २२७४ वि० सं० १८०५ जेष्ठ शुक्ल ४ कों स्वर्गवास पधारे ॥ ६७ ॥

श्री जिनभक्तिसूरीश्वरके बुद्धि विचक्षण परम वैरागी पट्टधर शिष्य पूज्यपाद गणिवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहब हुवे इस वृहत्खरतर गच्छमे आपसें परम वैराग्य रङ्गरञ्जित संवेग कल्प वृक्ष पुनरपि अपनी दिव्य कान्ति विस्तृत करता हुवा सकल शुद्धाचार-रूपी लतासें विभूषित हुवा जिसका किञ्चित् निबन्ध पाठक प्रेमियोंके अ-भिमुख करता हूँ:—

आप महानुभावके एक लघु गुरु भ्राता श्री लक्ष्मीलाभ थे. आप एक बडे ही सज्जन पुरुष थे आचार्य पदमें आपका नाम श्री जिनलाभसूरि हुवा

श्री जिनभक्तिसूरीश्वरके काल प्राप्त पश्चात् यति महानुभावोंने यह सोचा कि इस वक्त क्रिया बहुत शीथिल हो रही है इसलिये यदि गुरुवर्य श्रीमान् प्रीतिसागरजी महाराज साहबको तख्तनशीन (पट्ट स्थापन) करेंगे तो क्रियाका पालन दुष्कर हो जायगा चूंके वे परम वैरागी त्यागी और उत्कृष्ट क्रियाकों पालन करने वाले हैं अतः लघु भ्राता लक्ष्मीलाभजीकों

ही पट्टधर बनाना ठीक है यह सोच आचार्य पदवीके समय असंयम प्रेमी यतियोने उन बड़भागीको एक कोटड़ीमें बंदकर कुलफ (ताला) लगा दिया और लक्ष्मीलाभजीको गद्दी पर स्थापन कर उनकी आणा (आज्ञा) प्रवृता दी. यह विचित्र घटना देख श्रीमानने कोटडीमेंसे ही फरमाया कि यदि लक्ष्मीलाभको गद्दीधर बनाया तो कोई हर्ज नहीं वह भी मेरा ही लघु भाई है इत्यादि कहनेसें उन्हे बाहिर निकाले उनका इस प्रकार तेज प्रताप था कि एक वार समस्तको लज्जा महाराणीके अधीन होना पड़ा अस्तु

वे पूज्येश्वर तो महान् दयालु थे अखिल संसारका हित करनेमें एक अनूठे कृपावतार थे आपने अपने लघु भ्राता श्री जिनलाभसूरिजीसें सम्मति लेकर अनुमान इसही वीर सम्वत् २२७४ वि० सं० १८०४ में परम पवित्र तीर्थराज श्री सिद्धाचलजी पर सर्व त्यागकर पञ्च महाव्रत अवधारण किये और सकल समाज पर अनुपम उपकार किया.

आपने वैरागी, त्यागी परम संवेगीके पहिचानके लिये व कितनेक अन्य कारणोंसे कथ्थे चूनेमें वस्त्र रङ्गना प्रारंभ किया. पवित्र खरतर गछमें आप महानुभावसें कथ्थाई वस्त्र प्रारम्भ हुवे

हमने उपरोक्त विवरण जिस प्रकार परंपरासें सुना है वैसाही उद्धृत किया है कितनेक लोगोंका यह भी कथन है कि आप परम वैरागी योगीश्वर श्री भानुप्रीतिसागरजी महाराज साहब निष्कारण ही केवल अपनी वैराग्यावस्थामे रमण करनेके हेतु संवेगी श्रमण नामसे विभूषित हुवे तथा कथ्थाई वस्त्र आपके प्रशिष्य श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महाराजसें प्रचालित हुवे है. हम नहीं कह सकते कि दोनोमेंसे तथ्य क्या है अतः "तत्वं केवली गम्यम्" इस न्यायका अङ्गीकार करना ही समुचित है.

आप अद्वैत मुनि पुङ्गवजन समाज पर अवरणीय उपकारकर वीर सं० २३२१ वि० सं० १८५१ के माघ शुक्ला ८ को स्वर्गवास पधारे. वृहत्खरतर

गच्छमें पुनरपि परम त्यागावस्थाको अवधारण करनेवाले आप **प्रथम मुनिवर** हुवे हैं तथा पट्ट परंपरानुसार अडसठवें पदधर हुवे ॥ १ ॥–॥ ६८ ॥

तत्पट्टे पर वैरागी वाचनाचार्य श्रीमान् अमृतधर्मजी महाराजसाहव हुवे आप परम आत्मार्थी और भव्यजन प्रतिबोधमें एक अनुठे महात्मा थे ॥१॥ ॥ ६९ ॥ तत्पट्टे अद्वैत विद्वान **महा महोपाध्याय श्रीमान् क्षमाकल्याणजी महाराजसाहव** हुवे उनका यत्किञ्चित्स्वरूप इस प्रकार हैः–

आप पूर्वमें जति× थे श्री जिनहर्षसूरिजीके समय अधिक शिथिलाचार देख परं वैरागी संवेगी साधु हुवे आप श्री **पैंतालीश आगमोंके** पूर्ण वेत्ता थे तथा अनेक प्रकरणादिके सुविज्ञ थे तथैव सस्कृतके एक **प्रखर विद्वान थे.** आप महानुभाव श्री जिनहर्षसूरिजीके **पाठक (विद्यागुरु)** थे अतः आप **महा महोपाध्याय**की पदवीसे विभूषित थे

वहुतसें श्रावक श्राविका शिथिलाचारियोंके अनुरागी हो रहे थे उन्हे जैन **तत्त्वज्ञान** वताकर शुद्ध धर्ममें संलग्न किये **पूज्यपाद प्रीतिसागरजी मा. सा.** के वोये हुवे बीजको इस कदर सीचन किया कि जो हमारी लेखनीसें वाहिर है आपका अवर्णीय उपगार जैन समाजको सदैव स्मरणीय है.

आपमें सर्वसें विशिष्ट गुण यह झलकता था कि गुण ग्राहियोंको छोड़कर सकल जैन समाज आपको **पूज्य दृष्टिसें** अवलोकन करता था, इतनाही नही किन्तु उनके परमार्थी मधुर वचनोंको शिरोधार्यकर—अपनी आत्माका कल्याण करता था .

आपने अनेक **संस्कृत व भाषाके ग्रन्थ** वनाकर जैन समाज पर अ-

× वर्त्तमान कालमें क्रियासे विहीन होकर केवल वेशको धारण करनेवालेको "जति" कहते हे

वर्णीय उपकार किया आपश्रीके बनाये हुवे जितने ग्रन्थ हमें उपलब्ध हुवे हैं उनके नाम इस स्थल पर उध्दृतकर गुणानुरागियोंको आपके महत्वका परिचय दिलाते है।—

१ बारह पर्व संस्कृत २ आत्म प्रबोध संस्कृत ३ गुर्वावली संस्कृत ४ साधु समाचारी भाषा ५ अनेक शास्त्रोंसे उध्दृतकर महदुपयोगी केस्सो बोल भाषा ६ वैराग्य व तत्वगर्भित अनेक स्तवन सझायादि भाषा ७ चतुर्विंशति तीर्थकरोंके चैत्यवंदन संस्कृत ८ गुरु महाराजोंके अष्टक संस्कृत ९ विधि विधान चर्चा भाषा १० श्री पार्श्वनाथ स्तुति संस्कृत ११ श्री जिन चतुर्विंशति स्तुति संस्कृत १२ प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक संस्कृत इस प्रकार अनेक ग्रन्थोंकी रचनाकर अपनी अकथनीय उपकार बुध्दिका विशाल प्रभाव प्रदर्शित किया धन्यहै! गुरुदयाल आपके अपूर्व ज्ञानकों पुनः २ धन्य है।

आप मात्र विद्या प्रेमीही नही थे किन्तु एक प्रबल प्रत्यक्ष चमत्कारीभी महात्मा थे—मेरे प्यारे पाठकों देखियें आप पूज्यका चमत्कारीय अलौकिक दृश्यः—

(१) एक वख्तका जिक्र है (जब कि आप जेशलमेरमें विराजमान थे) कि योधपुर महाराजा अपनी चतुरङ्गी सेना सजकर जेसलमेरको आन घेरा नगराधीश (जेसलमेरपति) रावलजी क्रोधित होकर रणभूमि पर जा धमके— परस्पर घोर युद्ध हुवा—हाथियोंने बिलन्द चीकारी शब्दोंसे युध्द क्षेत्र गुञ्जा दिया घोड़े हिन हिनाने लगे रथोंका झकारा व झनणाट करने लगा योध्दा लोग भूजाबलसे एक दूसरे पर टूट पड़े तलवार, भाले और बरछियोंकी धना धनी, चलने लगी बन्दूकोंकी गोलिये धडाधड़ छूटने लगी तोपोंके गोलोंकी अविरल वरसा होने लगी सैंकड़ो योध्दा पृथ्वीतल पर लोटपोट हो गये अर्थात् सर्व भक्षीके मुखमे प्रवेश हो गए

— इस वस्थाको जान महारावलजीको बड़ा भारी पशोपेश हुवा शीघ्र ही पूज्यपाद गुरुवर्यके चरणोंमें सादर वंदना नमस्कार कर सनम्र अपनी आफ़-

तका किस्सा प्रार्थना रूपमें निर्मित किया और यह विनय करने लगे, कि स्वामिन्! इस समय लज्जा रखना आपके आधीन है. यह सुन दयासागर श्रीमान्ने शीघ्रही एक नकारा मङ्गवानेकी सूचना की राजाने तुरन्त ही हाजिर किया मन्त्र, तन्त्र, जन्त्रादि वेत्ता महानुभावने तत्कालही उस नकारे पर सर्वतो भद्र यन्त्र लिख दिया–गुरुमहाराजका पूर्ण विश्वासी राजा तत्कालही सेना सजकर अपने गनीमों पर टूट पड़ा नकारे पर धनाधन मके पड़ने लगे युद्ध क्षेत्र गुञ्जाररवमें गूञ्ज उठा–शत्रुओंकी सकल सेना भाग गई गुरुमहाराजके प्रभाविक यन्त्रसें रावलजीकी विजय हुई–इससें जिन शासनकी महती प्रभावना हुई और जेशलमेरका राजा दृढ जैन धर्मी बन गया.

(२) एक दिन सभाके मध्यमें रावलजीने ज्योतिषीकों अपनी उमरका निर्णय करनेको कहा–उसने उत्तरमें यह निवेदन किया कि आपकी केवल सातही वर्ष शेष आयुष्य है राजाने सविनय गुरुमहाराजसें निर्णय करने के वास्ते विनती की–पूज्यपादने कृपा पूर्वक ज्योतिष सहायद्वारा व देवके साहयमें रावलजीकी सत्तरह वर्षकी उमर बताई सज्जनो! महा पुरुषोंके वचन कभी खाली जाते है क्या? ठीक सत्तरह वर्षमें राजा परलोकमें कूच कर गए इससें यह भसद्द सिध्द है कि आप ज्योतिष ज्ञानके भी एक पूर्ण वेत्ता थे

आपके स्वर्गवास पधारनेके पश्चात् भी आपने एक आश्चर्यजनक चमत्कार दिखलायाः—

जब आप बीकानेरमें अपनी आयुष्य पूर्ण कर स्वर्गवास पधारे उसही दिन आपके एक परम भक्त साम्पतिराम व्यासकों जेसलमेर और लौद्रवपुर पट्टन महा तीर्थराज ('लौद्रवपुर जेशलमेरसें दश माइल है) बीचमें दर्शन दिये उनके आपुसमें कुछ वार्त्तालाप हुआ तदनन्तर यह व्यास एक दो दिन बाद जेशलमेरमें आया तो आपके स्वर्गवासकी खबर सुनी उसने अपने दर्शनके हाल श्री सघके सामने जाहिर किये इस आश्चर्यभूत अहेवालको सुन सकल सघकों विवश होकर बलात् आनन्दसागरमे निमग्न होना पड़ा

महानुभावों ! कहां तक निवेदन करूं मेरी यह सामर्थ्य नहीं कि आपके सर्व चमत्कारोंका उल्लेख कर सकुं आप पूज्यने अपने अनेक विशाल प्रभाव-शाली कार्य कियेहैं धन्य हो गुरुदयाल ! आपका अनुठा जीवन प्रशं-सनीय है—

आप कृपावतार श्री संघपर अविस्मरणीय उपकारकर वीर सं. १३४१ वि सं. १८७१ के पौष कृ० १४ के शुभ दिवसकों इस भवसें प्रस्थानकर उच्च गतिको पधार गये ॥ ३ ॥ ७० ॥

तत्पट्टे श्रीमान् धर्मानंदजी महाराज हुवे आप एक पूर्ण विद्वान् थे आ-पने आत्म भावनके साथही साथ श्री संघपर अनहद उपकार किया॥४॥७१॥

तत्पट्टे **श्रीमान् राजसागरजी महाराज** हुवे आप एक प्रचण्ड विद्वान थे आपने अपने ज्ञान बलद्वारा **मिथ्यात्व रूढ़ि अनोपम प-**न्थकों त्याग कराकर सैकडो लोगोंको शुध्द जैन धर्म अवधारण करवाया तथा अनेक मास मदिरादिमें आसक्त हुवे प्राणियोंको दुर्व्यसनोसें मुक्त कराकर अ-पने निर्मल चरणकमलोंका शरण दिया आदि अनेक विध उपकारकर अपनी आत्माका कल्याण किया ॥ ५ ॥—॥ ७२ ॥

तत्पट्टे असाधारण विद्वान **श्रीमान् ऋध्दिसागरजी महाराजसाहब** हुवे पाठकवरों ! ये वेही पूज्य है कि जिन्होने पवित्र तीर्थराज **श्री आबूकी रक्षा** की है अर्थात् वहाकी अनेक आशातनाओंकों दूर करवाई है आपने दुर्वार उपसर्गोके प्रबल आक्रमण होने परभी अपने तीव्र मन्त्र ज्ञान द्वारा विजयकर **गवर्मेन्टसें ग्यारह नियम** (Rules) प्रगृत कराए हैं यह जैन समाजसें छिपा नही है अर्थात् पत्रलिकमें रोशन है आपने इन नियमोंको वि-नयवश होकर अपने वृद्धगुरुभाई प्रीतिसागरजी मा. के नामसें जारी करवाएहै

यह तो निसंदेह है कि **कृतघ्नोके सिवाय समस्त जैन समाज**

इस अवर्णीय उपकारको हरगीज नहीं भूल सकता. इतनाही नहीं किन्तु गुणानुरागी लोग अब तक भी आपकों पूज्य दृष्टिसें अवलोकन कर अपने मुक्त कण्ठसें प्रशंसा करते है

आप संस्कृतके पूर्ण विद्वान् थे मन्त्र जन्त्र और यन्त्रादिमें में तो एक अद्वितीय ही अनुभवि महात्मा थे आपने बहुतसें जिन भुवनोंकी ऐसेः उत्तम मुहूर्त्तोंमें प्रतिष्ठा कराई है कि जिनकी दिनबदिन तरक्की होती हुई दृष्टिगोचर हो रही है

आप श्री संघ पर अनुपम उपकारकर वीरात् २४२२ वि० सं १९५२ में देवलोक पधार गये ॥ ६ ॥-॥ ७२ ॥*

तत्पट्टे श्री खरतरगच्छ गगनमार्तण्ड विशाल ज्ञानी गणाधीश्वर श्री मज्जैनाचार्य अविरह स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य **श्रीमान् सुखसागरजी महाराजसाहब** हुवे आप **पेंतालीस आगमोंके** पूर्ण वेत्ता थे तथैव अनेकानेक प्रकरणोंके सुविज्ञ थे

* कई एक सभ्य पुरुष गंभीर आशयसे पृथक् होकर अवश्य इस प्रश्नमें जिज्ञासु होंगे कि ग्रन्थ कर्त्ता एक स्थान पर तो श्रीमान् राजसागरजी ऋद्धिसागरजी मा कों "कर्मवश शिथिल होना पडा" ऐसा लिखता है और इस स्थल पर बडीही पूज्य दृष्टिसें पेश आता है यह विपवाद स्वीकृत श्रेणीमे क्योंकर शुमार किया जायगा-

महानुभावो ! उत्तरमें इतनाही निवेदन है कि मैं हर दो पूज्योंको सदैव पूज्य दृष्टिसें ही अवलोकन करता हूं मैंने "कर्म व शिथिल-होना पडा इत्यादि" केवल इस ही आशयको प्रकट करनेके हेतु लिखा है कि पूज्यपाद गुरुवर्य श्रीमान् सुखसागरजी मा सा. कों पृथक् क्योंकर होना पडा तथा आपके नामसें सिंघाडा क्योंकर प्रसिद्ध हुवा—आबू तीर्थराजादिके कारण यदि क्रियासे यत्किंचित तटस्थ होना भी पडा ही तदपि अनुचित श्रेणीसे अवश्य ही विमुक्त हैं पाठक प्रेमियोंकों यदि इतने पर भी संतोष न होगा तो द्वितीयावृत्तिमे परिवर्त्तन करनेमें प्रयत्नशील होनेका विचार करूंगा।

यने तथा आगेवान गृहस्थोंने मिलकर **समुदायका निर्वाह** आप महानुभा-वको समर्पण किया आप श्रीने वीर सं २४२७ वि सं १९५७ जे: शु. १४ से समुदायका निर्वाह करना प्रारंभ किया

आपने इस पवित्र समुदायमें सर्वसें अधिकाश **संस्कृतका विशिष्ट प्रचार किया.** तथा शास्त्र पठन पाठनादि अनेक सुकार्योंमें हौसियार किये यह आपका अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है

आप **पैंतालीश आगमोंके** पूर्ण वेत्ता थे तथा आगमोंके मथन करनेमें एक अनुठे ही प्रयत्नशील पुरुष थे आपकी **तपस्या** पर इस कदर प्रबल इच्छाथी कि जो हमारी लेखनीसें बाहिर है तदपि यत्किञ्चित् उल्लेख करते है

वीर सं २४१२ वि सं १९४२ मे अर्थात् प्रथम चातुर्मासके प्रारंभमें ही योधपुर राज्यान्तरगत नागोर नगरमें ५ उपवास किये इसका पारणा करके साथही साथ १९ उपवास किये तथा कार्तिकमें मासक्षमण कर अपने कर्मोंकी निर्जराकी–तथैव आपने अपने जीवनमें कइ एक मासक्षमण, पक्षक्षमण, अट्ठाईयें, पॉच, चार और तेले किये और उपवास तो बेशुमार किये होंगे

आपने वीर स. २४१३ वि० स० १९४३ मे पवित्र तीर्थेश्वर **श्री सिद्धाचलजी**की यात्रा कर अपने मानवभवकों कृतार्थ किया

आपका प्रथम चातुर्मास अर्थात् वीर सं २४१२ वि० सं० १९४२ का नागोर हुवा ४३ का शिरोही ४४ का बीकानेर ४५ फलोदी ४६ का बीकानेर ४७ का पाली ४८ का नागोर ४९ का लोहावट ५० का फलोदी ५१ का लोहावट ५२–५३ का फलोदी ५४ का लोहावट ५५ फलोदी ५६ का लोहावट ५७ सें ६५ तक फलोदी* ६६ का अन्तिम चातुर्मास लोहावट हुवा

आपके निश्राईमें मुनिराज तथा ६० साध्वियोजी दीक्षित हुई आपने समु-

* वृद्धावस्थाके हेतु तथा शारीरिक व्ययाके कारण एकदम इतने चातुर्मास एक स्थान पर हुवे हैं

दायका प्रशंसनीय निर्वाह किया तथा अनेक भव्यात्माओं पर अनुपम उपकार किया

आप ९ वर्ष २ माह ७ दिन धर्म राज्य कर जगत्प्रशंसनीय ५१ उपवासोका संथारा अवधारण कर लोहावट नगरमें द्वितीय श्रावण शुक्ल ६ वीर सं २४२६ वि० स० १९६६ में **स्वर्गवास पधारे**.

आपने ५२ उपवासोंमेसें ४० तो तिविहार किये शेष १२ चौविहार किये ४ चालीस उपवासों तक सेंकडो लोगोंकी सभामें सिंहनाद रूप धर्म देशना दी उस वख्तका महोत्सव दृश्य एक दर्शनीय ही था गुरुदयाल ! आप हमेंशां जयवन्ता वर्त्तो.

श्रीमान् भगवान्सागरजी मा. सा. के विद्यमान पट्टधर विख्याते स्मरणीय शान्त मूर्ति पूज्यपाद गणाधिपति गुरुवर्य **श्रीमान् त्रैलोक्यसागरजी महाराज साहब** अपना अटल **धर्म राज्य** कर रहे हैं

आप श्रीमान् जेसलमेर राज्यान्तरगत गिरासर ग्राममें वृहद् औसवंश पारख गौत्र (राठोड) विभूषित जीतमलजीके कुलमें कुशला देवीके रत्न कूक्षिसें शुभ मिती श्रावण शुक्ला १४ वीर सं २३९८ वि० स० १९१७ में अवतरित हुवे आपका नाम **चुन्नीलालजी था.**

आपके गृहस्थाश्रमकी सहोदर वृहद्भगिनी पन्नीबाई (पुण्यश्रीजी) के सुदृढ़ प्रयत्नसें आबाल ब्रह्मचारी महत्पदसें विभूषित होते हुवे परम वैराग्य रङ्गरञ्जित होकर गुजरात देशान्तर गत **पाटणमें** वीर सं० २४२२ वि० सं० १९५२ प्रथम जेष्ट शु० ७ को भवोध्धारक **निर्मल चारित्र** अवधारण कर अपने मानवभवको कृतार्थ किया आप **श्रीमान् गणनायक श्री भगवान्सागरजी मा. सा.** के सुशिष्य हुवे नाम त्रैलोक्यसागरजी

रक्खा गया आपकी वृहद्दीक्षा माघ शु. १३ वीरात् २४२५ वि०सं०१९५५ में फलोदी नगरमें हुई.

श्रीमान् भगनसागरजी मा. सा. ने अपने काल मास समय पूज्य पाद गुरुवर्यको द्वितीय श्रावण शुक्ला ८ वीर स. २४३६ वि सं १९६६ को समुदायका स्वामी पद प्रदान किया अर्थात् इस शुभ दिनसें आप श्रीमान् गणाधिपतिके सुपदसें विभूषित हुवे उसही दिनसें आपने अपना धर्म साम्राज्य करना प्रारम्भ किया.

आपके शान्त साम्राज्य में, सभाका खुलना, सघका निकलना, नवीन पुरातन ग्रन्थोंका प्रकाशित होना इत्यादि अनेक कार्य प्रचलित हुवे जिनका संक्षिप्त विवरण इस स्थल पर उल्लेख कर पाठक प्रेमियोंके अभिमुख करता हूँ:—

जैन समाजमे एक अग्रेसरी श्रेष्ठिवर्य रायबहादुर केसरीसिंहजी बापना (पंवार) के अत्यन्ताग्रहसे वीर सं २४३९ वि सं १९६९ में आपने पॉच मुनि रत्नो सहित कोटा नगरमे चातुर्मास कर जैन शासनका अनुपम उद्योत किया आपकी पवित्र सेवामें पुण्यश्रीजी आदि १६ साध्वियोंजीने भी चातुर्मास किया था इसही चातुर्मासमें अपने शिष्य समुदायके प्रौढ प्रयत्नसें "श्री ज्ञानसुधारस धर्म सभा" खोली गई जिसके ज़रिये समुदायकी बहुतसी त्रुटियें दूर कर उत्तम आचारोंका आन्दोलन किया अब तक भी ये परोपकारिणी सभा बहुत कुछ काम कर रही है आशा है की गुरुदेवकी कृपासे भविष्यकालमें इस सभामें कइ एक अनुपम गुणोंकी संप्राप्ति होगी.

वीर सं २४३९ वि० सं० १९६९ वैशाख कृष्णमें आपके व आपकी शिष्य शिष्याओंके सदुपदेशसें सुप्रसिद्ध मालव देशमें पञ्चाशली तीर्थरा-

जकी जियारत (यात्रा) करनेके लिये दग, गङ्गधार और सीतामहूके तीन संघ निकलवाए गए तथैव आपके सदुपदेश-द्वारा विमलश्रीजीके सुप्रयत्नसें वीर सं० २४४० वि० स० १९७० में तीर्थराज श्री जेशलमेरका संघ निकलवाया गया

इसके अतिरिक्त चतुर्विध संघके साथ बडेही समारोहसें अनेक यात्राएं की यथाः—मालव देशमें सेमलिया, बिबडोद, करोंदी वगेरा कोटाके समीप दादावाडी मरु स्थलमें, पालीके पास नाकरी-खीचन ये सर्व यात्राए आपके साथ हुई आपके आज्ञानुयाई हर्षानंदसागरादिके वीर स २४४० वि० सं० १९७० के चातुर्मासमें बीकानेरके समीप नालदादाजी, नौनासर, शिवबाडी, उदासर, गङ्गासर वगेराकी यात्रा बडेही धूमधामसे हुई अखीर सुजानगढ़की प्रतिष्ठा व नवमी जैन श्वेताम्बर कॉनफरन्समें शरीक हुवे पश्चात् फलोदी पार्श्वनाथकी यात्रा की तथैव क्षेमानंदसागरादिके वीर सं० २४४३ वि० स० १९७२ के चातुर्मासमें जयपुरके समीप सॉगानेर, आमेर और स्टेशन पर मन्दिरकी यात्रा की महोत्सवके साथ सौभाग्य समाप्त हुआ कहॉ तक लिखा जाय यात्राओंका ठाठपाट व धूम धाम अपार है.

आपके शासनमें अब तक इतने ग्रन्थ प्रकाशित हुवे व हो रहे हैं:—

॥ नवीन ग्रन्थ ॥

नंबर.	नाम ग्रन्थोंके.	रचयिता	प्रति
१	सप्त व्यसन निषेध प्रथमा वृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००
२	मोह जीत चरित्र संस्कृत	मुनिराज श्री क्षेमसागरजी	६००
३	*सप्त व्यसन निषेध द्वितीयवृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१५००
४	गुण स्थान दर्पण	श्रावकवर्य शेरसिंहजी जैन	१०००
५	*सप्त व्यसन निषेध तृतीयावृत्ति	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००
६	सुख चरित्र	वीर पुत्र आनंदसागर	१०००

॥ प्राचीन ग्रन्थ ॥

१	बारह पर्व संस्कृत	महामहोपाध्याय–श्री क्षमाकल्याणजी मा सा	१०००
२	जयति हुअण स्तोत्र त्रिपाठ	नवाङ्गीटीकाकारक–श्री अभयदेवसूरीश्वरादि	१०००
३	जिन स्तोत्र भाण्डागार प्राकृत–संस्कृत	अनेकाचार्य	१०००

* सप्त व्यसन निषेधकी तीनो आवृत्तियोंको पृथक् २ नम्बरसें विभूषित की इसका यह प्रयोजन है कि एकसे दूसरीमे इसही प्रकार तीसरीमे व्यसनोंको विस्तृत रूपेण प्रदर्शन किये हैं इत्यादि

इसके सिवाय "कर्म विचार" नामक यन्त्र जो कि क्षेमानंदसागरने भगवति सूत्रमेंसें उद्धृत किया है उसकी पाचसो कॉपी तथैव पञ्च प्रतिक्रमण सूत्रकी एक हजार और देवशीराई प्रतिक्रमण सूत्रकी दो हजार कॉपीये छप रही हैं ये शीघ्रही प्रकाशित होने वाली है

जुमला नव हजार ग्रन्थ तो प्रकाशित हो चुके हैं तथा साढेतीन हजार छपनेवाले हैं एव सर्व ग्रन्थ साडेबार हजार आपके पवित्र शासनमें आजतक प्रकट हुवे ये सकल ग्रन्थ वगैर न्योछावरही भेट दिये गये व दिये जाते हैं व दिये जायगे यह आपकी उदार वृत्तिका एक विशाल परिचय है

आप बहुतमें सूत्रोंके तथा अनेक प्रकरणादिके सुवेत्ता है आपको शास्त्रोंकी सेकडों बाते कण्ठस्थ स्मरण है आप पठन पठनादिके पूर्ण प्रेमी है या यों कहियेगा कि आप एक अत्यन्त रसिक है

आपके शासनमें साधु साध्वी बडेही आनदसे निवास करते हैं और शान्तता पूर्वक संयम पालन करते हुवे अपनी आत्माका कल्याण कर रहे तथा भव्यात्माओंका अनुपम उपकार करते हुवे उन्हें कृतकृत्य कर रहे है आप श्रीमानका हमारे समुदायके सकल कृतज्ञ महानुभाव सतशः धन्यवाद देते हुवे अपने देवगुरुसे अहर्निश यह प्रार्थना करते है कि सुशिक्षारूपी अमीरसका पान करानेवाले एसे शान्तमूर्त्ति पूज्यपाद गुरुवर्य विद्यमान भवमें हमारे पर अटल शासन वर्त्ताते रहो इतनाही नहीं किन्तु भवोभवमें हमारे शरणभूत होवो सच है ? अत्यंत सुखदाताकी सबही वांछा करते हैं

आप महोदयका वीर सं० २४२२ वि० सं० १९५२ अर्थात् प्रथम चातुर्मास व द्वितीय चातुर्मास फलोदीमें हुवा ५४ का लोहावट ५५ का फलोदी ५६ लोहावट ५७ में लेकर ६२ तक फलोदी विराजे* ६४ का योधपुर ६५

* आपका इतने वर्ष एक स्थान पर विराजनेका कारण यह था कि आपके पूज्यपाद गुरु वर्य तथा महा तपस्वी श्रीमान् छगनसागरजी मा सा की वृद्धावस्था थी तथा आप भी शरीरसें कुछ लाचार थे

का नागोर ६६ का लोहावट ६७ का फलौदी और ६८ का मालवदेश रत्नपुरी (रतलाम) में हुवा.

आप श्रीने परमदयालो कर इसही सम्वत्के वैशाख शुक्ला ११ बुद्धवार वीरात् २४३७ विक्रम स १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दीक्षा तथा आषाढ शु० २ बुद्धवार तारीख २८ जून सन् १९११ को वृद्दीक्षा देकर मुझ अधमको अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन किया अर्थात् इस शुभ दिवशको नवोद्धारक दीक्षा प्रदान की-हे नाथ ! आपका यह अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है निरन्तर आपही कृपालुका शरण हो यही हार्दिक वाँछा है—६९ का कोटा ७०—७१ फलोदी ७२ का चातुर्मास पाली हुवा

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संवत् १९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद महा तपस्वी श्री भगनसागरजी म० सा० के चरण संस्थापन करवाए .

इसही वख्त आपने श्री भगनसागर जैन पाठशाला खुलवानेका अनुपम उपदेश किया—फल वार्द्धिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आप वापिस लोहावट पधारे उस समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाया आप पूज्य गुरुवर्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके मरु स्थलके सुप्रसिद्ध शहर विक्रमपुर (विकानेर) में हुवा

आप यशोदयके पवित्र शासनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ साध्वियोंजी सुदीक्षित हुई

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आपका धर्म साम्राज्य चिरकाल अटल प्रवर्त्तता रहो हे स्वामिन् ! आपका पवित्र नाम सदैव जयवन्ता वर्तो.

॥ ७ ॥ ७६ ॥

पाठकवरों ! अब मैं आपके पवित्र शासनमें रहे हुवे कतिपय अग्रेसरी मुनिराजों व साध्वियोंजीका परिचय दिलाता हूं

श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा क्षेमसागरजी महाराज एक अग्रेसरी मुनिराज है.

आप हर दो मुनिराज प्राकृत, संस्कृत, देवनागरी और गुजराती वगेरा भाषाओं (Languages) से परिचित है अर्थात् कितनेक सूत्र आपके अवलोकन किये हुवे है तथैव व्याकरण, काव्य, कोष वगेराके वेत्ता है आपमें लेख लिखनेकी वा ग्रन्थ रचनेकी भी सामर्थ्य है. यद्यपि आप विद्यार्थी-जीवन (student life) में निवास कर रहे हैं तदपि यथा समय शासनकी भी सेवा बजाते रहते है आप श्रीमानोका मुझपर बड़ाही धर्म प्रेम है यहाँ तक कि मै आपसें दीक्षा पर्यायमे लघु भी हूं तदपि आपमुझे हमझोलीका ही समझ उत्तम व्यवहार रखते हैं यह आपके बड़प्पनका एक विशाल परिचय है. मै यही इच्छता हूं की आप लोग हमेसा मुझ पर महरवान रहे

वर्तमानमें सबसें बड़ी साध्वीजी लक्ष्मीश्रीजी है यह महानुभावा बड़ी ही शान्तमूर्ति हैं तथा पठन पाठनादि विषयोंमे पूर्ण निपुण है एव अपनी आर्या वर्गको हृदयसें लगाकर बडे ही प्रेम पूर्वक पालन करतीं है इनकी प्रशिष्या पुण्यश्रीजी एक विशाल पुण्यात्मा है तथा शिष्या सिंहश्रीजी एक प्रबल धर्मात्मा हुई है.*

---

* सिंहश्रीजी यद्यपि इस वक्त विद्यमान नहीं है तदपि पुण्यश्रीजी व इनका युगल सम्बन्ध होनेसे इनका भी उल्लेख कर दिया गया है —

प्रशिष्याका नाम प्रथम लिखकर पश्चात् शिष्याका लिखा गया इसे हमारे कतिपय पाठकवरोंको अवश्य यह प्रश्नमय उमङ्ग रहेगी उछलेगी कि ग्रन्थकर्त्ताने किसआश

का नागोर ६६ का लोहावट ६७ का फलोदी और ६८ का मालवदेश र
पुरी (रतलाम) में हुवा

आप श्रीने परमदयालो कर इसही सम्वत्के वैशाख शुक्ला ११ बुधव
वीरात् २४३७ विक्रम स १९६८ तारीख १० मे सन् १९११ को लघु दी
तथा आषाढ शु० २ बुधवार तारीख २८ जून सन् १९११ कों बृहद्दी
देकर मुझ अधमकों अपने सुखदाता चरणकमलोंका शरण देकर पावन कि
अर्थात इस शुभ दिवशकों **नवोद्धारक दीक्षा** प्रदान की हे नाथ ! आप
यह अवर्णीय उपकार सदैव स्मरणीय है निरन्तर आपही कृपालुका शर
हो यही हार्दिक वांछा है–६९ का कोटा ७०–७१ फलोदी ७२ का चा
मास पाली हुवा

ये आप परमोपकारीने कोटेके चातुर्मास पश्चात् लोहावट नगरमें संव
१९७० के वैशाख मासमें स्वर्गस्थ पूज्यपाद महा तपस्वी श्री छगनसागर
म० सा० के चरण संस्थापन करवाए .

इसही वख्त आपने श्री छगनसागर जैन-पाठशाला खुलवानेका अ
पम उपदेश किया–फले वर्द्धिकाके दोनो चातुर्मास करनेके पश्चात् जब आ
वापिस लोहावट पधारे उस समय पाठशालाका कार्य प्रचलित करवाय
आप पूज्य गुरुवर्यका यह परमोपकार चिर स्मरणीय है

आप कृपावतारका गत चातुर्मास समय अपने ६ मुनि रत्नोंके स
स्थलके सुप्रसिद्ध शहर **विक्रमपुर (विकानेर)** में हुवा

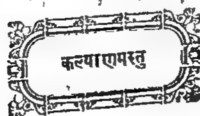
आप यशोदयके पवित्र शासनमें आजतक ४ मुनिराज ५३ साध्वियों
सुदीक्षित हुई.

अखिरमें यही प्रार्थना करता हूं कि आपका धर्म साम्राज्य चिरका
अटल प्रवर्त्तता रहो हे स्वामिन् ! आपका पवित्र नाम सदैव जयवन्ता व
॥ ए ॥ ७६ ॥

जप योगादि सकल सिद्धियें समाप्त होती है इतनाही नहीं किन्तु पूज्यपाद गुरुवर्य्यके गुण गानेसें अनादिसें जखड़े हुवे पापकर्म तत्काल विध्वंस हो जाते हैं जिससें दिव्य शास्वत सुखमें रमण करते है अर्यात् अनंत सुखोंमें झिलानेवाले मोक्षपदकों संमाप्त करते है-देखिये किसी अनुभवि महात्माका कथन है:—

(सवैया)

ज्ञान घटे जड़ मूरकि सङ्गत
ध्यान घटे विन धीरज आए।
मान घटे जवही कछु माङ्ग हूं
चाह घटे नितके घर जाए॥
प्रीति घटे जु कठोर वे बोल हूं
रीति घटे मुंह नीच लगाए।
उद्यमसें दारिद्र घटे सव
पाप कटे गुरुके गुण गाए॥१॥



प्यारे पाठकवरों! अब मै ग्रन्थकी पूर्णाहुतीमें कतिपय दोहरोंकी रचना कर ग्रन्थकों सम्पूर्ण करता हूँ

पुण्यश्रीजी अनेक सूत्र सिद्धान्तोंको अवलोकन की हुई है सेंकडों बोल चाल कण्ठस्थ है पठन पाठनमें इनकी पूर्ण दिलचस्पी है तपस्याकी एक अद्वैत प्रेमणी है आप महानुभावाने अपनी आत्माका कल्याण करते हुवे भव्य जनो पर अनुपम उपकार किया. यहातक कि जनसमुदाय अपने मुक्त कण्ठसे इन श्रीकी प्रशंसा करता है.

सिद्धश्रीजी कइएक सूत्र सिद्धान्तोंकी वेत्ता थी बहुतसें बोलचाल ठिक्क याददास्त थे पठन पाठनकी दिली प्रेमणी थी अपनी गुरुवर्याकी सेवामें अनुपम दिलचस्पीको अवधारण करनेवाली थी आप महानुभावाने प्रशंसनीय उपकारके साथही साथ अपनी आत्माका कल्याण किया.

पाठकवरों! आप हर दो साध्वियोंजी पर पूज्यपाद चरित्र नायका असीम उपकार है इसही लिये ये ये दोनो सुयोग्यताको संप्राप्त हुई है

इन हर दो साध्वियोंजीके निश्राईमें रही हुई आगेवान् साध्वियोंजी चारों ओर जैन शासनका उद्योत करती हुई अपने परमोपकारी गुरु महाराजका पवित्र नाम दे दिव्य कर रही है इनमें कइएक सूत्र सिद्धान्त, प्रकरणादि व्याकरण, काव्य, कोष न्यायादि व अनेक बोलचालोंकी वेत्ताएं है कइएक बाल शिष्याए पृथक् २ विषयोंका अभ्यास कर रही है आशा है कि वे शीघ्र ही उच्च स्थितिको पहूँचेंगी

वाचक वृन्दों! जिस कदर मुझसे बना सका परमोपकारी गुरुमहाराजकी पवित्र सेवा बजाकर अपने मानवभवको सफल किया. आप पाठक प्रेमियोंको यह भली प्रकार सुविज्ञात होगा कि गुरु महाराजकी सेवा एक ऐसी उत्तम पदार्थ है कि जिससे ज्ञान, ध्यान, तप,

---

यसे लिखा है प्यारे मुमुक्षुओं! इसे इतनी ही समाधानी 'संतोषप्रद' होगी कि श्रमण मार्गमे चारित्र पर्यायसे बडा छोटा समझा जाता है नतु सन्तान परपरासे अत प्रशिष्याका नाम प्रथम उल्लेख किया है चूके वे दीक्षा पर्यायमे बडीहै —

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

(मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत)

॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवदनः कान्तारतौनोरतो
पुण्यौघः पितरंवरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥
यः श्राद्धोऽय विभूषणः शुभमतिर्गोत्रं वरंदूगमं
संप्राप्तः सुखनागरः सुजननी जेतीमनोज्ञोष्टदः ॥१॥

लब्ध्वान्यायघनं पुराजयपुरे संतोषवृत्तिधृतो
बुध्वावैवरराजसागरमुनेर्बोधात् तदा दीक्षितः ॥
पूज्योयस्य वरऋद्धिसागर गुरुः, संसारपङ्कोकृतो,
धन्यास्ते गुरवः सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोच्छेदकाः ॥२॥

प्राप्येतत्पुण्यनिदान सुबोधनिलयंतीर्थेश वाक्यामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसार दुःखौघहृद् ।
वैराग्यंनिजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्नाकिंयः कृति
भ्रांत्वाऽत्रन्यविसार दुःखनिकरं संसारचक्रंजनः॥३॥

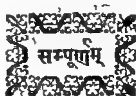
किंश्रेयन्नविनां सदैवहितदं बुध्वाजनो मृश्यति
सम्यक्त्वं सुगतिप्रदं कथन्नवृणुतेज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

(दोहरे)

घट घट अन्तरमें वशे । सुखसागर गुरुराय ॥
चरणकमल प्रतिदिन नमु । झुक झुक शीश नमाय॥ १ ॥
तस्य शिष्य गुण शोभता । भगवान् गुरु सुखकार ॥
तस पटधर जग दीपता । त्रैलोक्य गुरु आधार ॥ २ ॥
इनके अतुल पसायसें । ग्रन्थ रचा सुविचार ॥
सुख चरित्र सुख देत है । मोक्ष मार्ग दातार ॥ ३ ॥
गुरु सेवामे लीन हो । जो कुछ किया विचार ॥
सफल हुई मन कामना । जगमें जयजयकार ॥ ४ ॥
चौवीस्से वाया लिशे । चैत्र पूर्णिमा सार ॥
पूर्ण किया ये ग्रन्थ हम । बीकानेर मझार ॥ ५ ॥
सद्गुरु गुण गाया हमें । सकल जीव हितकार ॥
दासानंद इम वीनवे । कृपा करी मुझ तार ॥ ६ ॥
भूल चूक यदि होय तो । शुध कर लीजो दक्ष ॥
हांस न करजो चतुर जन स्वल्प बुद्धि हम लक्ष॥७॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं । सर्व कल्याण कारणम् ॥
प्रधानं सर्व धर्माणां । जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥



ANANDSAGAR
Bikaner—(Rajputana.)

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

(मुनिराज श्री माणिक्य मुनिजी कृत)

॥ गुरुगुणाष्टकम् ॥

संजातः सरसापुरे सुवदनः कान्तारतौनोरतो
पुण्यौघः पितरंवरं मनसुखं लब्ध्वा सुसेवा कृतः ॥
यः श्राद्धोऽय विभूषणः शुभमतिर्गोत्रं वरंदूगड़ं
संप्राप्तः सुखसागर. सुजननी जेतीमनोऽभीष्टदः ॥१॥

लब्ध्वान्यायधनं पुराजयपुरे सतोपवृत्तिधृतो
बुध्वावैवरराजसागरमुनेर्बोधात् तदा दीक्षित. ॥
पूज्योयस्य वरर्द्धिसागर गुरुः संसारपङ्कोद्धृतो
धन्यास्ते गुरव. सदैवमुनयः किन्तु स्पृहोच्छेदकाः ॥२॥

प्राप्येतत्पुण्यनिदान सुबोधनिलयंतीर्थेश वाक्यामृतम्
लब्ध्वा तीर्थपतेर्वचो गुरुमुखात्संसार दुःखौघहृद् ।
वैराग्यंनिजचित्तसौख्यजनकं मन्येन्नकिंयः कृतिः
ज्ञात्वाऽन्यविसार दुःखनिकरं संसारचक्रंजनः ॥३॥

किंश्रेयंन्नविनां सदैवहितदं बुध्वाजनो मृश्यति
सम्यक्त्वं सुगतिप्रदं कथन्नवृणुतेज्ञानं द्वितीयं तथा ॥

येनात्रैव हिताहितं शुचिमतिर्विज्ञायहेयाश्रवम्
त्यक्त्वासंवरशुद्ध रूपममलं वुद्धोऽश्रयत्तद्गुरुः ॥ ४ ॥

साधुश्रेष्ट गुणौघधारक मुनिर्मोक्षार्थ दीक्षारतो
भव्यानांहितचिन्तकः शिवरुचिर्दृष्ट्याच पीयूषदः ॥
जित्वाकर्म समूहमूलजनकं कामंनृणांभ्रान्तिदम्
लीनोवीरविभौ गुरौचशमदेध्येयोनकिंप्राणिभिः ॥५॥

तीर्थोद्योतकरो गुणाधिनिलयो शुद्धात्मरूपंश्रितः
पंचाचारतः सदैवविरतो चित्तंचचक्रे स्थिरम् ॥
पश्चात्कर्मविनाशकं शुचितपस्तप्त्वाऽभवन्निर्मलः
स्मर्तव्यः श्रमणैःसुखाभिरुचिभिः श्राद्धैस्तथाकिंनसः॥६॥

धृत्वायस्सुगुरो सुपादममलं दुःखार्णवेतारकम् ।
सौख्यार्थं लभतेस्मयत्सशमदः पूज्योभवत्सर्वदा ॥
पश्चाद्दै विनयीतथैव शिवदंसाधुं निरीहंश्रितः
यस्मात्शान्त सुदान्तशान्तिजनकः साधुजनैःसंस्तुतः ॥७॥

जंतूनांहितकारणान्मुनिगुणान् श्रुत्वामयाग्रथिता
भव्याना प्रमुदेजनाः कथयतस्युः किंनतेशान्तिदाः ॥
यद्ध्यायेसुखसागरान् मुनिवरान् मुक्त्यर्थलाभाश्रितः
स्तेषांवैखलुमोदकं सुरचितं साध्वष्टकं सौख्यदम् ॥८॥

मोक्षायमान्योभविभिर्गुरुर्वै । हत्वाचकर्मारिच मूंचनूनम् ॥
नत्वाजिनेशं सुगुरुंचहर्षं । शैवायमाणिक्य मुनिर्बभाषे ॥९॥

॥ शुभम् ॥

॥ ॐ ॥

(श्रीमान् क्षेमसागरजी महाराज कृत)

॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

भजामिपूज्यश्च नमामि नित्यम्
वक्ष्यामि भक्त्याप्रणतान्तरात्मा ॥
यथाभिधानं किलसद्गुणीय
तस्यस्वरूपं शुभभावभाव्यम् ॥१॥

पिताकुलीनश्च मनः सुखाख्यः
सुशीलधर्त्री जननीहिंजेती ॥
श्रीओशवंश्यः सुखलाल संज्ञः
ग्रामः प्रसिद्धः सरसेतिनाम्ना ॥२॥

आ ब्रह्मचारी जिन धर्मरागी
सम्यक्त्व धारी विरति प्रभावी ॥
संत्यज्य संसार–मसार–मृद्धि–
रत्नाकराख्यस्य गुरोश्च पार्श्वात्॥३॥

चारित्र–मादायसदा विहारी
विनातिचारं यति धर्मधारी
श्रीमाञ्जिताक्षो गुणभूतपोतम्
संसारपाराय परंदधार ॥ ४ ॥

सुबुद्धि सङ्गी कुमति प्रणाशी
खलप्रबोधी शुभ मार्गदर्शी
सार्थाणि सूत्राणि पपाठ धीरः
गजेन्द्र तुल्यो वचनेषु वीरः ॥ ५ ॥

रराज नित्यं करुणैक पात्रम्
जीवोपकारी सुखसागराख्यः
सत्यार्थवक्त्या सुजनाभिनन्द्यः
साधुप्रभावोज्झितमोहमायः ॥ ६ ॥

अन्तारिपून्बाह्य परिग्रहागी-
न्त्यागी निरागी भविशर्मकारी
जगत्प्रसिद्धो बहु मान धाम
एभिर्गुणैः सत्पथमाजगाम ॥ ७ ॥

त्रैलोक्यसिन्धो ! हरित्तामुपेत !
आनन्दकारीं शुभभावभक्तिम्
कुर्वन्तिलोका नवतत्वसिद्धिम्
तेवल्लभावैद्रुत-माप्नुवन्ति ॥ ८ ॥

बुरुन्तीं वीक्ष्यामू-मतिशुभ गुणाचार तरणीम् ॥
गणाधीश स्वामिन् ! युगपदवदग्रे भवजले ॥
कथन्नोपास्यामेतव शुभगुणाः मङ्गलकरा
गुरोः पूर्णाब्धेर्वैचरणे युगले क्षेमनमनम् ॥ ९ ॥

मुनि क्षेमसागर.
मु बीकानेर.

॥ ॐ ॥

(वीर पुत्र श्रीमान् आनन्दसागरजी महाराज कृत.)

॥ सद्गुरुगुणाष्टकम् ॥

(अनुष्टुप छन्दः)

यथाप्राणानराधारा–स्तथैव सुखसागरः ॥
नित्यंनमामि नाथत्वां । त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥

चखान दुष्ट कर्माणि । दिव्यज्ञान दिवाकर ॥
चारित्र रत्नभण्डार । दर्शनं विमलं कृतम् ॥ २ ॥

दानशील तपोभाव । अष्टमातृ परायणः ॥
आ बाल ब्रह्मचारी च । भाविता भावना सदा ॥३॥

कषायमद निद्रादि । पञ्चेन्द्रियाणि शेषतः ॥
जितानि हास्यजिन्नूनं । वैरिणी विकथा जिता ॥४॥

निर्जितौ काममोहौच । रागद्वेष विवर्जित ॥
धौतं सकल मिथ्यात्वं । सम्यक्त्व रागरञ्जित ॥ ५ ॥

नयनिक्षेप संवेत्ता । गुणस्थानं विशेषत. ॥
विजानासि गुणग्राहिन् । स्याद्वादश्च महारसम् ॥ ६ ॥

त्वमेव प्राणकाधारः । त्वमेव हितकारकः ॥
त्वमेव सुखसौन्दर्यः । त्वमेव भवतारकः ॥ ७ ॥

पवित्रनाम जापेन । ज्ञानादि सकलं फलं ॥
लभन्ते सर्वं धीमन्तः। नैवात्रकोपि संशयः ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यसिन्धोर्भवतापहर्तु–
गुरोः प्रसाद प्रभुताङ्किताः ॥
तस्यैवसानन्द सुखाम्बुराशेः ।
पादौ सदानन्दरसेन नौमि ॥ ए ॥

॥ शुभम् ॥

ANANDSAGAR

॥ ॐ ॥

(श्रीमान् हरिसागरजी महाराज कृत)

॥ गुरुवर्य प्रशंसा ॥

॥ शिखरणी छंद ॥

सु:– सुधारसको पीते शुद्ध भाव हृदय धरके
ख:– खयोपशम श्रेणी ध्यान धरते सुखद होके
सा:– सामर्थ्य रखते थे कर्म अरिको नष्ट करके
ग:– गम्यागम्य वस्तु मनन करते हर्ष धरके ॥१॥
र:– रटन करते थे मुक्तिपुरीका अहर्निश ही
जी:– जीवोंको बचाते थे अभय देके आप खुद ही
महा:– महा क्रोधादि रागद्वेषको दूर करते
राज:– राज पुंजधारी चरण आके नमन करते ॥२॥

॥ ॐ ॥

॥ दोहरा ॥

सुखसागर मुनिराजके चरण करूं प्रणाम ॥
गुण गावुं तिनके सदा अक्षर २ नाम ॥ १ ॥

सुः– सुगुरु गुण है अति सदा । सुखसंपति दातार ॥
सुभ्र मारगकों धारते । सुमती यश भंडार ॥ २ ॥

खः– खरतर गछकों धारते । खसम अती विस्तार ॥
खप करते थे मोक्षकी । खणते कर्म विकार ॥३॥

साः– साधु धर्मको पालते । साधे तप विधि वार ॥
सावधान मनको करि । सागर तरे संसार ॥४॥

गः– गहिरे सकल समुद्रसे । गमन करे भव पार ॥
गमनागमन निवारके । गहे मुक्ति दरवार ॥ ५ ॥

रः– रमण करे निज भावमें । रहे सदा एकांत ॥
रम्य वस्तु विचारते । रत्नत्रयी सुख शांत ॥६॥

जीः– जीते मन वच कायकों । जीव दया धरनार ॥
जीव तत्वको धारते । जीवन प्राणाधार ॥७॥

मः– ममताको मारे गुरु । मनकों वश करनार ॥
मगन भये शुभ्र ध्यानमें । मन वांछित देनार ॥८॥

हाः—हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सवी डुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जौडू घर मिष्ट ॥९॥

राः— राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नहीं मोह राजसें । राख सदा मुज सूर॥१०॥

जः— जन्म मरणको मेटते । जराकों दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥११॥

उन्नीसे सीतरसें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धिनगर मझार॥१२॥

यह गुण गाया है सही तुच्छ मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिशण सार॥१३॥

मुनि हरिसागर.
मु॰ बीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

(मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत.)

॥ सद्गुरु गहुंली संग्रह ॥

१

कृपा कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥
वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ टेक० ॥

भव्य जीव उपकारके हेतु । दिव्य चारित्र तुमारो ॥
निर्मल कीनो दर्शन तुम गुरु । ज्ञान तणो जंभारो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ १ ॥

बाल ब्रह्मचारी गुरु शोभे । महिमा अपरंपारो ॥
यति धर्म करी दीपता गुरुवर । देशना अमृत धारो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ २ ॥

सायर सम गम्भीर गुरुवर । रवि सम तेज प्रतापो ॥
शशि समान है सौम्यता गुरुकी मणि सम तुम गुरु दीवो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ ३ ॥

अष्टापद सम सूरवीर गुरु । दुर्धर कर्म हटावो ॥
आतम ध्यानमें मग्न होयके । मोक्ष नगरको पावो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ ४ ॥

बीकानेरमें आप विराजो । दर्शन कर हुलसायो ॥
दिलमां हर्ष न मावे गुरुवर । आनंद संघमां छायो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ ५ ॥

वीर चौवीस्से बायालिस माही । श्रावण मास सुहायो ॥
कृष्ण बीज गुरुवार सुहावे । हरष २ गुण गायो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥ ६ ॥

गुरु सम अवर न दूजो जगमें । चरणोंमे शीस नमायो ॥
दास आनद आनदमें झीले ॥ मन वांछित फल पायो ॥ मोरे० ॥ क्षमा० ॥७॥

॥ ॐ ॥

सुखसागर गुरु वंदीये । शुभ भाव धरीने ॥ हांहारे शुभ भाव धरीने ॥
सुमती गुप्तीकों पालते । बहु हर्ष धरीने ॥ हांहारे बहु हर्ष धरीने ॥ १ ॥

पंच महाव्रत धारिया । पाले षट् काया ॥ हांहारे पाले षट् काया ॥
भीक्षा दोष निवारता । सहुको मन भाया ॥ हांहारे सहुको मन भाया ॥२॥

भव्य जीव उपदेश दे । शुभ पथ बताया ॥ हांहारे शुभ पथ बताया ॥
तारे कोई नरनारको । ज्ञानी गुरुराया ॥ हांहारे ज्ञानी गुरुराया ॥ ३ ॥

खरतर गछमें दीपता । गुरु गुणका दरिया ॥ हांहारे गुरु गुणका दरिया ॥
संयम सतर प्रकारसें । शुभ संपदा वरिया ॥ हांहारे शुभ संपदा वरिया ॥४॥

हाः—हारे तिनसे कर्म हैं । हार गये सवी दुष्ट ॥
हाम धरी गुरु वंदीये । हाथ जौड़ धर मिष्ट ॥९॥

राः— राखे षट् काया प्रति । रागद्वेष करी दूर ॥
राचे नही मोह राजसें । राख सदा मुज़ सूर॥१०॥

जः— जन्म मरणको मेटते । जराकों दूर निवार ॥
जग मांही दीपे सदा । जयजय करुणा धार ॥११॥

उन्नीसे सीत्तरमें माघ मास गुरुवार ॥
कृष्ण पक्ष दिन चौथको फलवर्द्धि नगर मझार॥१२॥

यह गुण गाया है सही तुछ मति अनुसार ॥
हरिको शरणे राखिये दीजिये दरिशण सार॥१३॥
मुनि हरिसागर.
मु बीकानेर.

॥ ॐ ॥

॥ श्री वीतरागेभ्यो नमः ॥

॥ श्रीमत् सुखसागर सद्गुरुभ्योनमः ॥

(मुनिवर्य श्रीमान् हरिसागरजी महाराज तथा वीर पुत्र आनंदसागरजी महाराजादि कृत.)

॥ सद्गुरु गहुँली संग्रह ॥

हमा कल्याण गुरु वंदो मोरे प्यारे ॥
वंदत हो आनंदो मोरे प्यारे ॥ टेक० ॥

काम मोहको मार भगाया।
परमारथ पद ध्याया ॥
शुद्ध स्वरूप रमणता रमिया।
आतम अनुभव वरिया-ठगन० ॥ ५ ॥

अष्टमी शुक्ला चैत्र वधाया।
शुक्रवारको आया ॥
दरुगति सम्वत् जिनराया।
परमानन्द वरपाया-ठगन० ॥ ६ ॥

सुख दाता भगवान आदरिया।
तीन लोक गुण दरिया ॥
आनन्दकारी आनन्द छाया।
आनन्द आनन्द पाया-ठगन० ॥ ७ ॥

॥ आनन्दं परमं-सुखम् ॥

॥ ॐ ॥

(पूज्य गुण गहूँली)

त्रैलोक्य गुरु-विरह सहो नही जाय कृपा कर तारीये ॥
दुर्लभ दर्शन-हम दुःखिये निराधारकों जल्दी दीजिये-टेक

गुरु आप बड़े उपकारी थे। अद्वैत ज्ञान गुण धारी थे।
संयम दर्शन सुखकारी थे—त्रैलोक्य० ॥ १ ॥

गुरु करुणारसके सागर थे। मुनि गुण रत्नोंके आगर थे।
गुरु सम दम सुख भंडार थे—त्रैलोक्य० ॥ २ ॥

गुरु चमत्कार एक भारी था। दर्शन कर्त्ता दुःखहारी था॥
जांका रोम २ हुलसारी था—त्रैलोक्य० ॥ ३ ॥

मै अज्ञानी अधम अपावन । कैसे होउ भवपारी ॥
दूर करो गुरुदेव ये डर्मन । शरण ग्रही हितकारी—जगत० ॥६॥

सुखकारी आनन्द दिवाकर । तीन लोक सुखकारी ॥
आनंदकी वरषा जगसुखकर । आनद आनंदधारी—जगत०॥७॥

॥ ॐ ॥

छगन गुरु सुन्दर दरश दिखाया ।
गुरु उग्र तपस्वी कहाया—छगन० ॥ टेक० ॥

नगर लोहावट दर्शन पाया ।
चरण कमल सुख दाया ॥
आनन्द छाया हर्ष न माया ।
बाल हृदय हुलसाया—छगन० ॥ १ ॥

दानशील शुभ भाव ना भाया ।
बावन व्रत सुहाया ॥
दिव्य तपस्या अङ्ग भराया ।
जगमें जय वरताया—छगन० ॥ २ ॥

आगम अनुपम धर्म दिपाया ।
तत्वज्ञानसें रङ्गाया ॥
अति उत्कट संयम आचरिया ।
निर्मल दरशन धरिया—छगन० ॥ ३ ॥

अष्ट पञ्च षट् सप्त हटाया ।
दश गुण अङ्ग रमाया ॥
तीन तत्वसे प्रेम लगाया ।
जगमें धर्म दिपाया—छगन० ॥ ४ ॥

गुरु एक अतिशय भारी ।
जगमें तुमरी है बलिहारी ॥
गुरु शान्त सुश प्यारी–वंदो० ॥ ५ ॥

जो करजोड़ी गुणकों गावे ।
ताके पाप सकल मिट जावे ॥
निर्मल भावना दिलमें आवे–वंदो० ॥ ६ ॥

आनंद सदानदका गावे ।
आनद १ सब जग ध्यावे ॥
आनद परमानदको पावे–वंदो० ॥ ७ ॥

॥ आनंन्दः परमं सुखम् ॥

४ ॐ ॥

दिलभर दर्शन दो हो स्वामी ॥ तुम हो दीनदयाल हो स्वामी ॥ टेक० ॥

खरतर गच्छमा दीपतः स्वामी । सुखसागर मुनिराया हो स्वामी ॥
डूबति जहाजको तारी हो स्वामी । मोक्ष मारग बताया हो स्वामी–दिल०॥१॥

तसपटपर भगवान् गुरुके । त्रैलोक्य सागर गुरुराय हो स्वामी ॥
पर उपकारमां मग्न होयके । करते आतम ध्यान हो स्वामी–दिल० ॥ २ ॥

हरिसागर हरि तुल्य हो स्वामी । भव्य जीव प्रतिबोध हो स्वामी ॥
दर्शन पदको धारत स्वामी । करत निज उपकार हो स्वामी–दिल० ॥ ३ ॥

नवनिधिसागर मुनिवर स्वामी । ज्ञान निधिको चवे हो स्वामी ॥
जैन बालक अब बोधता स्वामी । मोक्ष मारगको ध्यावे हो स्वामी–दिल० ॥४॥

क्षेमसागर मुनिराय कहावे । चारित्र रत्न सुहाय हो स्वामी ॥
सद्‌चारी बधु सुख पावे । आनद अङ्ग नमाय हो स्वामी–दिल० ॥ ५ ॥

गुरु ज्ञान विना कैसे जीवें। यह आप विना कैसे पावें ॥
यह दुःख अनन्त कैसे सेवे—त्रैलोक्य० ॥ ४ ॥

गुरु शरण समो नही कोई है। जिनको आभाव जो होई है।
वह जीवित मृतक समो ही है—त्रैलोक्य० । ५ ॥

मैं शुध उपयोगसें भूला हूँ। गुरु क्षमा करो मैं चूका हूँ ॥
मै अशरण भावना भूला हूँ—त्रैलोक्य० ॥ ६ ॥

मैं अरजी आन गुजारी है। आनंदको आनन्दकारी है ॥
आनन्द परमानन्द धारी है—त्रैलोक्य० ॥ ७ ॥

॥ शुभम् भुयात् ॥

॥ ॐ ॥

वंदो २ रे भविक गुरुरायकोंजी।
वंदो त्रैलोक्यसिंधु आधार–गणपतिरायकोंजी ॥टेक०॥

सुन्दर दरशन कर दीदार ॥
दिलमे आनन्द हर्ष अपार ॥
प्रणमुं चरण शरण सुखकार–वंदो० ॥ १ ॥

ज्ञानी जैन समयके जान ॥
तैसे पर दरशन विज्ञान ॥
तात्विक गुण रत्नो की खान–वंदो० ॥ २ ॥

गुरु सम दम रस गुण धार ॥
ये है सकल धर्मका सार ॥
याते तुम जगके आधार–वंदो० ॥ ३ ॥

अनुभव आतम गुण हितकार ॥
उसमें रमते वारंवार ॥
जगमें वरते जय २ कार–वंदो० ॥ ४ ॥

क्षेम गुणे करी शोभे महा मुनि ।
आनद अग भरी ॥ सु० ॥ ७ ॥

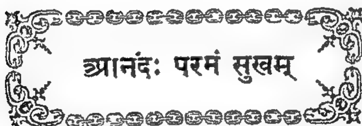
वक्षज भक्ती है मदु संघका ॥
धन धन आज घरी ॥ सु० ॥ ८ ॥

उप सम नदिया आज वही है ।
इछा फली सवरी ॥ सु० ॥ ९ ॥

पूरव पुएय उदय हुवो हमारो ।
पाया दरश फरी ॥ सु० ॥ १० ॥

श्री सघ चावे मन वच तनसें ।
गुरुकी जय जवरी ॥ सु० ॥ ११ ॥

शेरसिह चरणोका चाकर ।
कहे गुरु पाय परी ॥ सु० ॥ १२ ॥



आनंद सिन्धु आनंद पावे ॥ ज्ञान वैराग्य अपार हो स्वामी ॥
सिंह परे गुरु धर्म दिपावे । देशना अमृतधार हो स्वामी–दिल० ॥ ६ ॥

वल्लजसागर मुनि पद सुखकारी । गुरु ज्क्तिमें ज्ारी हो स्वामी ॥
ज्क्तिसागर मुनि ज्क्तिमे शोहे । विनयवन्त गुण मोहे हो स्वामी–दिल० ॥७॥

वीर चौवीस्से जनचालीस स्वामी । पर्व पर्युषणकी वलिहारी ॥
जाड्व कृष्ण एकादशी स्वामी । नगर फलोदीमें जय २ कारी–दिल० ॥ ८ ॥

चरण कमलमे वंदना स्वामी । विनय करी करूँ जोरू हो स्वामी ॥
वाल शिष्य इम विनवे स्वामी । हममनआशागुरुपुरोहो स्वामी ॥ ९ ॥

॥ ॐ ॥

सुनोरे जाई आज आनंद घरी ॥ टेक० ॥

मुनि दर्शनके लाज लिये हम
दुःख जावे विखरी ॥ सु० ॥ १ ॥

सोना केरो सूरज उगियो ।
आज विकाणे खरी ॥ सु० ॥ २ ॥

आज हमारे सुरतरु फलियो ।
जावे करम जरी ॥ सु० ॥ ३ ॥

खरतर गछमे दीपे महा मुनि ।
सुख सूरि पट धरी॥ सु० ॥ ४ ॥

गुरु जगवानके पटधर सोहे ॥
मुद्रा शान्त धरी ॥ सु० ॥ ५ ॥

त्रैलोक्य सिंधु नाम धरावे ।
हरिनिधि साथ वरी ॥ सु० ॥ ६ ॥

क्षेम गुणे करी शोभे महा मुनि।
आनद अग नरी ॥ सु० ॥ ७ ॥

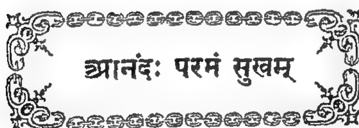
वल्लभ जक्ती है मदु संघका ॥
धन धन आज घरी ॥ सु० ॥ ८ ॥

रूप सम नदिया आज बही है।
इच्छा फली सगरी ॥ सु० ॥ ९ ॥

पूरब पुण्य उदय हुवो हमारो।
पाया दरश फरी ॥ सु० ॥ १० ॥

श्री सघ चावे मन वच तनसें।
गुरुकी जय जयरी ॥ सु० ॥ ११ ॥

शेरसिंह चरणोका चाकर।
कहे गुरु पाय परी ॥ सु० ॥ १२ ॥



॥ श्री सुखसागरजी मुनि समुदाय यन्त्र ॥ *

नम्बर.	नाम मुनिराजोंके	गुरुवर्यके नाम	विद्यमानया काल प्राप्त	कौन पूज्यके शासनमें हुवे.
१	गुणवन्तसागरजी महाराज	राजसागरजी महाराज	काल प्राप्त	राजसागरजी महाराज
२	पद्मसागरजी महाराज	"	"	"
३	स्थानसागरजी महाराज	"	"	"
४	भगवानसागरजी महाराज	सुखसागरजी महाराज	"	सुखसागरजी महाराज
५	चिदानन्दजी महाराज	"	"	"
६	रामसागरजी महाराज.	"	"	"
७	कल्याणसागरजी महाराज	"	"	"
८	रत्नसागरजी महाराज	"	"	"
९	ठगनसागरजी महाराज	स्थानसागरजी महाराज	"	भगवानसागरजी महाराज
१०	चैतन्यसागरजी महाराज	भगवानसागरजी महाराज.	"	"
११	सुमतिसागरजी महाराज	"	विद्यमान	"
१२	गुमानसागरजी महाराज	"	कालप्राप्त	"
१३	वनसागरजी महाराज	"	"	"

* श्री सुखसागर मुनि समुदाय यन्त्र होते हुवे भी श्रीमान् राजसागरजी महाराजके भी कतिपय शिष्य इसमे सम्मिलित किये गये हैं उसका यही कारण है कि वे मुनिराज आपके शासनमें थे.

१४	तेजसागरजी महाराज	"	"	"
१५	कीर्तिसागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी म०के पास
१६	त्रैलोक्यसागरजी महाराज	जगवान्सागर जी महाराज	विद्यमान	जगवान्सागरजी महाराज
१७	रत्नसागरजी महाराज	त्रैलोक्यसागर-जी महाराज	"	ठगनसागरजी महाराज
१८	हरिसागरजी महाराज	जगवान्साग-रजी महाराज	"	"
१९	कल्याणसागरजी	हरिसागरजी महाराज	"	"
२०	क्षमासागरजी महाराज	सुखसागरजी महाराज	कालप्राप्त	"
२१	लब्धिसागरजी महाराज	कीर्तिसागरजी महाराज	विद्यमान	स्वतन्त्रतया सुमति सागरजी महारा-जके पास
२२	जावसागरजी महाराज	"	"	"
२३	मणिसागरजी महाराज	सुमतिसागरजी महाराज	"	"
२४	पूर्णसागरजी महाराज	ठगनसागरजी महाराज	कालप्राप्त	ठगनसागर-जी महाराज
२५	नवनिधिसागरजी महाराज	पूर्णसागरजी महाराज	विद्यमान	"
२६	क्षेमसागरजी महाराज	"	"	"
२७	रूपसागरजी महाराज	त्रैलोक्यसागर-जी महाराज	"	"

२७	मणिसागरजी महाराज	रूपसागरजी महाराज	"	लपता
२ए	आनंदसागर.	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	त्रैलोक्यसागरजी महाराज
३०	कल्याणसागरजी	"	"	"
३१	वल्लजसागरजी.	क्षेमसागरजी महाराज	"	"
३२	जक्तिसागरजी.	त्रैलोक्यसागरजी महाराज.	"	"